सन्ताजी घोरपड़े : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास विषय में
पी-एच०डी० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धानकर्त्री
श्रीमती निधि श्रीवास्तव

शोध-निर्देशक
प्रोफेसर पी० के० घोष

मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

2002

प्रस्तावना

मराठा इतिहासकारों की दृष्टि में मराठा शक्ति के संस्थापक शिवाजी का काल तथा उसके बाद पेशवाओं का युग इतना महत्वपूर्ण रहा कि शिवाजी के शासन के अन्त और पेशवाओं के प्रभाव के अभ्युदय के बीच के अन्तराल में उन्होंने अधिक रुचि नहीं दिखायी। किन्तु वास्तव में यह काल भी मराठा इतिहस में कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखता। यद्यपि शिवाजी के उत्तराधिकारियों, शम्भूजी तथा राजाराम, में अपने पिता की योग्यता का अभाव था तथापि उनके राजत्वकाल में मराठा राष्ट्र को जीवंत बनाये रखने के लिए उल्लेखनीय प्रयास किये गये । इस सन्दर्भ में राजाराम के पश्चात् उसकी विधवा, ताराबाई, का योगदान भी कम महत्व नहीं रखता। उनके काल में ही मुग़लों के विरुद्ध मराठा क्रान्ति ने जन आन्दोलन का रूप धारण किया था।

अपने पूरे शासनकाल में शम्भूजी अपने सलाहकार कवि कलश के प्रभाव में रहा। किन्तु राजाराम को अनेक योग्य सलाहकार तथा सहायक प्राप्त थे, और इनके कारण उसके शासनकाल में मुग़लों के विरुद्ध उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त हुयीं। जहाँ एक ओर महाराष्ट्र में रामचन्द्र अमात्य *हुकूमत-पनाह* की उपाधि प्राप्त कर कुशलतापूर्वक प्रशासन चला रहा था, वहीं दूसरी ओर कर्णाटक में राजाराम की सहायता के लिए प्रह्लाद निराजी विद्यमान था जिसे *प्रतिनिधि* के नवसृजित पद पर नियुक्त किया गया था। किन्तु मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष में उसे सबसे अधिक सहायता सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव नामक अपने दो सरदारों से प्राप्त हुयी। ये दोनों कुशल सेनानायक थे। मुस्लिम इतिहासकारों की सूचना के

अनुसार इनकी वीरता से मुग़ल सेनापति तथा सैनिक भयग्रस्त थे। शत्रु पक्ष के इतिहासकारों का यह कथन उनकी वीरता और सफलता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। उन्हें दो *दैदीप्यमान नक्षत्र* की संज्ञा उचित ही प्रदान की गयी है। इन्होंने अपने कार्यों से सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में दक्षिण के राजनीतिक आकाश को आलोकित किया। इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मैंने अपने शोध-निर्देशक से विचार-विमर्श करके इनमें से एक, सन्ताजी घोरपड़े, के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को अपने शोध का विषय बनाने का निर्णय लिया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध छः अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय, 'भूमिका' के अन्तर्गत शोध-कार्य की प्रकृति एवं क्षेत्र का निरूपण करने के पश्चात् मैंने इस काल में उपलब्ध स्रोतों पर विस्तार से चर्चा की है। इसके पश्चात्, दक्षिण भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करते हुये, दक्षिण की पाँच मुस्लिम सल्तनतों का संक्षिप्त परिचय दिया है, तथा मराठा शक्ति के अभ्युदय और मुग़लों के साथ मराठों के संघर्ष का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है। द्वितीय अध्याय का सम्बन्ध सन्ताजी घोरपड़े के परिवार से है। इस अध्याय के अन्तर्गत मैंने शिवाजी के भोंसले परिवार से घोरपड़े परिवार के सम्बन्धों की चर्चा की है। उसके साथ ही कपशी के घोरपड़े परिवार का, जिसमें सन्ताजी घोरपड़े का जन्म हुआ था, तथा अन्य घोरपड़े परिवारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत मुग़लों के साथ सन्ताजी घोरपड़े के संघर्ष का विवरण दिया गया है। इस अध्याय में मैंने अपने विवरण को 1693 तक सीमित किया है। 1693 में सन्ताजी

घोरपड़े का राजाराम के साथ मत-वैभिन्य हो गया, और वह राजाराम का साथ छोड़कर महाराष्ट्र वापस चला गया। मत-वैभिन्य दूर होने पर सन्ताजी घोरपड़े पुनः राजाराम के साथ आ गया। चतुर्थ अध्याय में मुग़लों के साथ सन्ताजी घोरपड़े के संघर्ष का विवरण ज़ारी रखते हुये, इसे 1696 तक लाया गया, जब सन्ताजी घोरपड़े राजाराम से पुनः खिन्न होकर उसका साथ छोड़कर महाराष्ट्र की ओर चला गया।

राजाराम के साथ सन्ताजी घोरपड़े के सम्बन्धों में आने वाले उतार-चढ़ाव की विस्तृत चर्चा पाँचवे अध्याय के अन्तर्गत की गयी है। इन उतार-चढ़ावों के कारण सन्ताजी का संघर्ष धनाजी जाधव के साथ हुआ। इस संघर्ष में राजाराम ने धनाजी जाधव का साथ दिया, किन्तु सन्ताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव को पराजित करने में सफल रहा। किन्तु धनाजी जाधव के साथ हुये दूसरे संघर्ष में सन्ताजी घोरपड़े को पराजय का मुख देखना पड़ा। पराजित सन्ताजी घोरपड़े जब अपने शत्रुओं से भागते हुये शम्भु-महादेव पर्वत के निकट एक प्राकृतिक नाले में स्नान कर अपनी श्रान्ति मिटाने का प्रयास कर रहा था, तभी हनुमन्त राव निम्बालकर वहाँ पहुँच गया और उसने इस असहाय अवस्था में सन्ताजी घोरपड़े का सिर धड़ से अलग कर दिया। छठे अध्याय के अन्तर्गत सन्ताजी घोरपड़े के अन्त का विवरण दिया गया है। उपसंहार में उसके योगदान का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

धनाजी जाधव के साथ सन्ताजी घोरपड़े की प्रतिद्वन्द्विता सेनापति के पद को लेकर थी। इस कारण, एक परिशिष्ठ के रूप में प्रारम्भिक मराठों के सैन्य संगठन तथा उसमें सेनापति की

भूमिका की संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

शोध-प्रबन्ध के अन्त में सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची प्रस्तुत है। अध्ययन के लिए उपलब्ध अधिकाँश सामग्री अंग्रेजी भाषा में है। इस कारण मैंने सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची अंग्रेजी में ही देना उचित समझा।

प्रस्तुत शोध-कार्य प्रोफेसर पी० के० घोष के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ। उनके प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द उपलब्ध नहीं है। एक गृहणी तथा दो अध्ययन-रत् पुत्रियों की माता होते हुए भी मैं इस कार्य को पूर्ण करने में सफल हुयी, इसका मुख्य श्रेय प्रोफेसर घोष की प्रेरणा को जाता है।

प्रोफेसर के० के० थपल्याल, सेवानिवृत्त अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, तथा सेवानिवृत्त अधिष्ठाता, कला संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, ने मेरे शोध-कार्य में रुचि ली, तथा समय-समय पर उसकी प्रगति के विषय में पूछ कर मुझे अपना कार्य पूर्ण करने के लिये प्रेरित किया। इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूं।

शोध-कार्य के दौरान सहायता प्रदान करने के लिए मैं प्रोफेसर एन० के० जुत्शी, सेवानिवृत्त अध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, तथा प्रोफेसर वी० डी० पाण्डेय, अध्यक्ष, मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, का धन्यवाद करना चाहती हूँ।

मराठी स्रोतों के अध्ययन में मैंने हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ में मराठी

भाषा के शिक्षक, डा0 अभिमन्यु दास, से सहायता प्राप्त की इसके लिए मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। इसी प्रकार, ओरियण्टल पर्शियन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, के डा0 एम0 तकी अली ने फारसी स्रोतों के अध्ययन में मेरी सहायता की। मैं उनके प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

अध्ययन की सुविधा प्रदान करने के लिए मैं निम्नलिखित के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूँ: पुस्तकालय प्रभारी, विभागीय पुस्तकालय, मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय; अवैतनिक पुस्तकालयाध्यक्ष एवं कर्मचारी, टैगोर पुस्तकालय, लखनऊ विश्वविद्यालय; निदेशक, पुस्तकालयाध्यक्ष तथा कर्मचारी, उ0 प्र0 राजकीय अभिलेखागार, लखनऊ।

प्रोफेसर एस0 एन0 चतुर्वेदी, सेवानिवृत्त अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, एवं सेवानिवृत्त अधिष्ठाता, कला संकाय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, ने कृपापूर्वक कुछ फारसी शोध-सामग्री उपलब्ध करायी। इसके लिए मैं हृदय से उनका धन्यवाद करती हूँ।

अपनी श्वश्रू, श्रीमती पुष्पलता श्रीवास्तव, तथा श्वसुर, श्री प्रियोनाथ श्रीवास्तव, के वात्सल्य एवं विद्यानुराग के कारण ही मैं इस शोध-कार्य को प्रारम्भ करने का साहस कर सकी। इस अवसर पर मैं उनका अभिनन्दन करती हूँ।

पी0-एच0 डी0 उपाधि प्राप्त करने के लिए मुझे मेरे पितृ-तुल्य मौसा, स्वर्गीय श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव, ने प्रेरित किया। इस कार्य के पूर्ण होने से आशा है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हुई होगी।

मेरे पिता श्री इन्द्रप्रकाश श्रीवास्तव, मेरी माता तथा मातृ-तुल्य मौसी, श्रीमती कमलिनी श्रीवास्तव, का स्नेह मेरे लिए सम्बल बना। उनको भी मेरा अभिवादन।

अपनी दोनों पुत्रियों, प्रतीची और पूर्वी, के अनुशासित व्यवहार के कारण मेरे लिए अपने शोध-कार्य हेतु समय निकालना सम्भव हुआ। इसके लिए मैं उन्हें आशीर्वाद देती हूँ। मेरे पति, डा० प्रशान्त श्रीवास्तव, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, ने अध्ययन के इस पूरे काल में मुझे सहयोग और समर्थन प्रदान किया। इसके अभाव में मेरे लिए अपना शोध-कार्य पूर्ण करना दुष्कर होता।

मेरे पति के शोध-छात्र, श्री असित कुमार तिवारी, ने शोध-प्रबन्ध के कम्प्यूटर-मुद्रण तथा अन्य प्रकार से सहायता की, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। कम्प्यूटर-टाइपिंग सावधानीपूर्वक करने हेतु श्री शिवशंकर सक्सेना को मेरा धन्यवाद।

लखनऊ

05 दिसम्बर 2002. निधि श्रीवास्तव

विषय-सूची

उपसंहार

सन्ताजी घोरपड़े के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के अध्ययन से सिद्ध होता है कि वह एक वीर योद्धा और कुशल सेनानायक था। उसे अपनी प्रथम महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धि 2 अप्रैल 1689 को प्राप्त हुयी, जब उसने शम्भूजी की मृत्यु के मात्र ढाई मास बाद कोड़ेगाँव में औरंगजेब के सैन्य शिविर पर आक्रमण किया, और मुग़ल सम्राट के तम्बू के स्वर्णिम कलश निकाल कर उन्हें विशालगढ़ में राजाराम को भेंट किया। उसकी इस सफलता से न केवल मुग़ल सेना में भय व्याप्त हो गया, अपितु शम्भूजी की हत्या से हतोत्साह मराठों में भी एक नयी आशा का संचार हुआ।

राजाराम के महाराष्ट्र से जिंजी पलायन करते समय भी सन्ताजी घोरपड़े को कुछ सैन्य उपलब्धियाँ प्राप्त हुयीं। उसने मुग़ल सेनापति, जुल्फ़िक़ार खाँ, की सेना पर आक्रमण कर दिया, और उसे पराजित कर उससे पाँच हाथी और कुछ मूल्यवान वस्तुएँ लूट लीं। इसी अवसर पर उसने बेडनूर में औरंगजेब के सेनापतियों, जाँनिसार खाँ, शरजा खाँ, और मलतब खाँ, का सफलतापूर्वक सामना किया। इस प्रकार, सन्ताजी घोरपड़े ने उनसे राजाराम और बेडनूर की रानी की रक्षा की।

जिंजी पहुँच कर राजाराम ने महादजी नायक पनसंबल को अपना सेनापति नियुक्त किया। किन्तु कुछ ही समय बाद महादजी नायक की मृत्यु हो गयी, और सम्भवतः सन्ताजी घोरपड़े की सामरिक गतिविधियों से प्रभावित होकर राजाराम ने उसे सेनापति के रिक्त पद पर नियुक्त कर दिया। सेनापति नियुक्त किये जाने के पश्चात् सन्ताजी घोरपड़े को राजाराम द्वारा मुग़लों से संघर्ष करने

के लिये महाराष्ट्र भेज दिया गया। वहाँ उसने मई 1690 में मुग़ल सेनापति, रूस्तम खाँ, को पराजित करके बन्दी बना लिया, और उसे मुक्त करने के लिये एक लाख रूपये की फिरौती प्राप्त की। औरंगजेब ने लुत्फुल्ला खाँ को खटाव और उसके आस-पास मुग़ल सैन्य चौकियाँ स्थापित करने के निर्देश दिये थे। सन्ताजी घोरपड़े ने लुत्फुल्ला खाँ से संघर्ष करके उसके इस कार्य में व्यवधान उत्पन्न किया। इस दौरान शंकराजी पन्त ने मराठा नायकों को मुग़लों के अधिकार में गये महाराष्ट्र के क्षेत्रों पर मराठा अधिकार पुनः स्थापित करने के आदेश दिये। इन गतिविधियों में सन्ताजी घोरपड़े निरन्तर संलग्न दिखायी देता है।

उधर सितम्बर 1690 के प्रारम्भिक दिनों में औरंगजेब के आदेश पर जुल्फ़िक़ार खाँ जिंजी पहुँचा गया, और उसने जिंजी के दुर्ग का घेरा डाल दिया। दिसम्बर 1691 में शाहज़ादा काम बख़्श और असद खाँ भी जुल्फ़िक़ार खाँ की सहायता के लिये जिंजी पहुँच गये। राजाराम की स्थिति की गम्भीरता को समझकर शंकराजी पन्त ने दिसम्बर 1692 में सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव को जिंजी भेज दिया। मार्ग में सन्ताजी ने काँची के मुग़ल फ़ौज़दार, अली मर्दान खाँ, को पराजित कर बन्दी बना लिया, और भारी फिरौती प्राप्त करने के बाद उसे नुक्त किया। सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के जिंजी पहुँच जाने से मुग़लों की स्थिति कमज़ोर पड़ गयी। मुग़ल वज़ीर, असद खाँ, जिंजी की घेराबन्दी का सर्वोच्च अधिकारी था। उसने राजाराम के पास शान्ति का प्रस्ताव भेजा। उसने मुग़ल सेना की सुरक्षित वाण्डीवाश वापसी के बदले राजाराम और उसके ब्राह्मण मन्त्रियों को रिश्वत में भारी रकमें दीं। राजाराम

ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और मुग़ल सेना 22 अथवा 23 जनवरी 1693 को जिंजी की घेराबन्दी उठाकर वापस लौट गयी।

सन्ताजी घोरपड़े को अपने जीवन की सबसे महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धि नवम्बर 1695 में मुग़ल सेनापतियों, कासिम खाँ और खानाजाद खाँ, के विरुद्ध प्राप्त हुयी। इस युद्ध में सन्ताजी घोरपड़े ने अपने रण-कौशल का परिचय देते हुये अपनी सेना को तीन भागों में विभाजित किया था। इनमें से एक भाग को उस छोटे मुग़ल सैन्य शिविर पर आक्रमण करके उसे लूटने के लक्ष्य से भेजा गया, जो मुख्य मुग़ल पड़ाव से छः मील आगे स्थित था। दूसरा भाग मुख्य मुग़ल सेना से लड़ने के लिये भेजा गया। तीसरा भाग *रिज़र्व* के रूप में रखा गया। सन्ताजी घोरपड़े ने कासिम खाँ और खानाजाद खाँ के साथ युद्ध करके उन्हें पराजित कर दिया, और दोदेरी के दुर्ग की ओर भागने पर विवश किया। इन मुग़ल सेनापतियों ने बड़ी कठिनाई के साथ दोदेरी के दुर्ग में प्रवेश किया, किन्तु सन्ताजी घोरपड़े ने इस दुर्ग को घेर लिया। कासिम खाँ की दुर्ग में ही मृत्यु हो गयी। खानाज़ाद खाँ ने मराठों के पास शान्ति का प्रस्ताव भेजा। मुग़ल अधिकारियों को दुर्ग छोड़ कर जाने की अनुमति देने के लिये मराठों को भारी रकमें प्राप्त हुयी। मुग़लों से अधिकृत की गयी सम्पत्ति की कीमत भी पचास से साठ लाख के बीच आँकी गयी हैं।

ऐसा नहीं है कि सन्ताजी घोरपड़े को सभी युद्धों में निरन्तर विजय ही प्राप्त होती रही हो। उदाहरण के लिये, नवम्बर 1693 के आस-पास हिम्मत खाँ और हमीद-उद्-दीन खाँ के नेतृत्व में

मुग़ल सेनाओं ने विक्रमहल्ली के निकट उसे पराजित कर दिया। दिसम्बर 1694 में हिम्मत ख़ाँ ने एक बार नलदुर्ग के निकट, और दूसरी बार रायचूर क्षेत्र में सन्ताजी घोरपड़े को पुनः पराजित किया। किन्तु सन्ताजी इन पराजयों से हताश नहीं होता था। वह निरन्तर मुग़लों के साथ संघर्ष करता रहा, और अन्ततः जनवरी 1696 में उसने बासवपाटन के निकट हिम्मत ख़ाँ को न केवल पराजित किया, बल्कि उसे बन्दी भी बना लिया। बन्दी बनाये जाने के समय हिम्मत ख़ाँ घायल था, और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी।

सन्ताजी घोरपड़े की इन सामरिक उपलब्धियों से किसी भी सेनानायक को गर्व होना स्वाभाविक था। इन विजयों का मुख्य कारण सन्ताजी द्वारा गुरिल्ला युद्ध शैली का चतुराई से किया गया प्रयोग, और अपनी सेना का कुशल नियन्त्रण था। गुरिल्ला युद्ध-शैली का मराठों ने अपने शत्रुओं के विरुद्ध सफल प्रयोग किया। वे इस युद्ध-शैली को 'ग़नीमी कव' का नाम देते हैं। मराठी भाषा में 'ग़नीम' का अर्थ 'लुटेरा' है; और इस सन्दर्भ में लुटेरा कहलाना मराठों के लिये अपमान का विषय नहीं था। सन्ताजी घोरपड़े ने इस युद्ध-शैली को नवीन आयाम प्रदान किये।

मराठा युद्ध-शैली और उसकी सफलता की व्याख्या करते हुये फ्राँस्वा मार्तिन कहता है कि मराठा सैनिकों के आक्रमण के अस्त्र भाले तथा तलवारें हैं। सेना में कुछ धनुर्धर हैं, किन्तु उनकी संख्या सीमित है। इस दृष्टि से मुग़ल सेना मराठा सेना से उत्तम बैठती है। मुग़ल धनुर्धरों का निशाना मराठा धनुर्धरों की अपेक्षा अधिक सही है। मुग़ल सेना में धनुर्धरों की संख्या भी मराठों की अपेक्षा अधिक है। इस कारण मराठा सैनिक उनके समक्ष जाने का साहस

नहीं करते हैं। उनका मानना है कि मुग़ल युद्ध में उनसे श्रेष्ठ है। एक हजार मुग़ल सैनिक 3,000 अथवा 4,000 मराठा सैनिकों का सामना करते हुये पीछे नहीं हटते हैं। किन्तु मराठा सेना अचानक धावा बोलने में पारंगत है। शारीरिक, श्रम करने में भी वे मुग़ल सैनिकों से अधिक सक्षम है। उन्हें शरीर को आराम देने की चिन्ता नहीं है। उनका असबाब हल्का है, और वे बिना असबाब अथवा मालवाहक सैन्य टुकड़ी के भी सन्तुष्ट रहते हैं।[1]

चिटनीस भी मराठों की युद्ध-शैली के विषय में लिखता है कि 'मुग़ल सेनाएँ विशाल संख्या में हैं और केवल खुले मैदान में ही अविजित हैं। इसके विपरीत मराठे आज यदि इस स्थान पर प्रकट होते हैं तो कल अचानक उससे 50 मील दूर दूसरे स्थान पर। तब वे फिर अकस्मात् लौट पड़ते है और अचानक धावा कर देते हैं। वे युद्ध का केवल दिखावा मात्र करते हैं, अन्यथा लूट-मार करते हैं और भगदड़ मचा देते हैं। वे चारा इकट्ठा करने वाले दलों पर टूट पड़ते हैं, मुग़ल अधिकृत निर्बल स्थानों पर आक्रमण करते हैं, रणोपयोगी स्थानों पर अधिकार कर लेते हैं, और इस प्रकार अपने अनुचरों में विश्वास उत्पन्न करते हैं। वे गोदावरी नदी से भागानगर तक मुग़ल प्रदेश को नष्ट करते रहते हैं, लद्दू जानवरों, घोड़ों और हाथियों आदि को ले जाते हैं, शत्रु में अस्तव्यस्तता उत्पन्न कर देते हैं और एक दूसरे से बहुत दूर गुप्त झाड़ियों में छिपे रहते हैं। जिंजी जाने वाली मुग़ल सेनाओं पर वे अचानक टूट पड़ते हैं। कभी-कभी वे उनसे खुलकर युद्ध भी करते हैं, और प्रत्येक सम्भव उपाय से उन्हें इष्ट स्थान पर पहुँचने से रोक देते हैं। इन घातक जीवों को परास्त करने में सम्राट पूर्ण हताश है। वायु के समान वे

सर्वव्यापक और धोखा जैसे प्रतीत होते हैं। जब आक्रमणकारी मुग़ल सेनाएँ पीछे हट जाती हैं तो बिखरे हुए मराठे, डाँड़ से अलग किये हुए पानी की भाँति पुनः सिमिट आते हैं और यथापूर्व अपने आक्रमण को पुनः आरम्भ कर देते हैं।'[2]

ग्राण्ट डफ का कथन है कि 'इस प्रकार मराठों की दृष्टि में अपने जीवन का कोई मूल्य नहीं है और वे सर्व प्रकार से अपने राज्य की रक्षा करते हैं। उनको जागीरें और उपाधियाँ पुरस्कार में मिलती हैं। एक ओर सर्वशक्तिमान् सम्प्रट है, जिसके पास असंख्य सैनिक हैं, असीम कोष है, और दूसरी ओर ये थोड़े से दरिद्र, मराठें हैं जो सावधानी से अपने जीवन और साधनों का उपयोग कर रहे हैं परन्तु मुग़ल दलों के विरुद्ध भेड़ियों की टोलियों की भांति निरन्तर कार्य-प्रवृत्त रहते हैं और उनकी सम्पन्न्ता में भी साधनों का अभाव कर देते हैं।'[3]

सन्ताजी घोरपड़े इसी प्रकार की युद्ध-शैली में दक्ष था। वह एक विस्तृत क्षेत्र में फैली विशाल सैन्य टुकड़ियों का नियन्त्रण सरलतापूर्वक कर लेता था। वह परम्परागत शैली में युद्ध नहीं करता था, और स्थिति के अनुसार अपनी सामरिक योजना तैयार करता था। इसके लिये वह अपरम्परागत तरीके भी अपनाता था। उसकी सामरिक योजनाएँ त्वरित गतिशीलता पर निर्भर करती थीं, तथा उनकी सफलता इस बात पर अधारित थी कि उसके सैनिक और अधीनस्थ नायक यथासमय उसके आदेशों का क्रियान्वयन करें। इस कारण वह एक कठोर अनुशासक था, और मामूली अवज्ञा के अपराध में अपने सैनिकों को कठोर दण्ड देता था।[4] ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है कि सन्ताजी अपने सैनिकों को कठोर दण्ड देता था।

मामूली अपराधों के लिये वह अपने सैनिकों को हाथी के पैरों के नीचे कुचल कर मरवा देता था।[5] जे० एन० सरकार ने उचित ही कहा है कि इस प्रकार के व्यक्ति का भय भले ही व्याप्त हो, किन्तु वह कभी भी लोकप्रिय नहीं होता है।[6] इसी कारण ख़फ़ी खाँ सूचना देता है कि अधिकांश मराठा सरदार सन्ताजी घोरपड़े के शत्रु बन गये थे, और उन्होंने उसका अन्त करने के लिये धनाजी जाधव के साथ षड्यन्त्र किया था।[7]

जे० एन० सरकार ने धनाजी जाधव तथा सन्ताजी घोरपड़े के मध्य तुलना निम्नवत् की है:

> धनाजी सम्भ्रान्त व्यक्ति के समान युद्ध करता था। वह जानता था कि सौभाग्य की चंचल प्रवृत्ति वाली देवी युद्ध-क्षेत्र में कभी भी उसका साथ छोड़ सकती है, अतः वह कभी भी अति नहीं करता था। वह विजयी होने पर संयम का परिचय देता था, पराजित के प्रति उदारता का व्यवहार करता था, मृदु भाषी था, आत्म-नियन्त्रण रखता था, और दूरदृष्टि तथा राजनीतिमत्ता वाली व्यवस्था करने में सक्षम था। जिन मुग़ल सेनापतियों का दुर्भाग्य से उसके साथ संघर्ष हुआ, उनके साथ उसने भद्रता का व्यवहार किया, जिसके कारण मुस्लिम इतिहासकार उसकी प्रशंसा करते हैं। इसके अतिरिक्त, उसने अपने राष्ट्र और शासन की अनेक वर्षों तक निःस्वार्थ सेवा की।
>
> इसके विपरीत, धनाजी जाधव की तुलना में सन्ताजी घोरपड़े संस्कृति और उदारता से रहित एक बर्बर व्यक्ति था। वह अपने आवेश पर नियन्त्रण रखने में और दूरस्थ भविष्य

का विचार करने में असमर्थ था। उसकी, राजा सहित, जिससे भी भेंट होती थी, उसे वह रूष्ट कर देता था। उसकी विजय का क्षण प्रतिशोध लेने का क्षण होता था। वह न तो किसी पर दया करता था, और न ही अपेक्षा करता था। अतः उसने मुग़ल सेनापतियों और अपने विरोधी सरदारों में अपने प्रति भय और घृणा की एक मिश्रित भावना उत्पन्न कर ली थी।[8]

किन्तु यहाँ जे0 एन0 सरकार द्वारा सन्ताजी घोरपड़े की आलोचना कुछ सीमा तक अनावश्यक रूप से कटु प्रतीत होती है। दोदेरी में ख़ानाज़ाद ख़ाँ, आदि, पर सन्ताजी घोरपड़े की विजय[9] के सन्दर्भ में एक विद्वान ने लिखा है कि इस विजय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात, पराजित मुग़ल सुनापतियों के साथ किया गया सन्ताजी का मानवीय और उदार व्यवहार है। उसने पराजित सेनापतियों तथा सामान्य सैनिकों को मनुष्य समझा, और शान्ति स्थापित होने पर उनकी हर सम्भव सहायता की। अपने व्यवहार से उसने संसार को दिखा दिया कि शत्रु के विरुद्ध भी उसके हृदय में द्वेष की भावना नहीं है। उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि उसकी शत्रुता उसकी मातृभूमि पर आक्रमण करने वाले मुग़ल सम्राट, औरंगजेब, से है, उसकी सेवा में रत सामान्य सैनिकों से नहीं। यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि पराजित मुग़ल सैनिकों के प्रति सन्ताजी घोरपड़े के इस उदारतापूर्ण व्यवहार की सूचना *मासिर-ए-आलमग़ीरी*[10] तथा ख़फ़ी ख़ाँ[11] जैसे मुस्लिम स्रोतों से प्राप्त होती है।[12]

मुग़ल सेना में सन्ताजी घोरपड़े का भय किस सीमा तक व्याप्त था, इसका प्रमाण ख़फ़ी ख़ाँ के एक उदाहरण से प्राप्त होता है। उसके अनुसार जब औरगंजेब के सेनापति, फ़िरोज जंग, को

ज्ञात हुआ कि सन्ताजी घोरपड़े उसके 16 अथवा 18 मील निकट तक पहुँच गया है, तो भय से उस मुग़ल सेनापति का रंग उड़ गया। उसने मिथ्या घोषणा की कि वह सन्ताजी घोरपड़े का सामना करने जोयगा। उसने मार्ग साफ़ करने के लिये अधिकारी नियुक्त किये, और अग्रिम शिविर रवाना कर दिया। किन्तु वह स्वयं चक्करदार मार्ग से बीजापुर की ओर भाग गया।[13] ख़फ़ी ख़ाँ का यह भी कथन है कि सन्ताजी घोरपड़े समृद्ध नगरों को ध्वस्त करने और अनेक मुग़ल अधिकारियों पर आक्रमण करने के कारण विख्यात था। युद्ध क्षेत्र में जिसका भी उससे सामना होता था, उसके लिये केवल तीन ही मार्ग होते थे : या तो वह मारा जाता था, अथवा घायल होकर बन्दी बनाया जाता था, या फिर यदि वह सुरक्षित भागने में सफल होता था तो वह केवल अपने प्राणों के साथ ही जा सकता था; उसके असबाब पर सन्ताजी घोरपड़े का अधिकार हो जाता था। वह जहाँ भी आक्रमण के लक्ष्य से जाता था, कोई भी मुग़ल अमीर उसका सामना करने का साहस नहीं कर पाता था।[14] सन्ताजी घोरपड़े के प्रति मुग़लों में व्याप्त भय के इस भाव को एक प्रख्यात विद्वान ने उसके 'महानतम् स्मारक' की संज्ञा दी है।[15] मुस्लिम लेखकों द्वारा सन्ताजी घोरपड़े के लिये प्रयुक्त अपशब्द इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

जे० एन० सरकार के अनुसार सन्ताजी घोरपड़े एक ऐसा व्यक्ति था जिसे दूसरों से सहयोग करने की आदत नहीं थी। वह राष्ट्रहित के लिये अपनी महत्वाकांक्षा पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ था। उसका एक भी सहयोगी अथवा मित्र नहीं था। अपने कठोर अनुशासन और अप्रिय स्वभाव के कारण वह सभी में

अलोकप्रिय था। अपने चरित्र की इन कमियों के कारण उसे मराठा राष्ट्र के महान नायकों में वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका, जिसका वह पात्र था।[16] उनका यह भी कथन है कि वह अधिक से अधिक सफल धावे करने वाला एक सरदार और एक स्वार्थी साहसिक था। उसका न तो मराठों के राजनीतिक इतिहास पर कोई प्रभाव पड़ा, और न ही दक्षिण में औरंगजेब के अभियानों के सामान्य परिणाम पर।[17] किन्तु सरकार की यह आलोचना पुनः अनावश्यक रूप से कटु लगती है। सन्ताजी घोरपड़े (तथा धनाजी जाधव) के प्रयासों के कारण ही काफ़ी सीमा तक औरंगजेब का दक्षिणी अभियान विफल रहा, और मराठा राष्ट्र अपना अस्तित्व स्थापित रखने में सफल रहा। अतः सन्ताजी घोरपड़े 1689 से 1697 के लगभग एक दशक तक दक्षिण के राजनीतिक आकाश में एक देदीप्यमान नक्षत्र[18] कहलाने का पूर्णतया अधिकारी था। यदि राजाराम उसके तथा धनाजी जाधव के मध्य सन्तुलन स्थापित करने में सफल सिद्ध हुआ होता,[19] तो मराठों को आन्तरिक कलह के परिणामस्वरूप हुयी उसकी हत्या का आघात न सहन करना पड़ता।

सन्ताजी घोरपड़े मराठों का एक महान सेनानायक था। उसकी सामरिक उपलब्धियों की तुलना स्वीडेन के चार्ल्स XII के साथ की जाती है।[20] वह गुरिल्ला युद्ध-शैली में दक्ष था।[21] उसने इस युद्ध-शैली का न केवल चतुराई से संचालन किया, वरन् उसे नया आयाम भी प्रदान किया। महादजी नायक पनसंबल की मृत्यु के बाद उसका मराठों का सेनापति नियुक्त किया जाना, महाराष्ट्र में मुग़लों से संघर्ष के लिये तथा जिंजी से मुग़ल घेराबन्दी समाप्त कराने के लिये उसका भेजा जाना उसकी सामरिक क्षमता का ही

परिचायक कहा जायेगा। जब-जब मराठों को मुग़लों से ख़तरा हुआ, सन्ताजी घोरपड़े ने उसका पूरी सैन्य कुशलता और पूर्ण दृढ़ता के साथ सामना किया। वह पराजय से कभी हताश नहीं हुआ और मुग़लों से निरन्तर संघर्ष करता रहा। उसमें राजनीतिक सूझ-बूझ भले ही न हो, किन्तु निःसन्देह उसमें एक महान सेनानायक के गुण विद्यमान थे। एक सफल सेनानायक होने के नाते उसे अनुशासन अत्यन्त प्रिय था, और आदेशों की अवहेलना पर वह अपने सैनिकों को कठोर दण्ड देने में संकोच नहीं करता था। वह शत्रुओं से भी कठोर व्यवहार करता था। किन्तु जैसा कुछ विद्वानों की धारणा है, वह बर्बर नहीं था। वह सामान्य शत्रुओं के साथ भी मानवीय व्यवहार करता दिखाई देता है। उसके चरित्र की इस विशेषता की पुष्टि मुस्लिम स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं से भी होती है। काफ़ी सीमा तक उसके प्रयासों के कारण ही औरंगजेब का दक्षिणी अभियान न्यूनाधिक विफल रहा। उससे एक कुशल राजनायिक की भांति व्यवहार की आशा करना उसके साथ अन्याय होगा, क्योंकि वह मूलतः एक सेनानायक था। मराठों के महान राष्ट्रनायकों में वह भले ही ऊँचा स्थान प्राप्त न कर सका हो, तथापि महान मराठा सेनानायकों में उसका स्थान निःसन्देह सुरक्षित है।

टिप्पणी

1. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 271; तुलना करें, ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़,* I, पृ० 324-25.
2. देखिये, जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 341.
3. ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ० 338; जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 342.
4. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 99-100.
5. खफ़ी खाँ, II, पृ० 446.
6. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 100.
7. खफ़ी खाँ, II, पृ० 446.
8. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 100; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 241-42.
9. देखिये ऊपर, अध्याय-4, 'मुग़लों के साथ संघर्ष-II'
10. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 375-79.
11. खफ़ी खाँ, II, पृ० 428-33.
12. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 127-28
13. खफ़ी खाँ, II, पृ० 446.
14. खफ़ी खाँ, II, पृ० 415-16.
15. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 99; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 241.
16. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 101; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 242.

17. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी*, पृ0 242.

18. *पूर्वोक्त*, पृ0 224.

19. देखिये ऊपर, अध्याय 5, 'राजाराम–सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध'।

20. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, V, पृ0. 99

21. जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0 341.

अध्याय 1
भूमिका

शम्भूजी की मृत्यु के बाद राजाराम के शासन काल में औरंगजेब के साथ मराठों के संघर्ष में 1689 से 1698 तक दो मराठा सरदारों, सन्ताजी धोरपड़े और धनाजी जाधव, ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने लगभग 10 वर्षों तक मुगल आक्रमणकारियों को विशेष सफलता प्राप्त नहीं होने दी। किन्तु अन्त में दोंनों के परस्पर संघर्ष का परिणाम इन दोनों के लिए घातक सिद्ध हुआ।

मराठा इतिहास में पेशवा युग (1707–1802) के लिए पर्याप्त स्रोत–साधन उपलब्ध है। किन्तु शिवाजी और उसके वंशजों के युग (1660–1700) के स्रोत–साधनों का अपेक्षाकृत अभाव है। इसके मुख्य दो कारण सुझाए गये हैं :–

1. शिवाजी तथा उसके वंशज/उत्तराधिकारी मुगलों के साथ संघर्ष करने में इतना अधिक व्यस्त रहते थे कि उनके पास इस प्रकार के ऐतिहासिक रिकार्ड तैयार करने का न तो समय था और न ही साधन।
2. लगभग 1700 ई0 में मराठा राजधानी तथा दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया और उन्होंने वहां संग्रहीत राजकीय दस्तावेजों को नष्ट कर दिया।

मराठा इतिहास पर जो कार्य किये गये, उनमें मराठी, संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, फ्रेन्च, पुर्तगाली तथा डच आदि मूल स्रोतों का अध्ययन कर इतिहास का पुनर्निरूपण करने का प्रयास किया गया है।

मराठी स्रोतों में बी0के0 राजवाड़े द्वारा 22 खण्डों में प्रकाशित *मराठ्यांच्या इतिहासाची साधने* महत्वपूर्ण है, विशेषतः खण्ड III, IV, VIII, XV, XVI तथा XVII किन्तु इस संकलन में तिथिक्रम पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। 1618 से 1697 तक के इतिहास पर *जेधे शकावली* से कुछ प्रकाश पड़ता हैं। इसे बी0सी0 तिलक ने

भोर के निकट करी के जेधे देशमुखों से प्राप्त किया था, जिनके पूर्वज कभी मराठों तथा कभी मुगलों के साथ रहे। इसका सम्पादित पाठ डी०वी० आप्टे ने *शिवचरित्र प्रदीप* में प्रकाशित किया। इसकी सूचना अधिक नहीं है। शिवाजी के कृतित्व पर नौ बखर ग्रन्थों से प्रकाश पड़ता है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजाराम के काल में उसके एक अधिकारी कृष्णाजी अनन्त सभासद द्वारा रचित बखर है। इसमें भी तिथिक्रम पर ध्यान नहीं दिया गया है। 1810-11 में कनिष्ठ शाहू (आबा साहब) के आदेश पर मल्हार रामराव चिटनीस द्वारा रचित बखर में स्रोतों का उल्लेख नहीं मिलता है। *शिवदिग्विजय* आकार में इन दोनों से बड़ा बखर है। इसका लेखक अज्ञात है। जे०एन० सरकार का विचार है कि यह उस अप्राप्य बखर पर आधारित है, जिसका फारसी अनुवाद *तारीख-ए-शिवाजी* के नाम से उपलब्ध है। सुरेन्द्र नाथ सेन ने इस तीनों बखर के कुछ भागों का अंग्रेजी अनुवाद 1920 में प्रकाशित किया। हमारे विषय की दृष्टि से *राजाराम चरितं* नामक संस्कृत रचना महत्वपूर्ण है। इसे 1931 में बी०एस० बेन्द्रे ने पूना से प्रकाशित किया, तथा इसके आधार पर वी० एस० सरदेसाई ने *राजाराम* नामक पुस्तक की रचना की।

फारसी स्रोतों में हमारे विषय की दृष्टि से *मासिर-ए-आलमगीरी, अखबारात-ए-दरबार-ए-मौला,* तथा *मुंतखब-उल्-लुलाब-ए-मुहम्मदशाही* विशेष रूप से महत्पूर्ण है। साकी मुस्तअदखां द्वारा रचित *मासिर-ए-आलमगीरी* 1658 से 1707 तक औरंगजेब का आधिकारिक इतिहास है। इसका लेखक बहादुर शाह के वजीर इनायतउल्ला खाँ का मुंशी था, और यह रचना 1710 में पूरी हुयी । इसे आधुनिक गैजेटियर के समान लिखा गया है और महत्व के सभी तथ्य इसमें विद्यमान है। इससे औरंगजेब के दक्षिणी अभियान के विषय में पर्याप्त सूचना मिलती है। सरकार द्वारा किया गया इसका अंग्रेजी अनुवाद 1871 में एशियाटिक सोसायइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित किया गया।

अखबारात में मुगल सम्राट द्वारा निजी तथा सार्वजनिक रूप से कि गये कार्यों तथा बोले गये कथनों का विवरण मिलता है। इसे प्रतिदिन लिखा जाता था और कभी-कभी दिन में दो बार। इन्हें रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में सुरक्षित रखा गया है। 4000 के लगभग अखबारात राजस्थान राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर, में भी उपलब्ध है। किन्तु ये अप्रकाशित हैं, और इनका प्रयोग द्वितीयक स्रोतों के आधार पर किया गया है।

मुहम्मद हाशिम खफी (खफी खाँ) की रचना, *मुंतखब-उल -लुबाव-ए -मुहम्मदशाही* में 1519 से मुहम्मद शाह के शासनकाल के चौदहवें वर्ष तक का इतिहास उपलब्ध है। खफी खाँ औरंगजेब की सेवा में अनेक राजनीतिक तथा सैन्य पदों पर रहा। उसने औरंगजेब के शासनकाल की सभी घटनाओं का सूक्ष्म विवरण दिया है। इस विवरण में कुछ ऐसे तथ्य भी सम्मिलित है, जिन्हें आधिकारिक आख्यानों में दबा दिया गया है। इसे 1874 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा प्रकाशित किया गया। औरंगजेब से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण अंशों का अनुवाद एलियट तथा डॉसन की हिस्ट्री ऑफ इण्डिया के सातवें खण्ड में प्रकाशित है। सरकार ने दक्षिण में औरंगजेब की गतिविधियों के अध्ययन के लिए इसे महत्वपूर्ण माना है।

भीमसेन बुरहानपुरी की रचना *नक्श-ए-दिलकश* में दक्षिण में मुगल गतिविधियों का आँखों देखा विवरण है। किन्तु इस ग्रन्थ का महत्व 1700 से प्रारम्भ होता है, तथा हमारे शोध विषय में इससे अधिक सहायता नहीं प्राप्त हो सकी। सरकार ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया, जिसे महाराष्ट्र सरकार ने 1972 में प्रकाशित किया।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के लिए मराठी में *शिवचरित्र प्रदीप*, *शिवचरित्र साहित्य* (13 खण्ड), *शिवभारत*, तथा फारसी में मोहम्मद इब्राहिम जुबैरी की बंसासीत-उस-सलातीन, मुहम्मद कासिम हिन्दू शाह फरिश्ता की *तारीख-ए-फरिश्ता*, रफी-उल्-दीन इब्राहीम शिराजी

की *तज़कीरात-ए-मुलूक*, मुहम्मद जहूर का *मुहम्मदनामा*, *तारीख-ए-शिवाजी*, *तारीख-ए-सुल्तान मोहम्मद कुतुब शाह* आदि उल्लेखनीय हैं।

यूरोपियन यात्रियों के वृतान्त में राजनीतिक तथ्यों पर अधिक विश्वास करना समीचीन नहीं होगा। सरकार का कथन है कि, उन घटनाओं को छोड़कर जिनमें उन्होंने स्वयं भाग लिया अथवा देखा, उनका विवरण बाजारी अफवाहों और जनसाधरण में प्रचलित किंवदन्तियों पर आधारित था। किन्तु इंगलिश फैक्ट्री रिकार्ड पर्याप्त विश्वसनीय है। इनकी मूल प्रतियां इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी में संग्रहीत हैं, किन्तु 1659 से 1682 तक से सम्बन्धित रिकार्ड को बी०जी० परांजपे ने दो खण्डों में *इंगलिश रिकार्ड्स ऑन शिवाजी* के नाम से प्रकाशित किया है। बाम्बे फैक्ट्री में सुनी गयी सूचनाओं का प्रयोग किया गया है, किन्तु राजापुर और करवाड़ में अंगेजों ने गुप्तचरों के माध्यम से मराठों की गतिविधियों के विषय में सूचनाएँ एकत्र करवाईं थीं। तीनों फैक्ट्रियों के रिकार्ड के अध्ययन से तथ्यों का अनुमान सहज लगाया जा सकता है। अंगेजी में *मद्रास डायरी* से भी सहायता प्राप्त होती है। मनूची की *स्टोरिया डो मोगोर* को डब्ल्यू० इर्विन द्वारा चार खण्डों में सम्पादित तथा अनूदित किया गया। फ्राँस्वा मार्तिन के *मेम्वार* भी महत्वपूर्ण है, जिसका सरकार ने *हाउस ऑफ शिवाजी* में 1955 में अनुवाद किया।

आधुनिक इतिहासकारों की यह सामान्य प्रवृत्ति रही है कि वे मूल मराठी स्रोतों, विशेषरूप से बखर और जेधे शकावली, के ऐतिहासिक उल्लेखों को संदिग्ध मानते हैं तथा इतिहास के स्रोत साधन के रूप में नहीं स्वीकार करते हैं। इस श्रेणी के स्रोत-साधनों की मराठा इतिहास में वही स्थिति है, जो कुछ समय पूर्व तक प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत- साधनों के रूप में पुराणों के साक्ष्य की थी। किन्तु जिस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत-साधन के रूप में पुराणों के महत्व को पुनः मान्यता प्राप्त हो रही है, उसी प्रकार इन मराठी स्रोतो का भी खुले (तथा सजग)

दिमाग से अध्ययन करना आवश्यक है और इस शोध प्रबन्ध में यही करने का प्रयास किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि जदुनाथ सरकार की कोटि के कुछ विद्वानों ने *सभासद बखर* जैसे मराठी स्रोतों के महत्व को स्वीकार किया है।

फारसी, विशेष रूप से मुग़ल, स्रोतों में दिया गया विवरण एकपक्षीय हो सकता है-इनमें मुगलों की वीरता की प्रशंसा की गई है और मराठों के प्रति अपमानजनक रवैया तथा शैली अपनायी गयी है। किन्तु इन विवरणों में विभिन्न घटनाओं की तिथि तथा उनका क्रम पर्याप्त रूप से विश्वसनीय है। विशेष रूप से *अखबारात* के सन्दर्भ में यह बात कही जा सकती है।

यूरोपियन स्रोत भी पर्याप्त विश्वसनीय है तथा वे सामान्यतः पक्षपात से मुक्त है, विशेष रूप से उन घटनाओं के बारे में जिनसे उनका कोई निकट का सम्बन्ध नहीं था।

इस शोध प्रबन्ध में यह प्रयास किया गया है कि इन सभी स्रातो का वस्तुपरक अध्ययन किया जाये तथा जहां तक सम्भव हो सके नयी व्याख्या प्रस्तुत की जाये, और सन्ताजी घोरपड़े के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सन्तुलित विवरण दिया जाये।

मराठों का इतिहास लिखते समय आधुनिक इतिहासकार शिवाजी और उसके परिवार से इतना अधिक प्रभावित रहे कि अन्य मराठा परिवारों के इतिहास पर उन्होंने वह ध्यान नहीं दिया, जिसके कि वे परिवार पात्र थे। यह कमी घोरपड़े परिवार के सम्बन्ध में भी दिखायी देती है। शिवाजी के परिवार का इतिहास लिखते समय घोरपड़े नायकों के उल्लेख बिखरे रूप में उपलब्ध हैं, किन्तु इस परिवार का सम्बद्ध इतिहास नहीं लिखा गया। जे०एन० सरकार ने सर्वप्रथम घोरपड़े परिवार के सर्वाधिक महत्वपूर्ण नायक, सन्ताजी घोरपड़े, पर कुछ पृष्ठ अपनी पुस्तक, *हाउस ऑव शिवाजी* में 'अ हीरो ऑफ ओल्ड महाराष्ट्र' शीर्षक वाले अध्याय के रूप में लिखे। इसे पढ़कर इस मराठा नायक के प्रति मेरी रुचि जागृत हुई, और

अपने शोध-निदेशक से विचार-विमर्श कर मैनें इस विषय का चयन किया। 457806

विषय पर आने से पूर्व 1689 के लगभग सन्ताजी घोरपड़े की महत्वपूर्ण सैन्य गतिविधियाँ प्रारम्भ होने से पहले की दक्षिण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक होगा, जिससे मराठा गतिविधियों को उनके सही परिपेक्ष्य में समझा जा सके। 1294 में अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण आक्रमण के साथ दक्षिण भारत में मुसलमानों का पदार्पण हुआ। इसके पहले के लगभग 100 वर्षो में इन आक्रमणकारियों ने लगभग पूरे उत्तर भारत पर अधिकार कर लिया था। अलाउद्दीन के दक्षिण आक्रमण से स्पष्ट होता है कि इन मुसलमान आक्रन्ताओं की महत्वाकांक्षा दक्षिण भारत पर अधिकार किये बिना पूरी होने वाली नहीं थी। देवगिरि के राजाओं ने दिल्ली सुल्तानों का सामना करने के प्रयास किये किन्तु असफल रहे और 1347 तक महाराष्ट्र दिल्ली सुल्तानों के अधिकार में बना रहा। उस वर्ष बहमनी सल्तनत की स्थापना हुई और बहमनी सुल्तान लगभग 150 वर्षो तक महाराष्ट्र पर शासन करते रहे। बहमनी राज्य में केन्द्रीय सत्ता की निर्बलता और अयोग्यता के कारण प्रान्तीय प्रशासक धीरे-धीरे अपने प्रान्तों में लगभग स्वतन्त्र राजा की तरह शासन करने लगे और एक-एक करके पाँच स्वायत्तशासी राज्य आस्तित्व में आये-अहमदनगर, बीजापुर, बरार, गोलकुण्डा और बीदर। बहमनी राज्य के विघटन की प्रक्रिया जुन्नार के प्रान्तीय प्रशासक मलिक अहमद निजाम-उल-मुल्क ने प्रारम्भ की जिसने सुल्तान महमूद शाह बहमनी (1482-1518) के प्रधानमंत्री कासिम बरीद की आज्ञाओं का पालन करने से इन्कार कर दिया और 1490 में अहमदनगर की स्थापना कर स्वयं को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। उसी वर्ष बीजापुर के प्रान्तीय प्रशासक यूसुफ आदिल-शाह और बरार के गर्वनर फतह-उल्लाह-इमाद्-उल-मुल्क ने निजाम-उल-मुल्क का अनुसरण किया और अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। 1518 में महमूद शाह की मृत्यु के बाद

तेलंगाना के गर्वनर सुल्तान कुतुब-उल-मुल्क ने भी स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। 1504 में कासिम बरीद की मृत्यु के बाद उसके पुत्र अमीर-बरीद ने कुछ समय तक ह्रासोन्मुखी बहमनी राज्य के प्रशासन की देखरेख की। किन्तु 1528 में अन्तिम बहमनी सुल्तान कलीम-उल्लाह बीदर से भाग कर बीजापुर और वहाँ से अहमदनगर पहुँचा जहाँ 1538 में उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार अमीर बरीद के हिस्से में बहमनी राज्य वह भाग आया जिस पर कलीम-उल्लाह के शासनकाल तक बहमनी सुल्तानों का अधिकार था। अमीर बरीद ने *शाह* की उपाधि ग्रहण नहीं की किन्तु उसके पुत्र और उत्तराधिकारी अली बरीद ने 1542 में *शाह* की उपाधि धारण कर राज्य प्रारम्भ किया।

बरार में इमाद-उल-मुल्क के नाम से पहली बार 1529 में खुतबा पढ़ा गया।[1] बीजापुर में चौथे शासक इब्राहिम आदिल शाह-I (1553-1557) ने पहली बार *शाह* की उपाधि धारण की और गोलकुण्डा में तीसरे शासक इब्राहिम-कुतुब-शाह (1550-1580) ने औपचारिक रूप से *शाह* की उपाधि ग्रहण की। यद्यपि इन राजाओं ने इससे पूर्व राजकीय उपाधि ग्रहण नहीं की, तथापि उस काल में जब बहमनी सिंहासन पर राजवंश का कोई सदस्य आरूढ़ नहीं था, ये अपने-अपने राज्य में व्यवहारिक रूप में स्वतन्त्र शासक की तरह राज्य कर रहे थे।

इस प्रकार दक्षिण भारत में पांच स्वतन्त्र सल्तनतें अस्तित्व में आईं - (1) बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत, (2) गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत, (3) अहमदनगर की निजामशाही सल्तनत, (4) बीदर की बरीदशाही सल्तनत, और (5) बरार की इमादशाही सल्तनत। इनमें से बरार की इमादशाही सल्तनत पर 1574 में अहमदनगर का अधिकार हो गया था। कुछ विद्वानों का मत है कि बीजापुर नें बीदर की बरीदशाही सल्तनत पर 1609 में अपना यह अधिकार स्थापित कर दिया था। किन्तु यह तिथि सही प्रतीत नहीं होती। मासिर-ए-रहीमी की सूचना है कि 1616 में बीदर ने

मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष में मलिक अम्बर की सहायता की थी।[2] बसातीन-उस्-सलातीन के अनुसार बीदर पर बीजापुर का अधिकार 1619 में स्थापित हुआ था[3] और हेग[4] तथा जे0एन0 चौधरी[5] ने इसी तिथि को स्वीकार किया। शेष तीन सल्तनतों, गोलकुण्डा, बीजापुर, और अहमदनगर में से अन्तिम दो ने एक लम्बे समय तक नर्मदा नदी के दक्षिणी क्षेत्र के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभायीं।

अहमदनगर ख़ानदेश के दक्षिण में बीजापुर के उत्तर की ओर स्थित था। बरार अहमदनगर के उत्तर-पूर्व में था, और जब बरार पर अहमदनगर का अधिकार स्थापित हो गया तब अहमदनगर की पूर्वोत्तर सीमा खानदेश की दक्षिण-पूर्वी सीमा से छू गई। बीदर बीजापुर के पूर्व की ओर और अहमदनगर के दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित था तथा उसकी पूर्वी सीमा और गोलकुण्डा की पश्चिमी सीमा लगभग एक ही थी। अतः बीदर तीन शक्तिशाली सल्तनतों, बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा से घिरा हुआ था।

इस युग के दक्षिण भारत के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता दक्षिण भारत पर आधिपत्य के लिए अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के मध्य निरन्तर चलने वाला संघर्ष है जिसके कारण दक्षिण भारत की शान्ति एवं समृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इस संघर्ष में बरार और बीदर ने भी अलग-अलग समय में अलग-अलग शक्तिशाली सल्तनत का साथ दिया। कभी-कभी विवाह अथवा मैत्री के माध्यम से शान्ति स्थापित करने के प्रयास किये गये किन्तु इन प्रयासों में अधिक सफलता नहीं मिली। 1564 में पहली बार बीजापरु, अहमदनगर, गोलकुण्डा तथा बीदर के सुल्तानों ने विजयनगर साम्राज्य के विरुद्ध एक संघ बनाया और 1565 में तालीकोटा के युद्ध में मिलकर विजयनगर साम्राज्य के साथ संघर्ष किया। मलिक अम्बर के काल में उसी के प्रयासों के परिणाम स्वरूप अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा ने मिलकर दक्षिण में मुगलों की शक्ति के विस्तार को रोका। नीचे इन सल्तनतों का

संक्षिप्त इतिहास पृष्ठभूमि के रूप में दिया जा रहा है।

1490 में जुन्नार के गवर्नर मलिक अहमद ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी। उसके विषय में बताया जाता है कि वह निजाम–उल–मुल्क बाहरी का पुत्र था जो मूलतः विजयनगर का एक ब्राह्मण था। बहमनी सुल्तान अहमदशाह ने उसे बंदी बनाकर मुसलमान बना लिया और उसे मलिक हसन का नाम दिया। उसकी शिक्षा शाहजादा मोहम्मद के साथ हुई और अपनी योग्यता के बल पर उसने प्रभावशाली पद प्राप्त किया और *निजाम–उल–मुल्क* की उपाधि धारण की।[6] उसकी मृत्यु के पश्चात मलिक अहमद ने *निजाम–उल–मुल्क* की उपाधि धारण की और इसी के आधार पर उसके वंश का नाम निजामशाही वंश पड़ा। उसने सिना नदी के तट पर एक नगर की स्थापना की और उसे सुन्दर भवनों और बागों से सुसज्जित कराया। इस नगर को उसने अहमदनगर नाम दिया और अपनी राजधानी बनाया। उसने कभी *शाह* की उपाधि धारण नहीं की। मलिक अहमद के उत्तराधिकारी क्रमशः बुरहान निजाम शाह–I (1505–1553), हुसैन निजाम शाह–I (1553–1565), मुर्तजा निजाम शाह–II (1565–1588) हुसैन निजाम शाह–II (1588–1589), इस्माइल निजाम शाह–II (1589–1591), बुरहान निजाम शाह–II (1591–1595), इब्राहीम निजाम शाह (1595) और कुछ अन्तराल के साथ हुसैन निजाम शाह–III(1630–1633) हुये। 1595 से 1630 के बीच अहमदनगर में अव्यवस्था व्याप्त रही। उत्तराधिकार के लिए चाँद सुल्तान, इखलास खाँ, आभंगखाँ और मियाँ मंझू के संघर्ष का लाभ उठाकर मुगलों ने अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया। जुलाई 1600 में चाँद सुल्तान की हत्या के एक माह के भीतर अहमदनगर पर मुगलों की विजय हो गयी।[7] इस विजय के परिणामस्वरूप राजधानी अहमदनगर और उसके आस–पास के क्षेत्रों पर मुगलों का अधिकार हो गया। किन्तु सल्तनत के एक बड़े भाग पर मलिक अम्बर और राजू दक्खिनी जैसे प्रभावशाली निजामशाही सामन्त लगभग स्वतन्त्र राजा के रूप

में शासन करते रहे। मलिक अम्बर अपने प्रयासों से अहमदनगर को जीवित रखने में सामर्थ रहा। उसने निजाम शाही परिवार के शाह अली के पुत्र को मुर्तजा शाह निजाम-उल-मुल्क की उपाधि के साथ 1600 में परेण्डा में सुल्तान घोषित किया। किन्तु वास्तविक शासन वकील-उस्-सल्तनत (संरक्षक) मलिक अम्बर के हाथों में ही रहा। 1600 से 1630 तक के मुर्तजा-II के शासन काल में वह मुगलों का सामना करने में सफल रहा। इस संघर्ष के दौरान अधिकांश मराठा जागीरदारों ने अहमदनगर का साथ छोड़ दिया और मुगलों की ओर चले गये। किन्तु शाहजी भोंसले निरन्तर मलिक अम्बर का साथ निभाता रहा।[8] मलिक अम्बर की मृत्यु के बाद उसके अयोग्य पुत्र फतेहखाँ ने मुगलों के सुझाव पर मुर्तज-II की हत्या करवा दी और उसके दस वर्षीय पुत्र हुसैन निजाम शाह-III को निजाम घोषित कर दिया। बाद में शाहजहाँ उससे रूष्ट हो गया और फतेहखाँ को हुसैन निजाम शाह-III के साथ दौलताबाद के किले में छुपना पड़ा। प्रारम्भ में उसने मुगलों के समक्ष समर्पण कर दिया किन्तु बाद में पुनः शाहजहाँ को रूष्ट कर दिया। मुग़ल सेना ने दौलताबाद के किले को घेर लिया और चार महीने की घेराबन्दी के बाद 1633 में किले पर अधिकार कर लिया। हुसैन को बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में भेज दिया गया।[9] इस प्रकार अहमदनगर की सल्तनत का अन्त हुआ। 1636 में शाहजी ने बीजापुर की सहायता से निजामशाही परिवार के एक सदस्य को सुल्तान बनाने का प्रयास किया लेकिन सफलता नहीं मिली।

गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत की स्थापना सुल्तान कुली-कुतुब-उल-मुल्क ने की। उसका सम्बन्ध एक तुर्की परिवार से था और उसका जन्म ईरान में हमादान में हुआ था। युवावस्था में वह भारत आया और बहमनीं सुल्तान मुहम्मद शाह-III का अंगरक्षक नियुक्त हुआ। अपनी योग्यता से उसने आगे चलकर महत्वपूर्ण पद प्राप्त किये और फिर बहमनी राज्य के पूर्वी प्रान्त, तेलंगाना, का

गवर्नर नियुक्त हुआ। बहमनी सत्ता की दुर्बलता का लाभ उठाकर 1518 में मुहम्मद शाह की मृत्यु होने पर अन्य प्रान्तपतियों के समान उसने भी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की, किन्तु कभी भी *शाह* की राजकीय उपाधि धारण नहीं की।[10] यद्यपि फरिश्ता के अनुसार उसने 1512 में औपचारिक रूप से स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी, तथापि कुछ आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार वह 1518 में औपचारिक रूप से स्वतन्त्र हो गया था। यह उल्लेखनीय है कि *सुल्तान* उसकी उपाधि न होकर उसके नाम का एक भाग है और *कुतुब-उल-मुल्क* की उपाधि उसे बहमनी सुल्तान द्वारा प्रदान की गई थी।[11] उसने तेलुगु भाषी अधिकांश क्षेत्रों पर अपना अधिकार स्थापित करने का सफल प्रयास किया। 98 वर्ष की आयु में उसके पुत्र जमशीद द्वारा सितम्बर 1543 में उसकी हत्या करवा दी गयी।[12]

जमशीद कुतुब खाँ (1543-1550) एक योग्य शासक सिद्ध हुआ। 1543 में उसने बीजापुर के विरुद्ध अहमदनगर का साथ दिया 1548 तक उसने गोलकुण्डा का प्रभाव इतना बढ़ा दिया था कि बीजापुर और अहमदनगर दोनों उसका साथ पाने का प्रयास करने लगे। इसके अतिरिक्त उसने अली बरीद को इब्राहीम आदिल शाह-I की कैद से मुक्त कराने में प्रमुख भूमिका निभाई। उसकी मृत्यु के बाद उसका अल्पवयस्क पुत्र सुबहान कुली सिंहासन पर बैठाया गया, किन्तु शीघ्र ही जमशीद के छोटे भाई इब्राहीम ने, जो जमशीद के भय से विजयनगर में शरण लिये हुआ था, गोलकुण्डा लौट कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया और 1550 से 1580 तक राज्य किया। *शाह* की उपधि धारण करने वाला वह प्रथम कुतुबशाही शासक हुआ। उसने विजयनगर साम्राज्य पर आक्रमण करके उसके एक बड़े भूभाग पर अधिकार कर लिया।[13] उसके काल में गोलकुण्डा में शान्ति स्थापित हुई और तेलंगाना मिस्र के समान एक प्रसिद्ध बाजार बन गया।[14] उसने तेलुगू साहित्य को प्रश्रय दिया और हिन्दुओं को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया।[15]

इब्राहीम के बाद उसका पुत्र मोहम्मद कुली-कुतुब शाह (1580-1612) सुल्तान बना। 1586 में उसकी बहन, मल्लिका जमान, का विवाह इब्राहीम आदिल शाह-I के साथ हुआ और गोलकुण्डा तथा बीजापुर के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुए। इसके अतिरिक्त ईरान के शाह अब्बास सफवी ने अपना एक दूत अगुजलू सुल्तान गोलकुण्डा भेजा।[16] 1611 में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कुतुबशाही सल्तनत के एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह नगर मसूलीपत्तनम् में एक फैक्ट्री लगायी। मोहम्मद कुली ने अपनी सल्तनत की राजधानी गोलकुण्डा नगर से हैदराबाद स्थानान्तरित की, जहां उसने एक भव्य नगर की स्थापना की। उसकी मृत्यु के बाद उसका भतीजा और दामाद मुहम्मद कुतुबशाह (1612-1626) सुल्तान बना। उसने मुगलों के विरुद्ध दक्षिण भारतीय राज्यों के संघ में भाग लिया। उसके शासन के पांचवें वर्ष में गोलकुण्डा के सुल्तानों पर प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ *तारीख-ए-मुहम्मद कुतुबशाह* पूर्ण हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसका 12 वर्षीय पुत्र अब्दुल्ला कुतुबशाह सुल्तान बना। उसके 46 वर्ष के दीर्घशासन में फरवरी 1667 तक उसकी मां, हयात बक्श बेगम और तत्पश्चात् उसके बड़े दामाद सैयद अहमद को प्रशासन की देखरेख करनी पड़ी।[17] 1636 में अब्दुल्ला ने शाहजहां के प्रभुत्व को स्वीकार किया। 1656 में दक्कन में मुगल वाइसराय, औरंगजेब, ने गोलकुण्डा पर आक्रमण किया किन्तु दारा शिकोह और जहांआरा के प्रयासों से उसे यह घेराबन्दी उठानी पड़ी। 1672 में अब्दुल्ला की मृत्यु हुई, और उसका तीसरा दामाद अबुल हसन (1672-1687) सुल्तान बना। वह अधिकाँश समय अपने प्रधानमंत्रियों, पहले सैयद मुजफ्फर, तथा बाद में सूर्य प्रकाश राव (मादन्न) के प्रभाव में रहा। इस दौरान गोलकुण्डा की स्थिति दयनीय बनी रही।[18] 1677 से अब्बुल हसन के शिवाजी के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हो गये थे। 1685 में उसने मुगलों के विरुद्ध बीजापुर को सैन्य सहायता प्रदान की थी। इस सबसे रूष्ट होकर औरंगजेब ने 1685 में अपने पुत्र शाह आलम को हैदराबाद पर

आक्रमण करने के लिए भेजा। इसमें उसे गोलकुण्डा के सेनापति मीर मुहम्मद इब्राहीम से सहायता मिली। हैदराबाद पर मुगलों का अधिकार हो गया।[19] अबुल हसन ने गोलकुण्डा के किले में शरण ली। बाद में कुछ समय के लिए गोलकुण्डा और मुगलों के बीच शान्ति स्थापित हुई। किन्तु फरवरी 1687 में औरंगजेब ने गोलकुण्डा का किला पुनः घेर लिया जहां अबुल हसन निवास कर रहा था। साढ़े सात मास की घेराबन्दी के पश्चात् औरंगजेब गोलकुण्डा के एक उच्चाधिकारी सरदार खाँ की सहायता से किले में प्रविष्ट होने में सफल रहा।[20] अबुल हसन को बन्दी बनाकर दौलताबाद भेज दिया गया, और गोलकुण्डा मुगल साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत का संस्थापक युसूफ आदिल खाँ था। फरिश्ता के अनुसार वह मूलतः तुर्की के सुल्तान मुराद-II का पुत्र था। उसके बडे भाई मुहम्मद ने सुल्तान बनने पर शेष भाइयों के वध के आदेश दिये। यूसुफ बच कर ईरान आ गया और 17 वर्ष की आयु में उसे एक दास के रूप में बहमनी सल्तनत के मंत्री महमूद गावान के हाथों बेचा गया।[21] अपनी योग्यता के बल पर वह प्रगति करता हुआ बीजापुर का गवर्नर बना। बहमनी सल्तनत की निर्बलता का लाभ उठाकर 1490 में उसने स्वतन्त्रता घोषित कर दी। उसे अपनी धार्मिक नीति के कारण अहमदनगर के मलिक अहमद, बहमनी सुल्तान महमूद शाह, तथा तेलंगाना के गवर्नर कुली कुतुब-उल्-मुल्क के सम्मिलित आकमण का सामना करना पडा।[22]

1510 में पुर्तगाली गवर्नर अल्बुकर्क ने गोवा पर अधिकार कर लिया, किन्तु युसूफ ने शीघ्र ही उसे जीत लिया। अक्तूबर 1510 में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके उत्तराधिकारी इस्माइल आदिल खाँ(1510-1534), और मल्लू आदिल खाँ (1534-1535) हुए। मल्लू एक अयोग्य शासक सिद्ध हुआ, और उसके स्थान पर उसके छोटे भाई इब्राहिम को सुल्तान बनाया गया, जो इस वंश में *शाह*

की उपाधि धारण करने वाला पहला शासक बना। उसकी मृत्यु 1557 में हुई, और उसके उत्त्राधिकारी कमशः अली आदिल शाह–I (1557–1580), इब्राहिम आदिल शाह–II (1580–1627), मुहम्मद आदिल शाह (1627–1656), और अली आदिल शाह–II (1656–1672) हुए। इब्राहिम आदिल शाह–II नौ वर्ष की आयु में सुल्तान बना था और उसके शासनकाल में अली आदिल शाह–I की विधवा और हुसैन निजाम शाह–I की पुत्री चाँद सुल्तान ने प्रभाव शाली भूमिका निभाई। मलिक अम्बर के साथ इब्राहिम–II के अच्छे सम्बन्ध थे। दोनो ने मिलकर मुगलों के दक्षिण पर अधिकार के प्रयासों को एक लम्बे समय तक सफल नही होने दिया।[23]

बीजापुर का अन्तिम आदिलशाही सुल्तान सिकन्दर आदिल शाह (1672–1686) हुआ। अल्पवयस्क होने के कारण उसके शासनकाल में प्रशासन की बागडोर उसके वजीरों के हाथों में रही। सरकार का कथन है कि 1672 से 1686 तक बीजापुर का इतिहास वास्तव में उसके वजीरों का इतिहास है।[24] इन वजीरों, कमशः खवास खाँ, बहलूल, मसूद और आका खुसरो, की नीतियों के कारण बीजापुर सल्तनत की स्थिति बिगड़ती चली गयी। इसका लाभ उठाकर मुगलों ने बीजापुर के क्षेत्रों पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। मई 1684 में मंगलवाड़ी तथा संगोला पर मुगल अधिकार स्थापित हुआ। गोलकुण्डा के सुल्तान और शम्भूजी ने बीजापुर की सहायता करने के प्रयास किये। अप्रैल 1685 में मुगलों ने बीजापुर का किला घेर लिया किन्तु 15 मास की घेराबन्दी के बाद भी कोई सफलता नहीं मिली। 1586 में औरंगजेब स्वयं किले के पश्चिम में स्थित रसूलपुर पहुंचा और उसकी उपस्थित के कारण बीजापुरी हतोत्साहित हो गये। सितम्बर 1686 में सिकन्दर ने मुगल सम्राट के समक्ष समर्पण कर दिया।[25] सिकन्दर को एक लाख रुपये सालाना पेंशन के साथ बन्दी बना लिया गया, और अप्रैल 1700 में 32 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बीजापुर सल्तनत मुगलों के अधिकार में

आ गयी।

बरार की इमादशाही सल्तनत का संस्थापक, फतह-उल्ला इमाद-उल-मुल्क, मूलतः कर्णाटक का एक हिन्दू था, जिसे बाल्यकाल में बहमनी सेना ने बन्दी बना लिया और इस्लाम ग्रहण करने पर विवश किया। आगे चलकर वह पहले बरार के गवर्नर, खान जहान, का अंगरक्षक नियुक्त हुआ, और धीरे-धीरे, अपनी योग्यता के बल पर *इमाद-उल्-मुल्क* की उपाधि के साथ स्वयं बहमनी सल्तनत के इस उत्तरी प्रान्त का गवर्नर बना। सल्तनत की निर्वलता का लाभ उठाकर 1490 में वह स्वतन्त्र हो गया।[26] 1504 में उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र अलाउद्दीन इमाद शाह (1504-1530) बरार का शासक हुआ। उसके काल में बरार का अहमदनगर की निजामशाही सल्तनत के साथ दीर्घकालिक संघर्ष हुआ, जिसमें अन्ततः बरार की पराजय हुई।[27]

उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र दरया इमाद शाह (1530-1562) हुआ, जिसके काल में बरार में अपेक्षाकृत सुख-शान्ति रही। 1562 में उसकी मृत्यु होने पर उसका अल्पवयस्क पुत्र बुरहान इमादशाह सुल्तान बना। उसके संरक्षक मंत्री, तुफाल खाँ ने उसे नरनाल के किले में सीमित कर दिया, और स्वयं शासन करने लगा। 1566 में अदिल शाह और निजाम शाह ने मिलकर बरार पर आक्रमण कर दिया। परन्तु तुफाल खां ने धन और 50 हाथी की भेंट देकर आदिल शाह को प्रसन्न कर लिया, और स्वयं को अकेला पा कर निजाम शाह वापस लौट गया। किन्तु कुछ ही समय बाद मुर्तजा-I ने बरार पर आक्रमण कर दिया और तुफाल खां ने भागकर नरनाल के किले में शरण ली। अप्रैल 1574 को इस किले पर मुर्तजा-I का अधिकार हो गया। बुरहान इमाद शाह और तुफाल खां को अहमदनगर ले जाया गया, जहां कारागार में उनकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार बरार की इमादशाही सल्तनत का अन्त हुआ।[28]

1482 से 1518 तक शासन करने वाला बहमनी सुल्तान महमूद शाह एक अयोग्य शासक सिद्ध हुआ। इसका लाभ उठाकर उसके वजीर, कासिम बरीद, ने प्रशासन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। वह मूलतः एक तुर्क था, जो बाल्यकाल में बहमनी सल्तनत आया था, और मुहम्मद शाह-III को सेवा में प्रविष्ट हुआ था। अपनी योग्यता के बल पर वह धीरे-धीरे वजीर बन गया। 1504 में उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र अमीर बरीद, वज़ीर बना। 1518 में महमूद शाह की मृत्यु हुई, और उसके उत्तराधिकारी बनें चार सुल्तान अमीर बरीद के हाथ के मोहरे मात्र थे। इनमें से अन्तिम, कलीमुल्ला, ने बाबर की सहायता से अपनी शक्ति स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु असफल रहने पर वह 1528 में बीदर से भाग गया, और 1538 में उसकी मृत्यु हो गयी। 1528 में उसके बीदर से पलायन के साथ ही अमीर बरीद व्यवहार में स्वतन्त्र शासक के रूप में कार्य करने लगा, यद्यपि उसने कभी औपचारिक रूप से स्वतन्त्रता घोषित नहीं की और न ही *शाह* की उपाधि धारण की।

अमीर बरीद अत्यन्त चतुर था।[29] 1529-30 में उसका बीजापुर के इस्माइल आदिल शाह के साथ संघर्ष हुआ, और उसे बीदर का किला आदिल शाह को सौंपना पड़ा।[30] किन्तु जब उसने रायचूर और मुदगल पर अधिकार करने में 1530 में इस्माइल आदिल शाह की सहायता की, तो बीदर उसे इस शर्त पर वापस लौटा दिया गया कि वह कल्याणी और कन्दहार बीजापुर को सौंप देगा। उसने अपनी ओर से शर्त पूरी नहीं की, और नलदुर्ग के पास उसे इस्माइल आदिल शाह के हाथों पराजित होना पड़ा। 1542 में अचानक उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी अली बरीद ने 1580 तक राज्य किया। वह *शाह* की उपाधि धारण करने वाला बीदर का पहला शासक था। 1564 में उसने अहमदनगर, बीजापुर और गोलाकुण्डा के साथ मिलकर तालीकोटा के युद्ध में विजयनगर साम्राज्य को पराजित किया। उसके उत्तराधिकारी उसके

पुत्र, क्रमशः इब्राहीम बरीद शाह और कासिम बरीद शाह–II हुये। तालीकोटा के युद्ध के परिणामस्वरूप अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा की शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी और बीदर जैसे छोटे राज्यों का आकार धीरे-धीरे घटने लगा। 1591 में कासिम बरीद–II की मृत्यु होने पर उसका अल्पवयस्क पुत्र सुल्तान बना, जिसे एक सम्बन्धी अमीर बरीद ने सिंहासन से हटा दिया और स्वयं अमीर बरीद–II के नाम से 1601 तक शासन किया। उसे हटा कर मिर्जा अली बरीद 1609 तक सुल्तान रहा। अगला शासक अमीर बरीद शाह–III बीदर का अन्तिम सुल्तान था। उसने 1616 में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा के साथ मिलकर मुगलों से संघर्ष किया। 1619 ने इब्राहीम आदिल शाह–II ने बीदर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया, और बीजापुर की सल्तनत ने मिला लिया। अमीर बरीद–III को बीजापुर लाकर 'निगरानी' में रखा गया।[31]

इस प्रकार 1574 में बरार की इमादशाही सल्तनत, 1619 में बीदर की बरीदशाही सल्तनत, 1633 में अहमदनगर की निजामशाही सल्तनत, 1686 में बीजापुर की आदिलशाली सल्तनत और 1687 में गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत का अन्त हो गया। किन्तु महाराष्ट्र में एक अन्य शक्ति का उदय हो रहा था, जिसके साथ निरन्तर संघर्ष करने के उपरान्त भी औरंगजेब को असफलता का मुंह देखना पड़ा।[32]

सातवाहनों के काल से लेकर देवगिरि के यादवों के पतन (1311) तक दकन, विशेष रूप से महाराष्ट्र, हिन्दू संस्कृति का केन्द्र रहा। किन्तु बहमनी सल्तनत और उसकी उत्तराधिकारी सल्तनतों के काल में इस संस्कृति का पतन हुआ। सोलहवी शती में विजयनगर साम्राज्य में एक बार पुनः हिन्दू संस्कृति का पुनर्जागरण हुआ। तालीकोटा के युद्ध में विजयनगर साम्राज्य को पराजय का मुख देखना पड़ा, किन्तु 1584 से 1614 के मध्य शासन करने वाले बेंकट–II ने अपनी शक्ति को पुनः स्थापित कर लिया। 1650 तक विजयनगर के शासकों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। हिन्दू

स्वतन्त्रता आन्दोलन एक राष्ट्रीय नायक के अभाव में दिशाहीन हो चला था। इस रिक्त स्थान को सत्रहवीं शती के मध्य के लगभग भोंसले परिवार के शाहजी तथा जाधव परिवार की उसकी पत्नी जीजाबाई के पुत्र, शिवाजी, ने भरने का प्रयास प्रारम्भ किया।[33] वह महाराष्ट्र, के प्रसिद्ध संत रामदास का शिष्य था।

प्रारम्भ में औरंगजेब ने शिवाजी की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। वह अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक फैली बीजापुर की समृद्ध आदिलशाही सल्तनत पर मुगल अधिकार स्थापित करने पर अधिक ध्यान दे रहा था। किन्तु बीजापुर पर मुगल आक्रमण के दौरान, शिवाजी ने अहमदनगर से औरंगजेब की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके 1000 घोड़े भगा लिये थे। इस घटना ने औरंगजेब को शिवाजी के सामर्थ्य के प्रति सजग कर दिया था।[34]

शाहजहाँ की अस्वस्थता की सूचना पाकर औरंगजेब बीजापुर का अभियान अपूर्ण छोड़कर उत्तर भारत चला गया। दक्षिण से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर शिवाजी ने महाराष्ट्र पर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। 1662 में बीजापुर ने उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता प्रदान कर दी।[35] एक वर्ष बाद जब औरंगजेब मुगल सम्राट के रूप में दक्षिण लौटा तो उसकी सेना को एक शक्तिसम्पन्न राजा का सामना करना पड़ा, जिसे जनसमर्थन प्राप्त था। औरंगजेब के दो सेनापतियों शाइस्ताखां[36] और मुअज्जम[37] को शिवाजी के विरुद्ध कोई सफलता नहीं मिली तब उसने राजा जयसिंह को दक्षिण की कमान सौंपी।[38] शिवाजी राजा जयसिंह के समझाने पर औरंगजेब से मिलने आगरा पहुंचा, जहां उसे बन्दी बना लिया गया। किन्तु वह 'पहाड़ी चूहा' चतुराई से भाग निकला और शीघ्र ही अपने राज्य पहुंच गया।[39]

कुछ समय के लिए औरंगजेब उत्तर भारत में व्यस्त हो गया। किन्तु शिवाजी जानता था कि उत्तर भारतीय कठिनाइयों से मुक्त होते ही मुगल सम्राट अपनी पूरी शक्ति के साथ महाराष्ट्र पर आक्रमण कर देगा। इसलिए उसने दक्षिण में एक सुरक्षा पंक्ति

तैयार की और कर्णाटक की विजय कर जिंजी को अपनी दूसरी राजधानी बनाया। 1680 में उसकी मृत्यु के समय मराठा राज्य दक्षिण भारत की महत्वपूर्ण शक्ति बन गया था, और बीजापुर तथा गोलकुण्डा की सल्तनतें भी मुगलों से अपनी रक्षा के लिए उससे सहायता मांगती दिखती है।[40]

शिवाजी की मृत्यु के पश्चात मराठा राज्य में उत्तराधिकार को लेकर होने वाली कलह तथा षड्यन्त्रों से औरंगजेब को सम्भवतः कुछ राहत मिली हो। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मराठों की ओर से अपेक्षाकृत निश्चिन्त हो गया। शम्भूजी पर दबाव बनाये रखते हुए, उसने कृष्णा नदी के पार बीजापुर के विरुद्ध अभियान पर अधिक ध्यान देना आरम्भ किया। इस अभियान ने दक्षिण की शक्तियों में एक बार पुनः एकता उत्पन्न की। गोलकुण्डा के कुतुबशाही सुल्तान ने बीजापुर की सहायता के लिए सेना भेजी। अपने पिता की नीति का अनुसरण करते हुए शम्भूजी ने भी सैनिकों के एक टुकड़ी सिकन्दर आदिल शाह की सहायता के लिए भेजी।[41] किन्तु 1686 में औरंगजेब ने स्वयं युद्ध की कमान संभाल ली, और सितम्बर 1686 में सिकन्दर आदिल शाह को समर्पण करना पड़ा। अगले वर्ष औरंगजेब ने गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत पर अधिकार कर लिया।[42]

इन विजयों के परिणामस्वरूप मुगल सम्राट मराठों के क्षेत्र को छोड़कर लगभग पूरे दक्षिण भारत पर अधिकार करने में सफल हुआ। अब उसने मराठों को कुचलने में पूरी शक्ति लगा दी। शिवाजी का उत्तराधिकारी शम्भूजी अपने पिता के समान कुशल सेनानायक नहीं था। साथ ही षड्यन्त्रों और आंतरिक कलहों ने उसे और निर्बल कर रखा था। किन्तु वह मुगलों का सामना करता रहा।[43]

अन्त में औरंगजेब ने उसे बन्दी बनाकर[44] उसका वध करवा दिया।[45] परन्तु इससे भी मुगल सम्राट को शान्ति नहीं मिली।[46] 'शिवाजी ने वास्तव में एक राजवंश की नहीं, अपितु एक राष्ट्र की

स्थापना की थी।' शम्भूजी की मृत्यु के बाद मराठों ने शिवाजी द्वारा स्थापित सुरक्षा की दक्षिणी पंक्ति से मुगलों के साथ संघर्ष जारी रखा।[47]

शम्भूजी के पश्चात् उसके भाई, राजाराम, को 12 फरवरी 1689 को सिंहासनासीन किया गया।[48] उसका प्रारम्भ का अधिकांश समय अपनी रक्षा के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान भागते हुए व्यतीत हुआ। अन्ततः नवम्बर 1689 के प्रारम्भिक दिनों में वह भाग कर्णाटक में स्थित मराठों की दूसरी राजधानी जिंजी पहुंचा, जहाँ वह कुछ समय तक सुरक्षित रहा। इस प्रकार हम उस तिथि तक पहुंच जाते हैं, जब से सन्ताजी घोरपड़े मराठा राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता दिखता है।

टिप्पणी

1. जी0 याजदानी, *बीदर, इट्स हिस्टरी एण्ड मॉनूमेण्ट्स,* पृ013.
2. *मासिर-ए-रहीमी,* II, 526.
3. *बसातीन-उस्-सलातीन,* 272
4. डब्ल्यू0 हेग, *हिस्टॉरिकल लैण्डमार्क्स ऑफ द देकेन,* पृ0 18,101
5. आर0सी0 मजूमदार, जे0एन0 चौधरी तथा एस0 चौधरी (सं0), *द मुगल एम्पायर* (हिस्टरी एण्ड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल,VII), में जे0 एन0 चौधरी का अध्याय, 'मुस्लिम रेजिस्टेन्स टु मुगल इम्पीरियलिज्म-II : द फाइव सल्टनेट्स ऑफ द देकेन', पृ0 413.
6. *तारीख-ए-फिरिश्ता,*II, 931.
7. शेख फैजी सरहिन्दी का *अकबरनामा,* (इलियट एण्ड डॉसन, *हिस्टरी ऑव इण्डिया,* VI 144); अबुल फजल का *अकबरनामा* (एच0, बीवरिज का अनुवाद), पृष्ठ 1159.
8. आर0बी0 नाडकर्णी, *द राइज एण्ड फॉल आफ द मराठा एम्पायर,* पृ0 28.
9. आर0सी0 मजूमदार, जे0एन0 चौधरी तथा एस0 चौधरी (सं0) *पूर्वोक्त,* पृ0 207-208.
10. ब्रिग्स, *फिरिश्ता,*III, 323; *जर्नल ऑव द हैदराबाद आर्कियोलोजिकल सोसाइटी,* 1918, पृ0 89; *जर्नल ऑव इण्डियन हिस्टरी,* 33, पृ0 281,-283; *प्रोसीडिंग्स ऑव द इण्डियन हिस्टरी कॉंग्रेस,* 1945, पृ0159-162.
11. ब्रिग्स, *फिरिश्ता,* III, 321-322, 339-345.
12. *पूर्वोक्त,* III, 323-324, 377.
13. एन0 नारायण राव, 'टू महम्मडन पेट्रंस ऑव तेलुगू लिटरेचर इन द सिक्सटीन्थ सेंचुरी', *प्रोसीडिंग्स ऑव द इण्डियन हिस्टरी कॉंग्रेस,* 1945, पृ0 287, ब्रिग्स, *फिरिश्ता,* III, 438, के0ए0एन0 शास्त्री, *अ हिस्टरी ऑव साउथ इण्डिया,* पृ0 287.

14. ब्रिग्स, *फिरिश्ता,* III, 446.

15. *इस्लामिक कल्चर,* 1957 पृ0 130-131, 246, एन0 नारायण राव, *पूर्वोक्त,* पृ0 296-298.

16. एच0के0 शेरवानी, 'पॉलिटिकल एण्ड मिलिटरी ऐस्पेक्ट्स ऑफ द रेन ऑफ मुहम्मद कुली कुतुब शाह', *जर्नल ऑव इण्डियन हिस्टरी,* अप्रैल 1962.

17. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* IV, पृ0 395.

18. *पूर्वोक्त,* पृ0 400.

19. *खफी खाँ,* II, पृ0 306.

20. *पूर्वोक्त,* पृ0 361.

21. ब्रिग्स, *फिरिश्ता,* III, 4-8

22. *पूर्वोक्त,* पृ0 22-29

23. जे0एन0 चौधरी, *पूर्वोक्त,* पृ0 437 और आगे।

24. जे0एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* IV, पृ0 158.

25. *मासिर-ए-आलमगीरी* (अनु0 सरकार), पृ0 171; *दिलकश,* पृ0 202-203; *बसातीन-उस्-सलातीन,* पृ0540.

26. ब्रिग्स, *फिरिश्ता,* III, पृ0 485-86; *केम्ब्रिज हिस्टरी ऑव इण्डिया,*III, पृ0 398.

27. *केम्ब्रिज हिस्टरी ऑव इण्डिया,*III, पृ0 435-36.

28. ब्रिग्स, *फिरिश्ता,* III, पृ0 254-55.

29. जी0 याजदानी, *बीदर, इट्स हिस्टरी एण्ड मॉनूमेण्ट्स,* पृ0 13

30. ब्रिग्स, *फिरिश्ता,*III, पृ0 57-64

31. *बसातीन-उस्-सलातीन,* पृ0 272-73; जी0 याजदानी, *बीदर, इट्स हिस्टरी एण्ड मॉनूमेण्ट्स,* पृ014.

32. जे0एन0 सरकार, *स्टडीज एन मुगल इण्डिया,* पृ0 50-51.

33. ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज,* I, पृ0 69-72.

34. डेविड किनकैड, *शिवाजी, द फाउण्डर ऑव मराठा एम्पायर,* पृ 109-111.

35. *पूर्वोक्त,* पृ0 128-130.

36. *पूर्वोक्त*, पृ0 145, और आगे, आर0वी0 नाडकर्णी, *द राइज एण्ड फॉल ऑव द मराठा एम्पायर*, पृ0 60-62.

37. आर0वी0 नाडकर्णी, *पूर्वोक्त*, पृ0 62-64.

38. आर0वी0 नाडकर्णी, *पूर्वोक्त*, पृ0 64.

39. एच0जी0 रॉलिंसन, *शिवाजी, द मराठा*, पृ0 73-74, जे0 एन0 सरकार, *शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स*, पृ0 156-74.

40. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*,-IV, पृ0120. बीजापुर की आदिलशाही तथा गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनतों ने शिवाजी का सद्भाव प्राप्त करने हेतु उसे चौथ देनी भी स्वीकार किया। देखिये, आर0 सी0 मजुमदार, जे0एन0 चौधरी, तथा एस0 चौधरी (सं0), *द मुगल एम्पायर* (हिस्टरी एण्ड कल्चर ऑफ द इण्डियन पीपल, VII, में जी0 एस0 सरदेसाई का अध्याय, 'शिवाजी', पृ0 265.

41. जे0 एन0 चौधरी, *पूर्वोक्त*, पृ0 462-63.

42. जे0 एन0 चौधरी, *पूर्वोक्त*, पृ0 478-79.

43. एच0एच0 डॉडवेल (सं0), *द केम्ब्रिज शार्टर हिस्टरी ऑफ इण्डिया*, पृ0 444.

44. शम्भूजी को बन्दी बनाये जाने के विवरण के लिये देखिये, *खफी खाँ* पृ0 384-86.

45. *मासिर-ए-आलमगीरी* पृ0324; खफी खाँ, पृ0 389.

46. जे0एन0 सरकार, *स्टडीज इन मुगल इण्डिया*, पृ0 50-51, देखिये, *खफी खाँ*, पृ0 389.

47. राजारामचरितं, पृ0 35.

48. *शिव चरित्र प्रदीप*, पृ0 35.

अध्याय 2
सन्ताजी घोरपड़े का परिवार

बहमनी सल्तनत के अधीन अनेक मराठा परिवार सेवारत थे। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं,[1] बहमनी सल्तनत के पतन के पश्चात् दक्षिण में पांच मुस्लिम सल्तनतें अस्तित्व में आयीं। इनमें से तीन अहमदनगर की निजामशाही सल्तनत, बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत, तथा गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण और दीर्घकालिक सिद्ध हुयीं, और बहमनी सल्तनत की सेवा में रत अनेक मराठा परिवार उनकी सेवा में चले गये। अहमदनगर और बीजापुर की सेवा में लगे मराठा परिवारों की संख्या, गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत की सेवा में लगे मराठा परिवारों की संख्या की अपेक्षा अधिक थी। एक सल्तनत की सेवा में रत ये मराठा परिवार, दूसरी सल्तनत की सेवा में लगे अन्य मराठा परिवारों से युद्ध करने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे। कई बार तो एक ही परिवार के विभिन्न सदस्य अलग-अलग सल्तनत की ओर से एक दूसरे के साथ संघर्ष करते दिखायी देते हैं। ग्राण्ट डफ ने इन मराठा परिवारों के विषय में संक्षिप्त सूचना उपलब्ध करायी है,[2] और इन परिवारों का निम्नलिखित विवरण मुख्यतः उसी पर आधारित है।

अहमदनगर की निजामशाही सल्तनत की सेवा में प्रमुख मराठा परिवारों मे जाधव और भोंसले उल्लेखनीय हैं। इनमें से सिंदखेड़ के जाधव देवगिरि (देवगढ़) के यादवों के वंशज माने जाते थे। उनका परिवार अत्यन्त शक्तिसम्पन्न था, और सोलहवीं शती के अन्त के लगभग लुकजी जाधव राव के पास निजामशाही सल्तनत के अधीन 10,000 अश्वारोही सेना के भरण-पोषण हेतु एक बड़ी जागीर थी।[3]

दौलताबाद के निकट वेल्लूर के भोंसले को अपेक्षाकृत बाद में महत्व मिला। प्रारम्भ में इनका राजनीतिक महत्व लगभग नगण्य

था। इस परिवार के बाबाजी भोंसले के ज्येष्ठ पुत्र, मालोजी, ने फाल्टन के देशमुख, जगपाल राव नायक निम्बालकर की बहन दीपाबाई के साथ विवाह किया, जिससे उसकी राजनीतिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। लुकजी जाधव राव की सहायता से वह अहमदनगर के मुर्तजा निजाम शाह की सेवा में 1577 में प्रविष्ट हुआ। वह एक वीर शिलेदार था, तथा शीघ्र ही उसने अपनी पहचान बना ली। उसने आगे चलकर किसी प्रकार अपने पुत्र, शाहजी, का विवाह 5 नवम्बर 1605 को लुकजी जाधव राव की पुत्री, जीजाबाई, के साथ करवा दिया।[4] इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप भोंसले परिवार को अपनी शक्ति एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि करने में पर्याप्त सहायता मिली। शाहजहाँ द्वारा 1636 में अहमदनगर की निजामशाही सल्तनत पर मुगलों का अधिकार स्थापित किये जाने के उपरान्त शाहजी भोंसले बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की सेवा में रत हो गया।[5]

बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की सेवा में लगे अन्य प्रमुख मराठा परिवारों में मोरे, निम्बालकर, घटगे, माने, डफले, घोरपड़े, आदि सम्मिलित थे। मोरे मूलतः कर्णाटक का एक नायक था। उसे यूसुफ आदिल शाह ने 12,000 हिन्दू पैदल सैनिकों का अधिकारी नियुक्त किया, और नीरा तथा वर्णा नदियों के बीच के अशान्त प्रदेश का दमन करने के लिए भेजा। इस सफल अभियान के दौरान मोरे ने राजा शिर्के के वंशजों को उनके क्षेत्र से बेदखल कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने इस प्रदेश में गूजर, मामूलकर, मोहिते, जैसे अनेक उपद्रवी गौण सरदारों का भी दमन किया। इस सेवा के लिऐ मोरे को *चन्द्र राव* की उपधि प्रदान की गयी। उसके पुत्र, यशवन्त राव, ने परेन्डा के निकट अहमदनगर के बुरहान निजामशाह के साथ लड़े गये युद्ध में आदिलशाही सुल्तान की उल्लेखनीय सहायता की। कृतज्ञ आदिलशाही सुल्तान ने उसे जावली के राजा के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। इस क्षेत्र पर मोरे परिवार ने सात पीढ़ियों तक शासन किया, और उनकी देखरेख में

यह बंजर भूभाग अत्यन्त समृद्ध और घनी आबादी वाला हो गया।[6] फाल्टन के नायकों का मूल परिवारिक नाम पवार था। किन्तु इस परिवार के सरदारों ने *राव नायम निम्बालकर* अथवा *फाल्टन राव* की उपाधि धारण की। निम्बालकर नाम की व्युत्पत्ति निम्बालिक नामक ग्राम से हुई है, जो उनके पूर्वजों का आदि निवास था। इस ग्प्रम की पहचान आधुनिक निमलूक से की गयी है। मूल सनदों से ज्ञात होता है कि निम्बालकर परिवार को सत्रहवीं शती के मध्य से पूर्व ही फाल्टन का सरदेशमुख नियुक्त कर दिया गया था। कुछ स्रोतों से सूचना मिलती है कि फाल्टन राव पोलीगर हो गया था, और उसने अनेक बार बीजापुर को फाल्टन क्षेत्र का लगान देने से मना कर दिया। ऊपर हम देख चुके है कि वंगोजी नायक अथवा जगपाल राव नायक निम्बालकर की बहन दीपा बाई का विवाह मालोजी भोंसले के साथ हुआ था, और वह शिवाजी की पितामही बनी।[7]

घटगे परिवार के काम राजे घटगे के पास बहमनी सल्तनत के अधीन एक छोटी मनसब थी। बहमनी सल्तनत के पतन के उपरान्त घटगे परिवार ने बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की सेवा स्वीकार कर ली। 1626 में इब्राहीम आदिल शाह ने नागोजी घटगे को *जुझार राव* की उपाधि प्रदान की और घटगे परिवार को मल्लौरी की सरदेशमुखी प्रदान की। घटगे परिवार का आदि निवास, कुट्टव देश, निम्बालकर परिवार की देशमुखी के निकट, महादेव पर्वत श्रृंखला के पार स्थित था।[8]

माने मुसवार के देशमुख थे। उनकी देशमुखी घटगे परिवार की देशमुखी के निकट थी। उन्होनें वीर तथा विश्वसनीय शिलेदारों के रूप में बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की सेवा की।[9] डफले नायकों का मूल पारिवारिक नाम चाह्वाण था। वे डफलापुर ग्राम के वंशानुगत पटेल थे, और इसी ग्राम के नाम से डफले की व्युत्पत्ति हुयी। इन्हें बीजापुर के आदिलशाही सुल्तान द्वारा झट्ट की देशमुखी प्रदान की गयी, किन्तु कोई उपाधि नहीं मिली।[10] सावंत गोआ के

निकट वाड़ी के वंशानुगत देशमुख थे। उन्होनें पुर्तगालियों के विरुद्ध संघर्ष में बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की महत्वपूर्ण सहायता की थी, जिसके कारण उन्हें *बहादुर* की उपाधि प्राप्त हुयी थी। उनका मूल पारिवारिक नाम भोंसले था।[11]

घोरपड़े परिवार, जिसके वीर योद्धा सन्ताजी से यहाँ मुख्य रूप से सम्बन्ध है, उस भोंसले परिवार की एक शाखा था जिसमें शिवाजी का जन्म हुआ था। भोंसले परिवार की उत्पत्ति के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। इन विभिन्न मतों के अनुसार यह परिवार उदयपुर के सिसोदिया राणाओं, अथवा चित्तौड़ के राजाओं, अथवा पोरस से उत्पत्ति का दावा करता था। डेविड किनकैड के अनुसार उदयपुर के राजवंश से उत्पत्ति के भोंसलें परिवार के दावे को शिवाजी के शत्रुओं को छोड़कर किसी अन्य ने चुनौती नहीं दी, और समकालिक शक्तियों ने सम्भवतः इसे स्वीकार कर रखा था।[12] उनका मत है कि पारिवारिक नाम, भोंसले की व्युत्पत्ति उदयपुर में भोसावत की जागीर से हुई है।[13] जी0एस0 सरदेसाई के अनुसार मुधोल के राजा के अधिकार में कुछ ऐसे फरमान हैं जिनसे भोंसले परिवार के इस दावे की पुष्टि होती प्रतीत होती है।[14] किन्तु ये मूल फरमान न होकर उनकी प्रतियां मात्र हैं। कुछ विद्वान भोंसले को होयसल का बिगड़ा रूप मानते है। ये होयसल द्वारा समुद्र पर शासन करते थे। किन्तु सरदेसाई इस मान्यता का विरोध करते हुये तर्क देते हैं कि होयसल वंश को यादवों की एक शाखा माना जाता है, और यदि भोंसले वास्तव में होयसल होते, तो इस परिवार के शाहजी का विवाह एक अन्य यादव (जाधव) परिवार की जीजाबाई के संग सम्भव नहीं हुआ होता।[15]

एक प्राचीन परम्परा के अनुसार, जब चौदहवीं शती के आरम्भ (1303 ई0) में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर अधिकार किया, तब वहां के राजपरिवार का एक सदस्य, सज्जन सिंह अथवा सुजान सिंह, बच निकलने में सफल रहा,[16] और मुहम्मद तुगलक के शासन काल में दक्षिण भारत पहुंचा। 1350 ई0 के लगभग

उसकी मृत्यु हुयी। सज्जनसिंह अथवा सुजानसिंह की पांचवी पीढ़ी में उग्रसेन नामक व्यक्ति हुआ, जिसके दो पुत्र, कर्णसिंह तथा शुभकृष्ण थे। अनुज शुभकृष्ण के वंशज भोंसले कहलाये। कर्णसिंह का पुत्र, भीमसिंह, बहमनी सुल्तान की सेवा में रत था। कोंकण में बहमनी सुल्तान की ओर से युद्ध करते समय उसने महान वीरता का परिचय दिया। उसने अजेय माना जाने वाले एक दुर्ग की दीवार पर चढ़ने के लिए एक गोह (मराठी घोरपड़) के शरीर से बन्धी रस्सी का प्रयोग किया।[17] उसकी इस वीरता के लिये उसे बहमनी सुल्तान द्वारा *राजा घोरपड़े बहादुर* की उपाधि तथा मुधोल में 84 ग्रामों की जागीर प्रदान की गयी।[18] उस समय भीमसिंह के वंशज घोरपड़े कहलाये। यदि इस परम्परा में कुछ तथ्य है, तो घोरपड़े तथा भोंसले का सम्बन्ध चित्तौड़ के राजवंश से स्थापित होगा। कुछ यूरोपियन यात्री चित्तौड़ के राजाओं को पोरस का वंशज मानते हैं। किन्तु ओर्म का यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि यद्यपि यूरोपियन यात्री पोरस से चित्तौड़ के राजाओं की उत्पत्ति का दावा करते है, तथापि यह एक प्रमाणित तथ्य नहीं प्रतीत होता।[19]

यद्यपि घोरपड़े तथा भोंसले परिवार परस्पर सम्बन्धित थे तथापि मुधोल के घोरपड़े परिवार और भोंसले परिवार के मध्य सम्बन्ध मधुर नहीं थे। घोरपड़े परिवार के बाजी घोरपड़े का शाहजी भोंसले तथा शिवाजी, दोनों के साथ संघर्ष हुआ। हम ऊपर देख चुके है कि शाहजी मूलतः अहमदनगर की निजामशाही सल्तनत की सेवा में था। 1621 में जब मलिक अम्बर मुगलों के साथ संघर्ष कर रहा था, उस समय अनेक मराठा जागीरदार मलिक अम्बर को छोड़कर मुगलों के पक्ष में चले गये। किन्तु शाहजी अहमदनगर के साथ बना रहा। बाद में शाहजहाँ के हाथों अहमदनगर की पराजय के पश्चात् उसने मुगलों के समक्ष समर्पण करके अपनी जागीर की रक्षा की। किन्तु जब शाहजहाँ ने उसकी जागीर का कुछ भाग मलिक अम्बर के पुत्र फतेह खाँ को प्रदान कर दिया, तब शाहजी का झुकाव बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत की ओर हो गया, और

दौलताबाद पर आक्रमण के समय उसने बीजापुर की सेना का नेतृत्व भी किया।[20]

बीजापुर के आदिलशाही सुल्तान ने शाहजी को उसकी जागीर के दो क्षेत्र, पूना और सूपा, पुनः प्रदान कर दिये। कर्णाटक में शाहजी ने मैसूर, वेल्लूर, जिंजी तथा कुछ अन्य प्रदेशों को जीत कर उन पर बीजापुर का अधिकार स्थापित किया। इन सेवाओं के लिये बेंगलूर, कोल्लार, सीरा अथवा कुट्टा एवं मैसूर के कुछ अन्य क्षेत्र उसे 1648 में जागीर के रूप प्रदान किये गये। उसकी पूना की जागीर में इन्दपुर, बारामती, और मावल के क्षेत्र जोड़ दिये गये। इनके अतिरिक्त मुहम्मद आदिलशाह ने करहाड़ क्षेत्र में 22 ग्रामों की देशमुखी भी उसे प्रदान की। किन्तु शाहजी के पुत्र, शिवाजी, की विद्रोही गतिविधियों के कारण बीजापुर के सुल्तान को संदेह होने लगा कि पिता एवं पुत्र मिलकर षड्यन्त्र कर रहे हैं।[21]

इसके अतिरिक्त पूना की जागीर औपचारिक रूप से शाहजी के नाम थी, न कि शिवाजी के। किन्तु वास्तव में जबसे शाहजी कर्णाटक अभियानों में व्यस्त हुआ, तब से वह पूना की जागीर की व्यवस्था नहीं देख पा रहा था, और 1640 अथवा 1641 में जीजाबाई तथा शिवाजी की बेंगलूर यात्रा के पश्चात् शाहजी ने पूना की जागीर व्यवहारिक रूप से उनके रखरखाव के लिए दे दी थी। अतः शिवाजी की विद्रोही गतिविधियों के लिये शाहजी को उत्तरदायी ठहराया गया, और उसे दण्डित करने का निर्णय लिया गया।

जहूर का कथन है कि जिंजी की घेराबन्दी के समय शाहजी को अवज्ञा के आरोप में बन्दी बनाया गया। उसकी सूचना है कि जिंजी की घेराबन्दी के दौरान शाहजी ने आदिलशाही सुल्तान से अपनी जागीर जाने की अनुमति मांगी, जिससे कि उसके सैनिक विश्राम कर सकें। सुल्तान ने यह अनुमति प्रदान नहीं की। तब शाहजी ने उसे सूचित किया कि वह अनुमति के अभाव में भी अपनी जागीर चला जाएगा, क्योंकि शिविर में अनाज बहुत महंगा था, और उसके सैनिक भी थके हुये थे। इससे रुष्ट होकर सुल्तान

ने उसे बन्दी बना लिया, तथा उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली।[22] अवज्ञा के आरोप में शाहजी को बन्दी बनाये जाने की बात की पुष्टि मोदक से भी होती है।

जुबैरी इस घटना पर अधिक विस्तृत प्रकाश डालता है, जिससे इसमें बाजी घोरपड़े की भूमिका की सूचना मिलती है। उसका कथन है कि शाहजी की अवज्ञा से रूष्ट होकर बीजापुर के आदिलशाही सुल्तान ने बाजी घोरपड़े, यशवन्त राव तथा असद खाँ को प्रातःकाल शाहजी के शिविर में उसे बन्दी बनाने के लिये भेजा।[24] शाहजी ने रात्रि का समय मनोरंजन में व्यतीत किया था, और प्रातःकाल आक्रमण के समय वह निद्रामग्न था। जैसे ही उसे इस बात की सूचना मिली, वह घोड़े पर सवार होकर सुरक्षित स्थान की ओर भागा, किन्तु बाजी घोरपड़े ने उसका पीछा किया, और बन्दी बना कर आदिलशाही सुल्तान के समक्ष प्रस्तुत किया।[25] कुछ साक्ष्यों की यह भी सूचना है कि रात्रि के मनोरंजन के लिये शाहजी को स्वयं बाजी घोरपड़े ने आमन्त्रित किया था।[26] शिवभारत के अनुसार शाहजी के विरुद्ध इस अभियान का नेतृत्व स्वयं मुस्तफा खाँ ने किया था, जिसके अधीन बीजापुर की सेना ने जिंजी का घेरा डाल रखा था। इस स्रोत से यह भी पता चलता है कि शाहजी एवं बाजी घोरपड़े के मध्य प्रहारों का आदान-प्रदान भी हुआ।[27] शाहजी को बन्दी बनाये जाने की तिथि 25 जुलाई 1648 बतायी गयी है।[28] जुबैरी के अनुसार शाहजी को बन्दी बनाने के पश्चात् उसकी 3000 अश्वारोहियों की टुकड़ी को भंग कर दिया गया, तथा उसके शिविर को लूट लिया गया।[28ए]

यद्यपि शाहजी को बेड़ियों में जकड़कर जिंजी से बीजापुर ले जाया गया, तथापि बीजापुर में उसके साथ नरमी का व्यवहार किया गया।[29] सर सरनौबत मुल्ला अहमद नवायत को उसकी देखरेख के लिये नियुक्त किया गया। उसने शाहजी को समझाया कि वह सुल्तान को सन्तुष्ट कर स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। इसके लिये उसे अपने पुत्रों, शिवाजी और शम्भूजी, को पत्र लिखकर समझाना

चाहिये कि वे महाराष्ट्र में कोण्डना (सिंहगढ़) तथा दक्षिण में कन्दर्पी और बेंगलूर के दुर्ग सुल्तान को सौंप दें। मुहम्मद आदिलशाह ने पुरन्दर में शिवाजी और बेंगलूर में शम्भूजी के विरुद्ध किये गये असफल सैन्य अभियानों से यह समझ लिया था कि उन्हें बलपूर्वक पराजित करके ये दुर्ग उनसे छीनना सरल नहीं होगा।[29ए] शिवाजी भी अपने पिता को मुक्त कराना चाहता था। उसने मुराद के माध्यम से इस कार्य के लिए शाहजहाँ से सहयता प्राप्त करने का प्रयास किया था, किन्तु असफल रहा था,[30] अपने पिता का पत्र प्राप्त होने पर शाहजी के दोनो पुत्रों नें कोण्डना, कन्दर्पी तथा बेंगलूर के दुर्ग बीजापुर के सुल्तान को सौपा दिये।[31] बीजापुर शाहजी के विरूद्ध लगे किसी आरोप के सिद्ध भी नही कर पाया था। मुहम्मद आदिल शाह के पुत्र के जन्म के उपलक्ष्य में 5 मई 1649[32] को शाहजी को मुक्त कर दिया गया और उसकी जागीर और पद भी उसे पुनः प्रदान कर दिया गया।[33] इस प्रकार शाहजी ने यह स्थापित कर दिया कि शिवाजी की गतिविधियों के लिए उसे उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है। सरदेसाई का मत है कि शाहीजी, शिवाजी की गतिविधियों का परोक्ष रूप से समर्थन करता था। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि बीजापुर से मुक्त होने के तुरन्त बाद उसने कान्होजी जेधे को शिवाजी के कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिए और उसकी सुरक्षा करने के लक्ष्य से भेजा था।[34]

यद्यपि बाजी घोरपड़े ने अपने शत्रु, शाहजी भोंसले, को बन्दी बनाकर बीजापुर के सुल्तान को सौंप दिया, तथापि इससे शाहजी को कोई विशेष क्षति नहीं हुयी। लगभग ग्यारह वर्ष बाद, 1660 में पन्हाला के घेरे के दौरान बाजी घोरपड़े की भोंसले परिवार के साथ पुनः संघर्ष की सूचना मिलती है। शिवाजी द्वारा बीजापुरी सेनापति अफजलखाँ का वध (10 नवम्बर 1659) किये जाने के लगभग 15 दिन बाद 28 नवम्बर 1659 को, शिवाजी ने पश्चिमी आदिलशाही प्रान्त की राजधानी पन्हाला पर अधिकार कर लिया।

उसके सेनापतियों ने रामबाग, गदग, तथा लक्ष्मेश्वर को लूटा, और लूट का धन लेकर जनवरी 1660 के अन्त तक शिवाजी राजगढ़ लौट आया। आदिल शाह ने अपनी सहायता हेतु कुर्नूल प्रान्त में नियुक्त अपने अधिकारी सिद्दी जौहर को शिवाजी का दमन करने के लिये भेजा। उसके साथ रूस्तमे ज़माँ तथा अफज़ल खाँ के पुत्र फज़ल खाँ के अतिरिक्त बाजी घोरपड़े भी था। शिवाजी ने पन्हाला की रक्षा का स्वयं नेतृत्व किया और मई 1660 तक युद्ध चलता रहा। किन्तु राजापुर के अंग्रेज व्यापारियों द्वारा बीजापुरी सेना की सहायता के लिये एक तोपखाना और अधिकारी भेज दिये। इसी बीच मुगल सेनापति, शाइस्ताखां ने पूना और बारामती पर मुगल अधिकार स्थापित कर दिया और चाकन भी छीन लिया। जसवन्त सिंह को भी औरंगजेब ने शिवाजी के विरुद्ध भेज दिया। शिवाजी ने बीजापुरी सेनापति के पास आत्मसमर्पण का प्रस्ताव भेज कर घेरे के कार्यवाही को अस्थायी रूप से रुकवा दिया। फिर 13 जुलाई 1660 को रात में घनघोर वर्षा का लाभ उठाकर वह दुर्ग के पीछे के द्वार से भाग निकला, और विशालगढ़ पहुंच गया।[35] उसकी रक्षा में बाजीप्रभु देशपाण्डे ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[36] 22 सितम्बर 1660 को पन्हाला का दुर्ग विधिवत् आदिलशाह को सौंप दिया गया।

भोंसले परिवार के साथ संघर्ष में बाजी घोरपड़े ने सदैव बीजापुर की सहायता की थी। शाहजी भोंसले को बन्दी बनाने में बाजी घोरपड़े ने जो भूमिका निभाई थी,[37] उससे दुःखी होकर शाहजी ने शिवाजी को लिखा था कि वह यदि उसका वास्तविक पुत्र है, तो वह बाजी घोरपड़े को दण्डित करे।[38] शिवाजी को यह दण्ड देने का अवसर अक्तूबर 1664 में मिला। बीजापुर के संरक्षक खवास खाँ के साथ भटकल में संघर्ष करते समय उसे सूचना मिली कि बाजी घोरपड़े खवास खाँ की सहायता के लिये अपनी सेना के साथ आ रहा है। कुछ साक्ष्यों से ऐसा प्रतीत होगा कि शिवाजी ने भटकल का युद्ध क्षेत्र इसलिये छोड़ा क्योंकि उसके 400 सैनिक

मारे गये थे, और 1000 घायल हुये थे।[39] किन्तु वास्तव में शिवाजी ने मुधोल पर आक्रमण करने के लिये युद्ध क्षेत्र छोड़ा था। इसके पीछे दो कारण थे। प्रथम, वह बाजी घोरपड़े को खवास खाँ से मिलने से रोकना चाहता था, क्योंकि दोनों की सम्मिलित सेना को पराजित करना शिवाजी के लिये कठिन होता। दूसरे, वह बाजी घोरपड़े को दण्ड देना चाहता था। बाजी घोरपड़े को जैसे ही ज्ञात हुआ कि शिवाजी मुघोल की ओर आ रहा है, वह अपनी सेना लेकर अपनी जागीर की रक्षा के लिये मुधोल के बाहर आ गया। किन्तु शिवाजी ने उसे पराजित कर उसका वध कर दिया। मुघोल पर शिवाजी का अधिकार हो गया। शिवाजी ने मुघोल को लूटने के बाद उसमें आग लगवा दी, और त्वरित गति से विशालगढ़ लौट आया।[40] सभासद के अनुसार इस संघर्ष में घोरपड़े परिवार के इतने अधिक सदस्य मारे गये कि इसे 'घोरपड़ों का संहार' की संज्ञा दी जानी चाहिए।[41] किन्तु इस संहार के लिए सरकार शिवाजी को व्यक्गित रूप से उत्तरदायी नहीं मानते हैं। उनके अनुसार यह संहार उस समय हुआ, जब शिवाजी मुधोल में उपस्थित नहीं था।[42] इस आक्रमण द्वारा शिवाजी ने मुधोल के घोरपड़े परिवार की शक्ति का दमन कर दिया। बाजी घोरपड़े का वध करने के उपरान्त उसने बाजी के पुत्र मालोजी घोरपड़े को मुधोल का सामन्त नियुक्त किया।[43] मालोजी घोरपड़े के विषय में अगली सूचना में वह एक बार फिर शिवाजी के शत्रु दल में सम्मिलित मिलता है। सितम्बर 1665 में औरंगजेब ने शिवाजी को पत्र लिखकर पुरन्दर की सन्धि की पुष्टि की जिसके पश्चात् शिवाजी ने बीजापुर के विरुद्ध मुगल अभियान में जयसिंह की सहायता की। दिसम्बर 1665 में हुये संघर्ष के सन्दर्भ में ज्ञात होता है कि मालोजी घोरपड़े मुघोल से आकर शर्जाखाँ और खवासखाँ के अधीन बीजापुरी सेनाओं में सम्मिलित हुआ था। किन्तु इस युद्ध से मुगलों को अपेक्षित लाभ नहीं हुआ।[44] इसके कई वर्ष पश्चात्, मार्च 1677 में भागानगर से शिवाजी की ओर से मुधोल के घोरपड़े परिवार को अपने पक्ष में करने का

प्रयास करते हुये मालोजी घोरपड़े को एक पत्र लिखा गया: 'यह अफसोस की बात है कि मेरे पिता ने तुम्हारे पिता के साथ जितनी भलाई की, उस सबको भूल कर उन्होंने मेरे पिता को पकड़वाने में मुस्तफा खाँ की मदद की। वह तुम्हारा पिता ही था जिसने मेरे पिता को बन्दी करके मुस्तफा खाँ के हाथ में सौंपा। इसका नतीजा यह हुआ कि मेरे और तुम्हारे परिवार में कटु शत्रुता की बुनियाद पड़ी और फलस्वरूप रक्तपात हुआ। मेरे लोगों ने तुम्हारे पिता को मार डाला किन्तु अब समय आ गया है कि पिछली गलतियों को सुधारा जाय।[45] इस पत्र का अपेक्षित लाभ हुआ प्रतीत होता है। 1 फरवरी 1689 को जब शेख बनाया, तब मालोजी घोरपड़े ने शम्भूजी की रक्षा के प्रयास में युद्ध करते हुये अपने प्राणों की बलि दी थी।[46] इससे ज्ञात होता है कि शिवाजी का पत्र मिलने पर उसने अपने पिता, बाजी घोरपड़े की भोंसलें परिवार से शत्रुता की नीति पर पुनर्विचार किया, और मुग़लों के विरुद्ध मराठा एकता की शिवाजी के अनुरोध को स्वीकार कर वह भोंसले परिवार के साथ हो गया। इसके पीछे एक कारण यह भी हो सकता है कि बाजी घोरपड़े के वध के उपरान्त शिवाजी ने ही मालोजी घोरपड़े को मुधोल का सामन्त नियुक्त किया था। इस पत्र के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि शिवाजी बाजी घोरपड़े को मारने के लिये 'मेरे लोगों' को उत्तरदायी ठहराता है। इससे सरकार की इस बात की पुष्टि होती प्रतीत होती है कि शिवाजी 'घोरपड़े के संहार' के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं था, और यह संहार उसकी अनुपस्थिति में हुआ था।[47] उपरोक्त पत्र में शिवाजी अपने लोगों द्वारा बाजी घोरपड़े के वध की बात करने के पश्चात् 'गलतियों' को सुधारने की चर्चा करता है। यहाँ उसका तात्पर्य बाजी घोरपड़े की गलतियों के अतिरिक्त अपने लोगों द्वारा किये गये घोरपड़े परिवार के सदस्यों के संहार से भी हो सकता है।

कपशी में घोरपड़े परिवार की एक अन्य शाखा थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मुधोल के घोरपड़े इतने प्रभावशाली थे कि

कपशी के घोरपड़े उनकी छाया में रहे, और शिवाजी के हाथों मुधोल की शक्ति के दमन के उपरान्त ही कपशी के घोरपड़े अपनी पहचान बना सके। किन्तु एक ओर जहां मुधोल के घोरपड़े परिवार के भोंसले परिवार के साथ शत्रुतापूर्व सम्बन्ध रहे,-बाजी घोरपड़े ने शाहजी भोंसले को बन्दी बनाकर बीजापुर को सौंप दिया और इसके लिये शिवाजी ने मुधोल के घोरपड़े परिवार के अनेक सदस्यों का वध करवा दिया - वहीं दूसरी ओर कपशी का घोरपड़े परिवार शिवाजी और उसके वंशजों के प्रति स्वामिभक्त था, और सन्ताजी घोरपड़े तथा उसके अनुज निरन्तर राजाराम की ओर से मुगलों से संघर्ष करते दिखायी देते हैं।[48]

इस सन्दर्भ में 27 फरवरी 1683 की एक घटना रोचक है। इस दिन कल्याण के निकट टिटवाला नामक स्थान पर मराठों तथा मुग़लों के मध्य संघर्ष हुआ। मराठों की ओर से हम्बीर राव मोहिते, रूपाजी भोंसले, मानाजी मोरे, हम्बीर राव का साला, तथा अन्य सेनापति युद्ध कर रहे थे, जब कि मुग़लों की ओर रूह-उल्ला खाँ, सैयद इज़्ज़त खाँ, रणमस्त खाँ, राम सिंह रत्नावत, पदम सिंह हाड़ा, आदि थे। दुर्ग पर अधिकार करने के इस प्रयास में मराठों को सफलता नहीं मिली। किन्तु इसमें मुग़ल सैनिक बड़ी संख्या में मारे गये। हताहत मुग़ल सेनापतियों में पदम सिंह हाड़ा, मनकोजी दखनी का पुत्र भगवन्त सिंह, रतन राठौर का पुत्र राम सिंह, पूरनमल बुन्देला का पुत्र हरि सिंह, आदि सम्मिलित थे। मराठों की ओर हम्बीर राव मोहिते एक मुग़ल सैनिक द्वारा छोड़े गये बाण से घायल हो गया। मारे गये मराठा सेनापतियों में हम्बीर राव का साला, तथा तीन अन्य सरदारों के अतिरिक्त घोरपड़े नामक एक सरदार भी सम्मिलित था।[49] इस घोरपड़े नायक का सम्बन्ध मुधोल के परिवार से होने की सम्भावना कम लगती है, क्योंकि ऊपर हम देख चुके हैं कि मुधोल के घोरपड़े शिवाजी द्वारा पराजित होने के उपरान्त भी निरन्तर मराठों के शत्रुओं का ही साथ दे रहे थे। यद्यपि महाराष्ट्र में घोरपड़े नाम के अनेक परिवार थे,[50] तथापि

इस घोरपड़े सरदार का सम्बन्ध कपशी के घोरपड़े परिवार से मानना अधिक आकर्षक लगता है। इसके लिए दो कारण दिये जा सकते हैं। प्रथम, कपशी के घोरपड़े परिवार में शिवाजी के वंश के प्रति निष्ठान की परम्परा लगती है, तथा सन्ताजी घोरपड़े और उसके दो अनुज राजाराम की सेवा में दिखायी देते हैं। द्वितीय, इस युद्ध में मारे गये घोरपड़े नायक का नाम न देने पर भी उसे इतना महत्व प्रदान किया गया है कि उसका सम्बन्ध किसी गौण परिवार से होने की सम्भावना कम लगती है। कहीं यह हत घोरपड़े सरदार सन्ताजी घोरपड़े का पिता तो नहीं था? निश्चित सूचना के अभाव में कुछ कहना कठिन है।

जिस समय अप्रैल 1685 तथा दिसम्बर 1688 के बीच औरंगजेब बीजापुर तथा गोलकुण्डा के विरुद्ध अभियानों में व्यस्त होने के कारण महाराष्ट्र से अनुपस्थित था, उस समय राहुलोजी तथा तुकोजी यशवन्तराव घोरपड़े नामक दो नायक कर्णाटक में अपनी वीरता का प्रदर्शन कर रहे थे, तथा शम्भूजी द्वारा जारी एक पत्र में उनकी इस वीरता की प्रशंसा भी की गयी है।[51] इन घोरपड़े सरदारों के विषय में भी कुछ कहना कठिन है, किन्तु शिवाजी के परिवार के प्रति इनकी निष्ठा को देखते हुये इन्हें भी कपशी के घोरपड़े परिवार के प्रति इनकी निष्ठा को देखते हुये इन्हें भी कपशी के घोरपड़े परिवार का सदस्य माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इन घोरपड़े नायकों ने कर्णाटक में अपनी वीरता का प्रदर्शन किया था, तथा आगे चलकर सन्ताजी घोरपड़े ने भी कर्णाटक के बेल्लारी क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित करने का प्रयास किया था।[52]

1676-77 में शिवाजी के कर्णाटक अभियान में शिवाजी ने अनेक उत्साही नवयुवकों को प्रोत्साहन प्रदान किया था। इनमें हम्बीरराव मोहिते, जनार्दन पन्त हनुमन्ते, केशव त्रिमल्ल पिंगले, हरजी महादिक, सन्ताजी भोंसले, और धनाजी जाधव के अतिरिक्त कपशी के घोरपड़े परिवार का सन्ताजी घोरपड़े भी सम्मिलित था। कर्णाटक अभियान के दौरान इन युवा शक्तिशाली सैनिक-राजनीतिज्ञों

को सैनिक और नागरिक प्रशासन की व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की गयी थी।[53] आगे चलकर इन युवकों ने मराठा इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनमें राजाराम के काल में धनाजी जाधव तथा सन्ताजी घोरपड़े का विशेष योगदान रहा। कपशी के घोरपड़े परिवार से सन्ताजी के अनुज बाहिरजी घोरपड़े तथा मालोजी घोरपड़े ने भी अपना योगदान किया।

टिप्पणी

1. अध्याय 1.
2. ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़* I, पृ० 65, और आगे।
3. *उपरोक्त*, पृ० 68-69.
4. जी०एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ० 42-43 विवाह जिन परिस्थितियों में सम्भव हुआ, उनके विस्तृत वर्णन के लिये देखिये, डेविड किनकैड, *शिवाजी, द फाउण्डर ऑव मराठा एम्पायर*, पृ० 27-30
5. आर०सी० मजूमदार, जे०एन० चौधरी, तथा एस० चौधरी (सं०), *पूर्वोक्त*, में जी०एस० सरदेसाई, पृ० 247-48.
6. ग्राण्ट उफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़*, I, पृ० 65-66.
7. ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़*, I, पृ० 66.
8. *उपरोक्त*, पृ० 67.
9. *उपरोक्त*, पृ० 67.
10. ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़*, I, पृ० 68
11. *उपरोक्त*, पृ० 68.
12. *शिवाजी, द फाउण्डर ऑव मराठा एम्पायर*, पृ० 25. यह दावा शिवाजी ने 16 में अपने औपचारिक राज्याभिषेक के अवसर पर स्वयं को क्षत्रिय सिद्ध करने हेतु किया। आर० सी० मजूमदार, जे० एन० चौधरी, तथा एस० चौधरी (सं०), पूर्वोक्त, में जी० एस० सरदेसाई, पृ० 266-67.
13. डेविड किनकैड, *शिवाजी, द फाउण्डर ऑव मराठा एम्पायर*, पृ० 25.
14. *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ० 36, टिप्पणी 2.
15. *उपरोक्त*.
16. डेविड किनकैड (*शिवाजी, द फाउण्डर ऑव मराठा एम्पायर*, पृ० 25-26) के अनुसार सज्जन सिंह भोंसावत की जागीर का स्वामी था।

17. इस विधि का उपयोग कर तानाजी मापसुरे ने भी सिंहगढ़ की दीवार पार की थी। डेविड किनकैड, *शिवाजी, द फाउण्डर ऑव मराठा एम्पायर,* पृ0 254–255

18. ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़,* I, पृ0 67–68; जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ0 36.

19. देखिये, डेविड किनकैड, *शिवाजी, द फाउण्डर ऑफ मराठा एम्पायर,* पृ0 25.

20. एलियट व डॉसन, *हिस्टरी ऑफ इण्डिया,* VII, पृ0 37.

21. आर0 सी0 मजूमदार, जे0एन0 चौधरी तथा एस0 चौधरी (सं0), *पूर्वोक्त,* में जी0एस0 सरदेसाई, पृ0 252–54.

22. मुहम्मद जुहूर, *मुहम्मदनामा* (शिवाजी निबन्धावली,II), पृ0 124.

23. देखिये, आर0 वी0 नाडकर्णी, *द राइज एण्ड फॉल ऑफ द मराठा* एम्पायर, पृ0 35, टिप्पणी 33.

24. जी0 एस0 सरदेसाई *(मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ0 67–68) के अनुसार बाजी घोरपड़े शाहजी का घोर विरोधी था, और जिंजी के अभियान का नेतृत्व कर रहे बीजापुरी सेनापति, मुस्तफा खां, ने उसे शाहजी के शिविर पर आक्रमण करने के लिये उकसाया था।

25. मुहम्मद इब्राहीम जुबैरी, *बसातीन–उस्–सलातीन,* पृ0 325–26.

26. देखिये, आर0 वी0 नाडकर्णी, *द राइज एण्ड फाल ऑफ द मराठा एम्पायर,* पृ0 35.

27. परमानन्द, *शिवभारत,* काण्ड 12; देखिये जे0एन0 सरकार, *हाउस ऑफ शिवाजी,* पृ0 61, डी0सी0 वर्मा, *हिस्टरी ऑफ बीजापुर,* पृ0 154.

28. जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I,पृ0 68.

28ए. *बसातीन–उस्–सलातीन,* पृ0 325–27, जे0एन0 सरकार, *शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स,* पृ0 36.

29. जुहूर, *मुहम्मदनामा* (शिवाजी निबन्धावली, II), पृ० 127-28.

29ए. परमानन्द, *शिवभारत*, काण्ड 13-15, जे०एन० सरकार, *हाउस ऑफ शिवाजी*, पृ० 61.

30. जे० एन० सरकार, शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स, पृ० 37-38

31. जहूर, *मुहम्मदनामा* (शिवाजी निबन्धावली, II), पृ० 124

32. सरदेसाई, *(मराठों का नवीन इतिहास*, I,पृ० 69) इसके लिए 16 मई 1649 की तिथि स्वीकार करतें हैं।

33. जहूर, *मुहम्मदनामा* (शिवाजी निबन्धावली,II) पृ० 124, *चिटनीस बखर*, पृ० 39, जे०एन० सरकार, *शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स*, पृ० 39, *हाउस ऑफ शिवाजी*, पृ० 87, जिसमें आदिल शाह द्वारा जारी फरमान (27 मई 1658) का विवरण दिया गया है।

34. *मराठी रियासत-शककर्ता शिवाजी*, पृ० 33, आर०सी० मजूमदार, जे० एन० चौधरी, तथा एस० चौधरी (सं०), *पूर्वोक्त*, में जी० एस० सरदेसाई, पृ० 254.

35. आर० वी० नाडकर्णी, *द राइज एण्ड फॉल ऑफ द मराठा एम्पायर*, पृ० 58-59.कुछ प्रारम्भिक विद्वानों का मत था कि शिवाजी पन्हाला से भागकर रंगना गया था, किन्तु अब इसे स्वीकार नहीं किया जा रहा है। देखिये, *उपरोक्त*, पृ० 59, टिप्पणी 44.

36. *राजवाड़े*, XV, पृ० 363. डेविड किनकैड, *शिवाजी, द फाउण्डर ऑफ मराठा एम्पायर*, पृ०127-128

37. देखिये, ऊपर।

38. आर० वी० नाडकर्णी, *द राइज एण्ड फॉल ऑफ द मराठा एम्पायर*, पृ० 59.

39. जुबैरी, *बसातीन-उस्-सलातीन*, पृ० 398-402.

40. ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑफ द मराठाज*, I, पृ०148.

41. *सभासद बखर*, पृ० 68-69.

42. जे0 एन0 सरकार, *शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स*, पृ0 229. इस सन्दर्भ में आगे भी चर्चा की गई है।

43. जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0 144.

44. *आलमगीरनामा*, 988–1021; जे0एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑफ औरंगजेब*, IV, पृ0 118–144.

45. *शिवाजी सॉवेनिर*, पृ0 146; देखिये, जी0एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0 144, टिप्पणी 11.

46. जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0315–16

47. *शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स*, पृ0 229.

48. कुछ अवसरों पर राजाराम तथा सन्ताजी घोरपड़े के सम्बन्धों में दरार दिखाई पड़ती है किन्तु इसके कारण सन्ता जी घोरपड़े ने राजाराम की उसके शत्रुओं के विरुद्ध सहायता भले न की हो, पर मराठों के शत्रुओं का साथ कभी नहीं दिया गया। विस्तार के लिए देखिये, अध्याय, 'राजाराम के साथ सम्बन्ध'।

49. *शिव चरित्र प्रदीप*, पृ0 32; *अखबारात*, 17 मार्च, 2 अप्रैल, 4 अप्रैल, तथा 9 अप्रैल, 1683.

50. डेविड किनकैडी, *शिवाजी, द फाउण्डर ऑव मराठा एम्पायर*, पृ0 254, टिप्पणी 1.

51. *सम्भाजी कालीन पत्र सरसंग्रह*, संख्या 298, पृ0 66.

52. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी*, पृ0 229

53. जी0 एस0 सरदेसाई, मराठों का नवीन इतिहास, I, पृ0 246.

अध्याय 3

मुगलों के साथ संघर्ष-1

शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा राज्य को प्रथम संकट-स्थिति से तब गुजरना पड़ा था जब मई 1666 में औरंगजेब ने उसे आगरा में बन्दी बना लिया था। किन्तु शिवाजी अपनी बुद्धि और साहस के बल पर इस संकट से उबरने में सफल रहा।[1] द्वितीय संकट-स्थिति तब आयी जब 3 अप्रैल 1680 को शिवाजी का देहान्त हुआ। वह अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में पारिवारिक कलह में उलझा था। इस कारण वह अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं कर सका। उसकी मृत्यु के समय उसका ज्येष्ठ पुत्र, शम्भूजी, 22 वर्ष का था। उसमें वीरता और साहस का अभाव नहीं था, किन्तु वह दुर्व्यवहारी था। अपने पिता की आज्ञा का पालन न करते हुये वह मुगलों के पास चला गया था, जिस कारण शिवाजी उस पर विश्वास नहीं करता था, और उसके वापस लौटने पर उसे पन्हाला के दुर्ग में निगरानी में रखा गया था।[2] इस सबका लाभ उठाकर शिवाजी की आठवीं पत्नी, सोयराबाई, ने सचिव अन्नाजी दत्तो तथा कुछ अन्य प्रभावशाली अधिकारियों की सहायता से अपने 10 वर्षीय पुत्र, राजाराम को सिंहासन पर बैठा दिया। सभी अमात्य शम्भूजी के स्वभाव तथा व्यवहार से परिचित थे, और समझते थे कि वह अपने पिता के कार्य को आगे बढ़ाने में अक्षम सिद्ध होगा। इस कारण पेशवा, मोरोपन्त पिंगले, ने भी अन्ना जी दत्तो से अपनी प्रतिस्पर्धा को भुलाकर राजाराम का साथ दिया।[3]

किन्तु सोयराबाई में प्रशासनिक योग्यता का अभाव था। इसके अतिरिक्त उसके अनेक समर्थक अभी अनिश्चय की स्थिति में थे।[4] यह सुझाव भी दिया गया है कि राजनीतिक आवश्यकताओं से पूर्णतः परिचित न होने के कारण जनसामान्य के लिये यह समझना कठिन था कि ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार की अवहेलना कर एक अल्पवयस्क पुत्र को सिंहासनारूढ़ क्यों किया जा रहा है।[5] परिणामस्वरूप सोयराबाई को सफलता नहीं मिली। यद्यपि शिवाजी की मृत्यु की सूचना को गुप्त रखने का प्रयास किया गया,[6] तथापि शम्भूजी को इसका ज्ञान हो गया[7] और उसने अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयास आरम्भ कर दिये। उसने पन्हाला के दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[8] करहाड़ में सेनापति, हम्बीरराव मोहिते, को सोयराबाई की योजना की सूचना नहीं थी। वह भी शम्भू जी के साथ हो गया। पेशवा मोरोपन्त पिंगले भी द्वेषवश सोयराबाई तथा अन्नाजी दत्तो की योजना का पूरे सामर्थ्य के साथ समर्थन नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य मराठा सरदारों ने भी शम्भूजी के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की।[9] शम्भूजी 20,000 सैनिकों के साथ रायगढ़ पहुंचा और 18 जून 1680 को राजधानी पर अधिकार करने में सफल रहा। उसके मराठा सिंहासन पर आरूढ़ होने की तिथि 20 जुलाई 1680 बतायी जाती है।[10] उसका विधिवत राज्याभिषेक अगले वर्ष हुआ।[11]

जिस तीव्रता के साथ शम्भूजी ने मराठा सिंहासन पर अधिकार किया, उसका जनसामानय पर अनुकूल प्रभाव पड़ना चाहिये था। किन्तु उसने अपने अगले कार्यों से अपनी प्रजा की संवेदना खो दी।

उसने सोयराबाई की बन्दी बनाकर उसकी हत्या करवा दी।[11a] राजाराम को भी बन्दी बना लिया गया। मोरोपन्त पिंगले तथा अन्नाजी दत्तो पहले ही पन्हाला में कैद थे। सोयराबाई के कुछ अन्य समर्थकों का वध कर दिया गया। इस प्रकार शम्भूजी ने अपनी स्थिति सुदृढ़ की। कुछ समय बाद उसने प्रभावशाली मन्त्रियों, बालाजी आवजी चिटनीस (प्रभु), हीरोजी फर्जन्द तथा अन्नाजी दत्तो का हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाकर वध करवा दिया। ये सभी शिवाजी के विश्वासप्राप्त सहयोगी थे तथा इनसे शम्भूजी को संकट की इस स्थिति में सहायता मिल सकती थी। इस विकट समय शम्भूजी ने अपने पिता के सहयोगियों से मंत्रणा करने के स्थान पर प्रशासन का उत्तरदायित्व कवि कलश नामक एक कन्नौजिया ब्राह्मण को सौंप रखा था।[12] उसकी सरकारी उपाधि *छन्दोगामत्य,* 'वेदज्ञ मन्त्री', थी।[13] यह आम धारणा है कि शम्भूजी ने *अष्ट-प्रधान* के पद समाप्त कर समस्त अधिकार कवि कलश को सौंप दिये थे, किन्तु यह सही नहीं है। मन्त्री विद्यमान थे, किन्तु शक्तिहीन थे।[14] अधिकांश विद्वानों का विचार है कि कवि कलश ने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये शम्भूजी को विलासिता में मग्न रहने दिया,[15] और स्वयं को राजा तक पहुँचने का एकमात्र माध्यम बना लिया। कवि कलश के प्रभाव में वह जादू-टोने, झाड़-फूँक तथा पिशाच पूजा में विश्वास करने लगा।[16] ऐसी दशा में मराठा राज्य के प्रशासन पर विपरीत प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यह आश्चर्यजनक ही है कि इस स्थिति में भी औरंगजेब शम्भूजी के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में मराठों के विरुद्ध कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर

सका।

अपने शासनकाल के आरम्भ में शम्भूजी ने मुग़लों के विरुद्ध कुछ सफलताएँ प्राप्त कीं। अगस्त 1680 में मराठों ने शोलापुर के निकट मुग़लों की 25 तोपें छीन लीं।[17] अक्टूबर–नवम्बर 1680 में हम्बीरराव मोहिते के नेतृत्व में मराठा सैनिकों ने बुरहानपुर को लूट लिया।[18] 1679 से औरंगजेब राजपूतों के साथ संघर्ष में व्यस्त होने के कारण इस ओर व्यक्तिगत ध्यान नहीं दे सका। उसके प्रिय पुत्र, अकबर, ने उसे राजपूतों के साथ सम्मानपूर्वक शर्तों पर सन्धि करने की सलाह दी, जिसे अस्वीकार करते हुये औरंगजेब ने कठोर शब्दों में अपने पुत्र की भर्त्सना की। इससे रूष्ट होकर अकबर ने राजपूतों के सहयोग के बल पर अपने पिता से विद्रोह कर दिया, और 1 जनवरी 1681 को स्वयं को मुग़ल सम्राट घोषित कर दिया। वह अपने राजपूत सहयोगियों के साथ औरंगजेब को बन्दी बनाने के लक्ष्य से अजमेर की ओर बढ़ा, किन्तु सफल नहीं रहा। उत्तर भारत में उसे कोई सुरक्षित स्थान दिखायी नहीं दिया। उसे लगा कि शम्भूजी एकमात्र व्यक्ति है, जो उसे इस संकट की घड़ी में शरण दे सकता है। अतः वह महाराष्ट्र की ओर बढ़ा, और 4 मई 1681 को अकबरपुर के निकट नर्मदा पार कर दक्षिण में प्रविष्ट हुआ। शम्भूजी के अधिकारियों ने त्रिम्बक (नासिक) के निकट उसका स्वागत किया, और 1 जून 1681 को उसे सम्मानपूर्वक पाली पहुंचा दिया।[19]

शम्भूजी के योग्य मन्त्रियों एवं अधिकारियों का मत था कि औरंगजेब के आतंक से मराठा राज्य को मुक्त करने का यह एक

उपयुक्त अवसर है। किन्तु शम्भूजी इसका लाभ नहीं उठा सका। यद्यपि शम्भूजी ने अकबर को शरण प्रदान की, तथापि अगले लगभग चार मास तक दोनों की भेंट नहीं हो सकी। उनकी प्रथम भेंट 13 नवम्बर 1681 को हुयी, और इस अन्तराल में दोनों के मध्य संपर्क का एकमात्र माध्यम कवि कलश था।[20] अगले लगभग छः वर्षों तक (जून 1681 से फरवरी 1687 तक) शम्भूजी तथा अकबर एक-दूसरे की सहायता करने का निरन्तर प्रयास करते रहे,[21] तथा औरंगजेब के विरुद्ध राजपूतों के साथ महत्वाकांक्षी योजनाएँ बनाते रहे,[22] किन्तु उन्हें किन्हीं कारणों से विशेष सफलता नहीं मिली।

जून 1681 में अजमेर में औरंगजेब को सूचना प्राप्त हुयी कि शम्भूजी ने उसके विद्रोही पुत्र, अकबर, को शरण प्रदान की है। उसने शिवाजी के काल में मराठों का दमन करने का प्रयास किया था, किन्तु असफल रहा था।[23] उसे अब अपना उद्देश्य पूरा करने का बहाना मिल गया। शिवाजी की मृत्यु हो जाने के कारण उसे अपना कार्य अपेक्षाकृत सरल भी लगा होगा। उत्तर भारत में अपने साम्राज्य की रक्षा की उचित व्यवस्था कर वह सितम्बर 1681 में दक्षिण की ओर बढ़ा, और 22 मार्च 1682 को औरंगाबाद पहुंच गया। अकबर उसका सर्वाधिक प्रिय पुत्र था। उसके विद्रोह ने औरंगजेब को झकझोर दिया था, और अब उसे अपने परिवार के सभी सदस्यों की निष्ठा पर संदेह हो गया था। इस कारण 'दक्षिण में उसके आगमन के कुछ समय बाद तक उसकी नीति दुविधापूर्ण, सन्देहग्रस्त, सतर्क और बाह्य रूप से अव्यवस्थित या परस्पर

विरोधी थी।',[24] इसी कारण यद्यपि मुगल सम्राट ने मराठों का दमन करने के प्रयास किये, तथापि दक्षिण में आगमन के एक वर्ष से अधिक समय तक उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

औरंगजेब ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, शाह आलम, को पुर्तगालियों तथा शम्भूजी पर एक साथ आक्रमण करने के आदेश दिये। किन्तु प्रारम्भिक सफलता के बाद इस आक्रमण का कोई निश्चित लाभ न निकलते देख औरंगजेब ने उसे वापस बुला लिया। अप्रैल 1685 तक औरंगजेब मराठों के कुछ दुर्गों एवं क्षेत्रों पर अधिकार करने में ही सफल रहा था, जैसे सम्पगाँव दुर्ग,[25] मंगल (Mangalvedha), संगोला,[26] कोठला-गढ़,[27] आदि। इस कार्य में मुगल सैनिकों की वीरता के साथ-साथ धन ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। किन्तु मराठों के विरुद्ध अपने अभियानों में आशा के अनुरूप सफलता न मिलती देख औरंगजेब ने दक्षिण भारत की दो मुस्लिम सल्तनतों पर अधिकार की ओर ध्यान दिया। ऊपर हम देख चुके हैं कि कैसे 12 सितम्बर 1686 को बीजापुर, तथा 28 जनवरी 1687 को गोलकुण्डा पर मुगलों का अधिकार स्थापित हुआ।[28]

फरवरी-मार्च 1687 को अकबर शम्भूजी से औरंगजेब के विरुद्ध ठोस सहायता न मिलती देख ईरान चला गया। अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि शम्भूजी अकबर के रूप में उपस्थित अवसर का लाभ उठाने में चूक गया। वह औरंगजेब के प्रिय पुत्र के माध्यम से मुग़ल सम्राट से अपनी शर्तें मनवा सकता था, अथवा अकबर की सलाह मान कर अहमदनगर, औरंगाबाद, जुन्नार,

बुरहानपुर, और अन्ततः उत्तर भारत पर आक्रमण कर सकता था। किन्तु उसने ऐसा कुछ न करके अपनी अयोग्यता का परिचय दिया। जे० एन० सरकार शम्भूजी का पक्ष लेते हुये कहते हैं कि शम्भूजी का हित अकबर के हित से मेल नहीं खाता था। सम्भवतः उसने सोचा होगा कि यदि वह महाराष्ट्र की पहाड़ियों और वनों की सुरक्षा छोड़ कर उत्तर भारत के चौड़े तथा खुले मैदानों में जायेगा, तो उसके सैनिक प्रकृति से मिलने वाले लाभ से वंचित हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त, महाराष्ट्र से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर औरंगजेब उसके राज्य पर अधिकार भी कर सकता है। ऐसी दशा में उत्तर भारतीय अभियान के असफल होने पर उसके पास शरण लेने के लिये कोई स्थान नहीं बचेगा।[29]

शम्भूजी को यह कथित अवसर गवाँ देने के लिये इतिहास क्षमा कर सकता है, किन्तु उसके द्वारा एक दूसरे अवसर का लाभ न उठाने का मराठों को भारी मूल्य चुकाना पड़ा। अप्रैल 1685 से दिसम्बर 1688 तक औरंगजेब बीजापुर तथा गोलकुण्डा की सल्तनते हस्तगत करने में व्यस्त था, और इस दौरान उसका ध्यान मराठों से हटा हुआ था। इस अवसर का लाभ उठाकर शम्भूजी को अपनी सैन्य कमियों को दूर करना चाहिए था और दुर्गों की मरम्मत करानी चाहिये थी। किन्तु उपलब्ध साक्ष्यों से उसके द्वारा ऐसा कुछ किये जाने की सूचना नहीं मिलती है। कभी-कभी उसके द्वारा मुग़लों के विरुद्ध अन्य शक्तियों का समर्थन प्राप्त करने के प्रयासों की सूचना मिलती हैं।[30] किन्तु वह विलासिता में इतना व्यस्त था, तथा कवि कलश ने उसे अपने प्रभाव में इस ढंग से कर रखा था,

कि वह इस दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं कर सका। अपने पिता की सेवा कर चुके कुछ योग्य सहयोगियों की मन्त्रणा पर (जो कवि कलश के कारण उस तक बहुत कम पहुँच पाते थे) उसे कभी-कभी मुग़लों के विरुद्ध सक्रिय देखा जा सकता है, और उसके शासन काल में मुग़ल तथा मराठा सैनिकों के मध्य कुछ संघर्ष भी हुये। किन्तु इन्हें सामान्यतः अधिक से अधिक मराठा धावे ही कहा जा सकता है।[31] कुछ इतिहासकार मानते है कि जब औरंगजेब बीजापुर तथा गोलकुण्डा के विरुद्ध अपने अभियानों के कारण महाराष्ट्र से अनुपस्थित था, उस समय शम्भूजी द्वारा मुग़लों के विरुद्ध तैयारी न करने का कारण उसकी निष्क्रियता नहीं अपितु पुर्तगालियों तथा सिद्दियों के विरुद्ध संघर्षों में व्यस्तता थी। किन्तु यह तर्क उचित नहीं लगता। पुर्तगाली तथा सिद्दी उस समय इतने शीक्तशाली नहीं थे कि वे मराठों के लिये कोई गंभीर संकट उत्पन्न कर सकें। मराठों के सामने सबसे बड़ी चुनौती औरंगजेब का वह आक्रमण था, जिसके मुगल सम्राट के बीजापुर तथा गोलकुण्डा से मुक्त होने के उपरान्त तुरन्त होने की प्रबल सम्भावना थी।[32]

केवल इतना ही नहीं, शम्भूजी ने कवि कलश के समझाने पर अपने अनेक मन्त्रियों एवं सहयोगियों आदि को बन्दी भी बनाया, अथवा उनका वध करवा दिया, यथा अक्टूबर 1684 में मानाजी मोरे, गंगाधर वासुदेव, तथा राहुजी सोमनाथ,[33] तथा बाद में बालाजी आवजी चिटनिस (प्रभु), सोमाजी दत्तो, हीरोजी फर्जन्द, श्यामजी नायक,[34] तथा नवम्बर-दिसम्बर 1688 में प्रह्लाद पन्त।[35] इससे शम्भूजी की लोकप्रियता पर विपरीत प्रभाव पड़ा, तथा मराठा

राज्य की हानि हुयी। दिसम्बर 1687 में सेनापति हम्बीरराव मोहिते की वाई के समीप मृत्यु से मराठों को एक और झटका लगा।

बीजापुर तथा गोलकुण्डा के अभियानों से मुक्त होते ही औरंगजेब ने मराठा राज्य की ओर अपना ध्यान लगाया। इन दोनों सल्तनतों की विजय के परिणामस्वरूप उसके संसाधनों में वृद्धि हो गयी थी। साथ ही उसे यह भी विश्वास था कि अब मराठों को आदिलशाही तथा कुतुबशाही सल्तनतों से किसी प्रकार की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहायता उपलब्ध नहीं हो सकेगी। जनवरी 1688 में मातबर खाँ ने विश्रामगढ़ की विजय की, तथा पट्टा का दुर्ग मराठों से छीन लिया।[36] फरवरी–मार्च 1688 में शाहज़ादा आज़म ने बेलगाम तथा अनेक अन्य दुर्गों पर मुगल अधिकार स्थापित किया।[37] अप्रैल 1688 में मुग़लों की सेवा में रत परसोजी ने मदनगढ़ पर विजय प्राप्त की।[38] दिसम्बर में सैयद अब्दुल्ला खां और उसके पुत्र ने सरसगढ़ तथा होलगढ़ मराठों से छीन लिये।[39] धन का प्रयोग कर मातबर खां ने 1689 के प्रारम्भिक मासों में त्रिम्बक[40], कल्याण, माहुली, भिवण्डी, दुर्गडी, तथा मंगलगढ़ पर अधिकार कर लिया।[41]

शेख निज़ाम को पन्हाला का घेरा डालने का आदेश प्राप्त हुआ था, जिसके सिलसिले में जनवरी 1689 में वह कोल्हापुर के निकट था। उसे ज्ञात हुआ कि कवि कलश तथा शिर्के परिवार के मध्य विवाद का खेलना (विशालगढ़) में निबटारा करने के उपरान्त शम्भूजी मानगंगा में जलक्रीड़ा करने हेतु संगमेश्वर में रुका हुआ

है। मुकर्रब खाँ 2000 घुड़सवार तथा 1000 पैदल सैनिक लेकर कोल्हापुर से संगमेश्वर की ओर बढ़ा। शम्भूजी के गुप्तचरों ने इसे मुग़लों के सम्भावित आक्रमण की सूचना दी, किन्तु वह राग-रंग में इतना व्यस्त था कि उसने अपनी रक्षा के लिये कोई उचित प्रबन्ध नहीं किये। मुकर्रब खाँ अपनी सेना के साथ उस पर टूट पड़ा। अनेक मराठा सरदारों ने अपने राजा की रक्षा के लिये संघर्ष किया, और अपने प्राण गवांये। इनमें से एक मुधोल का मालोजी घोरपड़े भी था।[42] कवि कलश ने शम्भूजी को लेकर भागने का प्रयास किया, किन्तु घायल होकर अपने घोड़े से गिर गया। यह देखकर शम्भूजी रुक गया। कवि कलश के बन्दी बनाये जाने के बाद शम्भूजी भाग कर एक मन्दिर में छिप गया, किन्तु बन्दी बना लिया गया।[43] ऐसा ही विवरण भीमसेन के *दिलकशा* तथा *मासिर-ए-आलमगीरी* में भी प्राप्त होता है। एक अन्य स्रोत में बताया गया है कि जिस समय शम्भूजी बन्दी बनाया गया, उस समय वह अपने कुछ अनुचरों के साथ खटोला दुर्ग से एक अन्य दुर्ग जा रहा था।[44] खटोला संगमेश्वर के निकट एक छोटा सा स्थान है। यदि यह सूचना सही है, तो इससे शम्भूजी को बन्दी बनाये जाने का निश्चित स्थान पहली बार ज्ञात होता है।[45]

15 फरवरी 1689 को बन्दी शम्भूजी को बहादुरगढ़ (पेडगाँव) में औरंगजेब के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उसके आदेश पर शम्भूजी, राज-परिवार के अन्य बन्दी सदस्यों, आदि का घोर अपमान किया गया, तथा उन्हें भीषण यातनायें दी गयीं। यद्यपि औरंगजेब के कुछ सहयोगियों ने उसे शम्भूजी को जीवित रखने की

सलाह दी, तथापि औरंगजेब ने उसकी तथा उसके परिवार के बन्दी बनाये गये सदस्यों के वध के आदेश दिये। 11 मार्च 1689 को अत्यधिक अपमान तथा यातनाएं सहने के बाद भीमा नदी के तट पर स्थित कोड़ेगाँव में उनका वध कर दिया गया। उनका मांस कुत्तों को खिला दिया गया।[46] उनके सिरों में भूसा भर कर दक्षिण भारत के प्रमुख स्थानों पर उनका प्रदर्शन किया गया।[47] बाद में उनके सिर वाडुगाँव में एक झाड़ी के नीचे प्राप्त हुये, और कुछ लोगों ने भीमा तथा इन्द्रयानी नदियों के संगम पर स्थित तुलापुर में उनका अन्तिम संस्कार किया।[48]

शम्भूजी अपने जीवन में अपने आचरण के कारण कभी अपनी प्रजा की भक्ति का पात्र नहीं बन सका। किन्तु बन्दी बनाये जाने के उपरान्त अपना जीवन बचाने के लिये उसने मुग़लों के साथ कोई समझौता नहीं किया, और घोर यातनाओं को साहसपूर्वक सहा। उसने प्रथम बार अपने पिता की मर्यादा के अनुरूप आचरण किया, और इस प्रकार 'अपने आजीवन पापों का अपनी मृत्यु के ढंग से पूर्ण प्रायश्चित्त कर लिया',।[49]

'इस प्रकार दक्कन में प्रवेश करने के पांच वर्ष के अन्दर ही औरंगजेब ने अपने जीवन का सबसे बड़ा सपना पूरा कर लिया। नर्मदा से तुंगभद्रा तक सारा देश उसके कदमों में था। ऐसा लगने लगा कि शिवाजी तथा उनके साथियों का जीना और मरना व्यर्थ गया। जिस सैलाब से देश को बचाए रखने के लिए शाहजी तथा शिवाजी साठ वर्षों तक संघर्ष करते रहे, उसी सैलाब में अब पूरा देश डूबा हुआ था। उसमें सभी कुछ तो डूब गया और उससे उबरने

का कोई उपाय भी नहीं सूझ रहा था। ... पर ठीक उसी समय जब देश का भाग्य अपनी सबसे खराब दशा में था और हर तरफ घोर निराशा का वातावरण था, शिवाजी के सैनिक स्कूल में प्रशिक्षित कुछ बहादुर देशप्रेमी दुर्भाग्य के उसी अंधेरे में एक आशा की किरण के समान बने हुये थे। उनके पास न तो पैसा था और न साधन फिर भी उनके मन में यह चाह थी कि उनकी खोई हुई आजादी वापस मिले और औरंगजेब को खदेड़ भगाया जाए'।[50] औरंगजेब ने शम्भूजी को घोर यातनाएँ देकर सोचा था कि इससे मराठा सरदार भयभीत हो जायेगें, किन्तु उसके इस कृत्य ने उनका भय जागृत करने के स्थान पर उनके हृदय में प्रतिशोध की भावना को बलवती बना दिया।[51] औरंगजेब ने पाया कि नृपविहीन मराठे भी मराठा राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में मुग़ल सेनाओं का प्रतिरोध कर रहे हैं।

औरंगजेब को इस तथ्य का अनुमान अप्रैल 1689 के आरम्भिक दिनों में तीनों घोरपड़े बन्धुओं, सन्ताजी, बाहिरजी तथा मालोजी, और विठोजी चाह्वाण के साहसपूर्ण कार्य से ही लग गया होगा। 2 अप्रैल 1689 को मुग़ल सम्राट कोड़ेगाँव से जाकर इस्लामाबाद (चाकन) के दुर्ग का निरीक्षण करने की योजना बना रहा था।[51a] किन्तु उसके प्रस्थान से पूर्व सन्ताजी घोरपड़े ने अपने दोनों अनुजों, बाहिरजी घोरपड़े तथा मालोजी घोरपड़े तथा सहयोगी विठोजी चाह्वाण के साथ रात्रि के समय औरंगजेब के शिविर पर आक्रमण कर दिया। सूचना प्राप्त होती है कि उन्होंने मुग़ल सम्राट के तम्बू के स्वर्णिम कलश निकाल लिये और उन्हें ले जाकर राजाराम को भेंट किया, जो उस समय विशालगढ़ में था।[51b] उनके

इस कृत्य से औरंगजेब के शिविर में भय व्याप्त हो गया। शम्भूजी की हत्या के मात्र ढाई मास बाद प्राप्त इस छोटी किन्तु साहसपूर्ण उपलब्धि से मराठों में नई आशा का संचार हुआ होगा। राजाराम ने सन्ताजी घोरपड़े को *ममुल्कत-मादार,* बाहिरजी घोरपड़े को *हिन्दूराव,* तथा मालोजी घोरपड़े को *अमीर-उल-उमराव* की उपाधि देकर उन्हें सम्मानित किया। विठोजी चाह्वाण को *हिम्मत बहादुर* की उपाधि प्रदान की गयी।[51c]

शम्भूजी के वध के समय उसका पुत्र शाहू छह वर्ष का बालक मात्र था। रायगढ़ में मराठों की रणनीति निर्धारित करने हेतु एक सभा हुयी, जिसकी अध्यक्षता प्रह्लाद नीराजी ने की, और जिसमें जनार्दन राव हनुमन्ते, रामचन्द्र पन्त बावड़ेकर, खण्डो बल्लाल चिटनीस, महादजी पनसंबल, धनाजी जाधव और सन्ताजी घोरपड़े ने भाग लिया। शम्भूजी की विधवा येसुबाई, से सलाह लेकर यह तय किया गया कि राजाराम को संरक्षक नियुक्त किया जाये।[52] इस सभा में मराठा सरदारों ने औरंगजेब के साथ संघर्ष जारी रखने का भी निर्णय लिया। राजाराम को शम्भूजी ने रायगढ़ में बन्दी बना रखा था। शम्भूजी मुग़लों द्वारा 1 फरवरी 1689 को बन्दी बनाया गया था। उसके एक सप्ताह बाद, 9 फरवरी 1689 को रायगढ़ के किलेदार, चंगोजी काटकर, तथा येसाजी कंक ने राजाराम को कारागार से मुक्त कर दिया।[53] साथ ही मानाजी मोरे तथा अन्य सरकारकुन भी मुक्त कर दिये गये, तथा उन्हें उनके पूर्व पदों पर पुनर्नियुक्त कर दिया गया। 12 फरवरी 1689 को रायगढ़ में राजाराम का सिंहासनारोहण हो गया।[54]

राजाराम के राज्यारोहण के डेढ़ मास के भीतर, 25 मार्च 1689 को औरंगजेब ने एतिकाद खाँ को रायगढ़ पर अधिकार करने हेतु भेजा।[55] उसने तुरन्त रायगढ़ को घेर लिया, और ऐसा प्रतीत होने लगा कि दुर्ग की लम्बे समय तक रक्षा सम्भव नहीं होगी। रायगढ़ में राजाराम और उसके परिवार के अतिरिक्त येसुबाई तथा शाहू भी घिरे हुये थे। स्थिति की गम्भीरता का अनुमान लगाकर येसुबाई ने मराठा संघर्ष के हित को ध्यान में रखते हुये यह निर्णय लिया कि घेराबन्दी और अधिक सघन होने से पूर्व राजाराम अपने परिवार के साथ रायगढ़ से बाहर चला जाये। उसने स्वयं अपने पुत्र के साथ रायगढ़ में ही रुकने का निश्चय किया।[56]

राजाराम के मन्त्रियों ने यह विचार किया कि महाराष्ट्र के मराठा दुर्गों में छिप कर राजाराम को मुग़लों के हाथों पड़ने से बचाना सम्भव नहीं होगा। साथ ही वे मुग़लों का ध्यान अन्यत्र आकर्षित करना चाहते थे, जिससे महाराष्ट्र को कुछ समय के लिये राहत मिल सके, और वहाँ के लोग संकट से उबर सके।[56a] अन्ततः यह निष्कर्ष निकाला गया कि शिवाजी के शासन के अन्तिम वर्षों में रक्षा की जो दूसरी पंक्ति कर्णाटक में तैयार की गयी थी, उसे पुनर्जीवित किया जाये, तथा राजाराम जिंजी के दुर्ग में चला जाये, जो सुरक्षा की दृष्टि से अभेद्य माना जाता था। सरकार का मत है कि राजाराम कर्णाटक जाकर वहां के नायकों के साथ मिलकर एक विशाल सेना का गठन भी करना चाहता था, जिससे गोलकुण्डा तथा

बीजापुर पर अधिकार किया जा सके।[57] मुग़लों के विरुद्ध दूसरा मोर्चा कर्णाटक में बनाना अधिक कठिन कार्य नहीं था। तंजावुर का शासक, शाह जी II, राजाराम का चचेरा भाई था। इस क्षेत्र के अन्य नायक भी मुग़लों से भयभीत थे, और उन्हें अपना अस्तित्व खतरे में लग रहा था। वे अपेक्षाकृत सरलता से मराठों का साथ देने के लिये तैयार किये जा सकते थे।[58]

5 अप्रैल 1689 को राजाराम ने रायगढ़ छोड़ा,[59] और चेन्नई से लगभग 60 मील दक्षिण-पश्चिम, तथा पाण्डुचेरी के समुद्रतट से लगभग 40 मील अन्दर की ओर स्थित जिंजी के लिये प्रायाण किया।[60] रायगढ़ से वह सबसे पहले प्रतापगढ़ पहुँचा। इसके पश्चात् लगभग छह मास तक राजाराम मुग़लों से बचने के लिये एक मराठा दुर्ग से दूसरे मराठा दुर्ग में शरण लेता रहा। रायगढ़,[61] रोहिड़ा तथा तोरना की विजय करती हुयी मुग़ल सेना 5 अगस्त 1689 को प्रतापगढ़ पहुँच गयी और दुर्ग को घेर लिया।[62] घेरा तंग होने से पहले राजाराम पन्हाला चला गया, और सितम्बर के मध्य तक वहां रहा। जब राजाराम पन्हाला में था, तब शम्भूजी को बन्दी बनाने वाले शेख़ निज़ाम ने उस दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। किन्तु इस संघर्ष में मराठे उसे पराजित करने में सफल रहे। इसी बीच, सन्ताजी घोरपड़े ने भी जुल्फिकार खाँ की सेना पर आक्रमण कर दिया, और उसे पराजित कर उससे पाँच हाथी, और कुछ मूल्यवान वस्तुएँ लूट लीं। उसकी इस सफलता के कारण राजाराम ने उसे सम्मानित किया।[62a] प्रतापगढ़ के पतन के उपरान्त यह निर्णय लिया गया कि राजाराम को गुप्त रूप से पन्हाला से जिंजी की ओर

चल देना चाहिए। उसके साथ खण्डोजी नायक पनसंबल, प्रह्लाद नीराजी, नीलोपन्त मोरेश्वर, बाहिरो मोरेश्वर, कृष्णाजी अनन्त सभासद, बाजी कदम, खण्डोजी कदम, मानाजी मोरे, रूपाजी भोंसले, सन्ताजी जगताप, खण्डोजी बल्लाल, विट्ठल त्रिम्बक और उसके तीन भाई चले। मार्ग में सन्ताजी घोरपड़े के भाई, बाहिरजी तथा मालोजी, इस दल में सम्मिलित हुये।[63] 26 सितम्बर 1689 को राजाराम पन्हाला छोड़ कर रंगना के दुर्ग की ओर बढ़ा।[64] *जेधे शकावली* में स्पष्ट कहा गया है कि उसने अश्वारूढ़ होकर एक सैनिक की भांति पन्हाला से कूच किया।[65] किन्तु जी० एस० सरदेसाई के अनुसार मराठा दल लिंगायत कपड़ा व्यापारियों के रूप में पन्हाला से चला था।[66] एक सनद में भी उनके *कपड़ी* अर्थात् कपड़ा विक्रेता के रूप में महाराष्ट्र छोड़ने का उल्लेख है।[67] कुछ अन्य स्रोतों में उनके *गोसाई*[68] अथवा *योगी*[69] के रूप में पन्हाला से निकलने का उल्लेख मिलता है।

वेल्लूर पन्हाला से लगभग 500 मील की दूरी पर स्थित है। राजाराम अनेक कठिनाइयों का सामना करता हुआ 28 अक्टूबर 1689 को वहाँ पहुँचा।[70] मुग़लों ने वेल्लूर का मार्ग बाधित कर रखा था, और सभी सरदारों को राजाराम को बन्दी बनाने के आदेश दिये गये थे। *मासिर-ए-आलमगीरी* के अनुसार वेल्लूर यात्रा के दौरान राजाराम बेडनूर[71] की रानी के क्षेत्र से होकर गुज़रा। उस समय अब्दुल्ला खाँ बरहा बीजापुर क्षेत्र में था। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र, हसन अली, को बेडनूर की ओर भेजा, और स्वयं भी वहाँ पहुंच गया। मुग़ल सेना ने तुंगभद्रा नदी में एक द्वीप पर राजाराम

पर अचानक आक्रमण कर दिया। इस संघर्ष में राजाराम बड़ी कठिनाई से बच निकलने में सफल हुआ। हिन्दूराव, व्यंकोजी, तथा बाहिरजी घोरपड़े और मालोजी घोरपड़े सहित उसके लगभग 100 साथी बन्दी बना लिये गये।[72] राजाराम ने बेडनूर की रानी के क्षेत्र में शरण ली। औरंगजेब ने जाँनिसार खाँ, शरजा खाँ और मतलब खाँ के अधीन एक बड़ी सेना उसे बन्दी बनाने के लिये भेजी। बेडनूर की रानी पर राजाराम को छिपाने का सन्देह किया गया। तब तक सन्ताजी घोरपड़े वहाँ पहुँचा और उसने मुगल सेनापतियों का सफलतापूर्वक सामना किया। *मासिर-ए-आलमगीरी* में इस संघर्ष में सन्ताजी की सफलता को स्वीकार करते हुये यह बताया गया है कि मामले को सुलझाने के लिये रानी ने कर के नाम पर कुछ धन अर्थदण्ड के रूप में चुकाया।[73] सन्ताजी घोरपड़े के भाइयों सहित मराठा बन्दियों को बीजापुर के किले में रखा गया था। किन्तु वे चतुराईपूर्वक भाग निकलने में सफल रहे।[74] शेष का वध कर दिया गया।[75]

बेडनूर से अम्बूर होता हुआ,[76] राजाराम वेल्लूर पहँचा, वहाँ से चलकर 1-2 नवम्बर 1689 को लगभग 50 मील दक्षिण-पूर्व में स्थित जिंजी पहुंचा।[77] जिंजी का शासन शिवाजी के दामाद, हरजी महादिक, के अधिकार में था।[77a] राजाराम के वहां पहुंचने से लगभग एक मास पूर्व, 19 सितम्बर 1689 को,[77b] उसकी मृत्यु हो गयी थी,[78] और उसकी विधवा, अम्बिका बाई, ने शासन की बागडोर सम्भल रखी थी। राजाराम ने उससे शासन का अधिकार हस्तगत कर लिया।[79] स्थानीय सामन्तों ने नये शासक को कुछ

संकोच के साथ स्वीकार कर लिया, और उसे तीन लाख *हुण* भेंट किये। राजाराम के समक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य अपने मन्त्रिमण्डल का निर्धारण था। *अष्टप्रधान* के रूप में निम्नलिखित को नियुक्त किया गया[80] :

1. नीलोपन्त मोरेश्वर, *पेशवा* (प्रधान मन्त्री)
2. जनार्दनपन्त हनुमन्ते, *अमात्य* (वित्त मन्त्री)
3. शंकराजी मल्हार, *सचिव*
4. रामचन्द्र त्रिम्बक पाण्डे, *मन्त्री* (गृह मंत्री)
5. महादजी गदाधर, *सुमन्त* (परराष्ट्र मन्त्री)
6. बालाजी सुन्दर, *न्यायाधीश*
7. महादजी नायक पनसंबल, *सेनापति*
8. खण्डोजी बल्लाल, *चिटनीस*

किन्तु ग्राण्ट डफ द्वारा दी गयी *अष्ट-प्रधान* की सूची में कुछ अन्तर दिखायी देते हैं। वह नीराजी राउजी को *न्यायाधीश* तथा सन्ताजी घोरपड़े को *सेनापति* बताने के साथ-साथ आठवें स्थान पर श्रीकराचार्य का उल्लेख करता है, और उसका पद *पण्डित राव* बताता है।[81] यही सूचना सी० एस० श्रीनिवासचारी से भी प्राप्त होती है।[82] इस सूची में सन्ताजी घोरपड़े का सम्मिलित किया जाना समझना सहज है। जिंजी पहुंच कर राजाराम को महाराष्ट्र से प्राप्त प्रारम्भिक समाचारों में सेनापति महादजी नायक पनसंबल की मृत्यु की सूचना सम्मिलित थी।[83] राजाराम ने तुरन्त उसके स्थान पर सन्ताजी घोरपड़े को अपना *सेनापति* नियुक्त किया।[84] किन्तु *पण्डित राव* मन्त्रिमण्डल-स्तरीय पद नहीं था,[85] और उसका इन दो विद्वानों द्वारा

अष्ट प्रधान में सम्मिलित किया जाना आश्चर्यनजक है।

पेशवा के पद पर नोलोपन्त मोरेश्वर की नियुक्ति के कारण प्रह्लाद नीराजी के लिये *प्रतिनिधि* के विशेष पद का सृजन किया गया। उसकी शम्भूजी के बाद मराठा राष्ट्र को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका थी, और जिंजी का प्रशासन वही देख रहा था। कुछ अन्य व्यक्तियों को भी सम्मानित किया गया। रामचन्द्र पन्त को *हुकूमत-पनाह* की उपाधि प्रदान की गयी, और उसे महाराष्ट्र में ही रहने दिया गया। परसोजी भोंसले को *सेना साहेब सूबा* की उपाधि प्रदान कर गोण्डवाना और विदर्भ क्षेत्र भेजा गया। सिधोजी निम्बालकर को *सर लश्कर* की उपाधि से सम्मानित किया गया। खण्डेराव दाभादे को *सेना धुरन्धर* की उपाधि देकर गुजरात और बागलान भेज दिया गया। केशव त्रिम्बक पिंगले के पुत्र तीमाजी, को जिंजी का सूबेदार नियुक्त किया गया।[86]

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकारी भी नियुक्त किये गये थे। *हुकूमत पनाह* रामचन्द्र पन्त बावड़ेकर के सहायक के रूप में एक बुद्धिमान ब्राह्मण कारकुन, परशुराम त्रिम्बक, को नियुक्त किया गया था। सिधोजी गूजर को *सरखैल* के पद पर नियुक्त किया गया और उसका सहायक कन्होजी आंग्रे को बनाया गया। उनका कार्य मराठा नौसेना, बन्दरगाह, तथा तट-रक्षा की व्यवस्था देखना था।[87]

महादजी नायक सेनापति की मृत्यु होने से सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव जैसे युवा एवं योग्य सैन्य अधिकारियों का महत्व बढ़ गया, और राजाराम द्वारा उन्हें भी सम्मानित किया गया। धनाजी जाधव को *जयसिंह राव* की उपाधि प्रदान की गयी।

कपशी के घोरपड़े परिवार के वरिष्ठतम् सदस्य के रूप में सन्ताजी को न केवल महादजी नायक पनसंबल के रिक्त पद पर *सेनापति* नियुक्त किया गया, अपितु उसे *ममुल्कत–मादार* की उपाधि भी प्रदान की गयी।[88] उसे *ज़री–पटका* (सुनहरा ध्वज) भी दिया गया, तथा साम्राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारियों के समान नौबत बजाने का अधिकार भी प्रदान किया गया।[89] सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव को महादजी नायक की मृत्यु के कारण महाराष्ट्र, इस निर्देश के साथ भेज दिया गया कि वे सैन्य बल एकत्र करें तथा मुग़लों को लूटें।[90] महाराष्ट्र में उनके तथा रामचन्द्र पन्त और शंकराजी के प्रयासों से अप्रैल–मई 1690 में मराठा वाई, प्रतापगढ़, तोरना, तथा रोहिड़ा[90a] तथा जुलाई 1690 में राजगढ़[90b] और विचित्रगढ़[90c] के दुर्ग मुग़लों से जीतने में सफल रहे।

जिंजी में राजाराम के साथियों का पहला कार्य मराठा लक्ष्य के लिये समर्थन जुटाना था। दिसम्बर 1689 में नीलोपन्त मोरेश्वर को इस दिशा में पहली कूटनीतिक सफलता तब मिली जब गोलकुण्डा के पतन के बाद से मुग़लों की सेवा में रत मोहम्मद सादिक, इस्माइल खाँ मक, येचप्पा नामक, तथा उनके 4,000 साथी मुग़लों को छोड़ कर चेनपत्तन (चेन्नई) में मराठों के साथ आ मिले।[91] जनवरी 1690 में लक्ष्मी नायक भी मुग़ल सेवा छोड़कर जिंजी में राजाराम के साथ मिल गया।[92] किन्तु कुछ समय बाद कर्णाटक में कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुयीं, जिनके कारण सन्ताजी घोरपड़े को महाराष्ट्र से वापस बुलाना पड़ा।[92a]

औरंगजेब को जब अनेक मुग़ल सरदारों के कर्णाटक में

मराठों से जा मिलने की सूचना प्राप्त हुयी तो वह सतर्क हो गया, और उसने अपने सेनापति, जुल्फिकार खाँ, को वहाँ जाने का आदेश दिया। जुल्फिकार खाँ नवम्बर 1689 के अनन्त में कोड़ेगाँव में सम्राट के दरबाद से चला और रायचूर, कर्नूल, नन्दियाल, कडापा, तथा गरमकोण्डा के मार्ग से होता हुआ जून 1690 के लगभग कर्णाटक पहुँचा। मार्ग में उसने मराठों के अनेक दुर्ग जीत लिये। वह अगस्त 1690 में काँची में था, तथा सितम्बर के प्रारम्भ में जिंजी के निकट आ गया था।[93] किन्तु *जेधे शकावली* से ऐसा आभास होता है कि वह 27 अगस्त को ही जिंजी पहुँच गया था।[94] राजाराम ने त्रिम्बक राव तथा येचप्पा नायक को जुल्फिकार खाँ का मार्ग बाधित करने हेतु पश्चिम की ओर भेजा,[95] तथा स्वयं घेराबन्दी के भय से जिंजी से और अधिक दक्षिण में चला गया।[96] कर्णाटक में मुग़लों की सैन्य उपस्थिति के कारण यह आशंका भी की जाने लगी कि राजाराम अंग्रेज जलपोत से समुद्र के मार्ग से भारत से भाग न जाये।[97]

जल्फिकार खाँ ने जिंजी का घेरा डाल दिया। किन्तु उसके पास भारी तोपों तथा गोला-बारूद का अभाव था। अंग्रेजों से उसे 200 मन बारूद तथा 300 गोले प्राप्त हुये।[98] 23 नवम्बर 1690 को नेमाजी शिन्दे, मनकोजी पण्ढरे, नागोजी माने, तथा उनके 2000 साथी मुग़लों की सेवा छोड़कर मराठों का साथ देने जिंजी पहुँच गये।[99] इससे साहस पाकर फरवरी 1691 में राजाराम जिंजी लौट आया। उसके साथ तंजावुर के राजा के 2000 सैनिक भी थे। तंजावुर का राजा मुग़लों के साथ संघर्ष में राजाराम की निरन्तर

धन तथा सैनिकों से सहायता कर रहा था।[100] अप्रैल 1691 तक जिंजी में मुग़ल सेना अत्यन्त बलशाली हो गयी थी, तथा यूरोपियन शक्तियों को यह आभास होने लगा था कि दुर्ग पर शीघ्र ही मुग़लों का अधिकार हो जायेगा। किन्तु वास्तव में अनेक मास व्यतीत होने के पश्चात् भी मुग़लों को आशा के अनुरूप सफलता नहीं मिली।

इसका एक कारण जहाँ मराठों का दृढ़ निश्चय तथा उनकी युद्ध शैली थी, वहीं दूसरा कारण जिंजी के दुर्ग की स्थिति थी। जिंजी एक दुर्ग न होकर छह दुर्गों का समूह है। भीमसेन इसका वर्णन करते हुये बताता है कि इनमें से चार-राजगढ़, कृष्णगिरि, चिननगढ़ तथा चमरटिकरी-एक-दूसरे से जुड़े थे। इस दुर्ग में जलाशयों तथा कूपों की अच्छी व्यवस्था थी, तथा मौसम भी अच्छा था।[101] राजगिरि (राजगढ़) का दुर्ग पश्चिम की ओर था, कृष्णगिरि उत्तर की ओर, तथा चन्द्रयान दुर्ग दक्षिण की ओर स्थित था। चमरटिकरी राजगिरी से लगभग आधा मील दक्षिण में था। जिंजी के दुर्ग-मण्डल में तीन द्वार थे-पूर्वी दीवार में मुख्य प्रवेश द्वार; उत्तरी दीवार में त्रिणोमाली द्वार, तथा पश्चिमी दीवार मे एक छोटा गुप्तद्वार जिसे शैतानदरी के नाम से जाना जाता था।[102] राजगिरी लगभग 800 फिट ऊँचा था, तथा इसका मार्ग दुर्गम था! ओर्म के अनुसार दस व्यक्ति यहाँ 10,000 सैनिकों का मार्ग रोक सकते थे।[103] जिंजी की इन्हीं विशेषताओं के कारण राजाराम के कर्णाटक प्रवास के लिये उसका चयन किया गया था।

मासिर-ए-आलमगीरी के अनुसार अप्रैल 1691 के बाद मुगलों को जिंजी में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस

समय तक मराठों का साहस पुनः बढ़ गया था, और उनके दल न केवल जुल्फिक़ार खाँ की सेना पर आक्रमण करने लगे थे, अपितु उस तक रसद की आपूर्ति भी बाधित करने लगे थे। साथ ही, अनेक दक्खिनी मनसबदार जुल्फ़िक़ार खां को छोड़कर मराठों से जा मिले थे।[104] तभी औरंगजेब को अपने गुप्तचरों से सूचना प्राप्त हुयी कि जुल्फिकार खाँ जिंजी की घेराबन्दी उठाने जा रहा है। इससे सतर्क होकर मुग़ल सम्राट ने जुल्फिक़ार खाँ के पिता, असद खाँ, को नन्दियाल में आदेश भेजा कि वह अपने पुत्र की सहायता करने जिंजी पहुंचे।[105] में शाहज़ादा काम बख्श को भी जिंजी कूच करने के आदेश दिये गये।[106] उनके जिंजी पहुँचने से पूर्व जुल्फ़िक़ार खाँ जमीदारों से लगान वसूल करने जिंजी छोड़कर दक्षिण कर्णाटक चला गया था। वर्ष 1691 के अन्त तक वह कुड्डलूर तथा तंजावुर होता हुआ त्रिणोमाली पर अधिकार करने में सफल हो गया था।[107]

16 दिसम्बर 1691 को काम बख्श तथा असद खाँ जिंजी पहूँच गये। 6 जनवरी 1692 को जुल्फ़िक़ार खाँ, सरफराज़ खाँ, तथा सैय्यद लश्कर खाँ भी वहाँ पहुँच गये।[108] मुग़लों की शक्ति बढ़ जाने के कारण इस्माइल खाँ मक पुनः मुग़ल सेवा में सम्मिलित हो गया। किन्तु येचप्पा नायक मराठों के साथ बना रहा।[109] काम बख्श के साथ आया कक्कड़ खाँ जिंजी का फ़ौजदार नियुक्त किया गया।[110] जुल्फ़िक़ार खाँ ने जिंजी के दुर्ग के पूर्वी द्वार के समक्ष जिंजी नदी की एक शाखा के निकट स्थित अली मदद नामक पहाड़ी पर अपना शिविर लगाया।[111] असद खाँ तथा काम बख्श का शिविर उससे लगभग तीन मील दूर, उत्तरी द्वार के

निकट, कृष्णगिरि से सिंहवरम् पर्वत जाने वाले मार्ग पर स्थित था। इस्माइल खाँ को जिंजी के दुर्ग से उत्तर-पश्चिम में कर्णाटक दुर्ग की दिशा में तैनात किया गया। किन्तु शैतानदरी को बाधित करना सम्भव नहीं हुआ, और मराठे उस मार्ग का निरन्तर आने-जाने और रसद, आदि, पहुँचाने के लिये प्रयोग कर रहे थे। कक्कड़ खाँ को दुर्ग में रसद की आपूर्ति बाधित करने का काम सौंपा गया, किन्तु वह इसे प्रभावी ढंग से नहीं कर पाया।[112]

भीमसेन के अनुसार मुग़ल शिविर में सैनिकों की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी थी। अतिवर्षा तथा खाद्य सामग्री की कमी के कारण सैनिक त्रस्त थे। उनका खाई से बाहर निकलना कठिन हो गया था।[113] इसके अतिरिक्त कुछ अन्य क्षेत्रों में भी मराठों को मुग़लों के विरुद्ध सफलता मिली। जनवरी 1692 में कृष्णाजी अनन्त सभासद के नेतृत्व में मराठों ने मुग़लों से वेल्लूर जीत लिया।[114] मार्च 1692 में मराठों ने पाण्डुचेरी के निकट मुग़लों पर आक्रमण कर दिया।[115] जिंजी में मराठों और मुग़लों के बीच झड़पे जारी रहीं, किन्तु दुर्ग के भीतर रसद, आदि निर्बाध रूप से पहुँचता रहा।[116] इस आधार पर यह संदेह व्यक्त किया गया है कि राजाराम और ज़ल्फिकार खां के मध्य कोई गुप्त समझौता हो गया था।[117] जुलाई 1692 में कर्णाटक के मुग़ल फ़ौज़दार, कासिम खाँ, के जिंजी पहुंचने पर भी मराठे हतोत्साह नहीं हुये।[118] सितम्बर 1692 में उन्होंने मुग़ल सेना पर सफल आक्रमण कर 3,000 सवार के ओहदे वाले एक मुग़ल सरदार को बन्दी बना लिया, और बहुत सा सामान छीन लिया।[119] अक्टूबर 1692 में मुग़ल कुछ अधिक सक्रिय

हुये, और दुर्ग की दीवार तक पहुँच गये। मराठों ने उनका वीरतापूर्वक सामना किया। 21 नवम्बर 1692 की रात मराठा सैनिकों की एक टुकड़ी हामिद खाँ की घेरा-पंक्ति तक पहुँच गयी, और हामिद खां की सहायता हेतु जमशीद खाँ तथा जुल्फ़क़ार खाँ को वहाँ जाना पड़ा।[120] किन्तु मुग़लों की घेराबन्दी कठोर होती जा रही थी, और मराठों पर उनके आक्रमण बढ़ते जा रहे थे। इसकी सूचना पाकर शंकराजी पन्त ने 13 दिसम्बर 1692 को धनाजी जाधव, तथा 14 दिसम्बर 1692 को सन्ताजी घोरपड़े को जिंजी भेज दिया।[121] मराठी स्रोतों से ज्ञात होता है कि सन्ताजी घोरपड़े के साथ 15,000 अश्वारोही सैनिक थे।[122] ख़ाफ़ी खां सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव द्वारा मुग़लों पर किये जाने वाले क्रूर आक्रमणों की चर्चा करते हुऐ उनके अधीन अश्वारोही सैनिकों की संख्या 15,000 से 20,000 के मध्य बताता है, और उनके नेतृत्व का श्रेय सन्ताजी घोरपड़े को देता है।[123] मुग़ल सेना सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव के कार्यों से परिचित थी और उनके कर्णाटक आगमन की सूचना से मुगल सैनिकों में भय व्याप्त हो गया।[124]

कर्णाटक आने से पूर्व सन्ताजी घोरपड़े ने महाराष्ट्र में मुग़लों के विरुद्ध सफलताएँ प्राप्त की थी। 1689 में बीजापुरी सेनापति शरजा खाँ, जो सैय्यद इलियास खाँ का पुत्र था, औरंगजेब की सेवा में आ गया, और मुग़ल सम्राट ने उसे *रूस्तम खाँ* की उपाधि प्रदान की। मई 1690 में वह अपने नये स्वामी के लिये सतारा के दुर्ग पर अधिकार करने के लक्ष्य से इस क्षेत्र में घूम रहा था। मराठा सरदारों, सन्ताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव, रामचन्द्र तथा शंकराजी

ने सम्मिलित रूप से उस पर आक्रमण कर दिया।[125] *रूस्तम खाँ* ने अपने पुत्र, ग़ालिब, को उनका सामना करने के लिये भेजा, किन्तु उसके साथ सैनिको की संख्या ही कम नहीं थी, अपितु उनके हथियार भी घटिया किस्म के थे।[126] मुग़ल सेना की अग्रिम पंक्ति में तैनात हाथियों को कर्णाटकी पैदल निशानेबाज़ों ने घायल कर दिया। ये निशानेबाज सम्भवतः बेरद थे, जिन्हें मराठों ने नियुक्त किया था। घायल हाथियों में भगदड़ मच गयी, और उन्होंने अपने पक्ष के सैनिकों को कुचल डाला।

रूस्तम खां ने मौके पर पहुँच कर स्थिति संभालने का प्रयास किया। किन्तु तब तक मराठों ने हाथियों से मुग़ल सेना पर आक्रमण कर दिया। इससे शत्रु सेना के अश्वारोही सैनिकों में भगदड़ मच गयी। किन्तु, जब भागते हुये मुग़ल सैनिकों ने देखा कि रूस्तम खाँ मराठों के विरूद्ध डटा हुआ है, तो उनका साहस पुनः लौटा, वे धीरे-धीरे फिर युद्ध को तत्पर हुये, और उन्होंने सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के नेतृत्व में लड़ रहे मराठा सैनिकों पर प्रति-आक्रमण कर दिया। इन दोनों मराठा सरदारों ने मराठों की सामान्य रणनीति का अनुसरण करते हुये मुग़ल सैनिकों को रास्ता देने का प्रदर्शन किया, और रूस्तम खां ने जोश में केवल कुछ ही सैनिकों के साथ अपना हाथी आगे बढ़ा दिया।[127] किन्तु इसी समय उसके वस्त्रों में आग लग गयी। इससे मुग़ल सैनिक पुनः भयभीत हो गये। तभी बेरद बन्दूकचियों ने मुग़लों के चन्दावल और साज सामान पर आक्रमण कर उसे लूटना आरम्भ कर दिया। इससे मुग़ल सेना में अव्यवस्था व्याप्त हो गयी। इन दो

कारणों से मुग़ल सैनिक रणक्षेत्र छोड़कर भाग खड़े हुये।

युद्ध में अनेक घाव लगने के कारण रूस्तम खाँ अपने हाथी के हौदे से नीचे गिर गया। बाबाजी मोरे ने इसे बन्दी बना लिया। यहाँ बाबाजी मोरे की पहचान मानाजी मोरे से की गयी है। रूस्तम खाँ का पुत्र, ग़ालिब, भी घायल हो गया, और उसे बन्दी बना लिया गया।[127a] इस बीच जोश से परिपूर्ण मराठा सैनिकों ने मुग़ल सेना के दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया। इस पार्श्व का सेनानायक घायल हो गया था, और इस कारण उसे अपने हाथी से नीचे उतरने के लिये बाध्य होना पड़ा। इस युद्ध में मृत मुग़ल सैनिकों की संख्या लगभग 1,500 हो गयी।[128]

इस समय, जब मुग़ल सैनिक युद्ध क्षेत्र से पलायन कर रहे थे, सतारा के दुर्ग में तैनात मराठा सरदार 5,000 सैनिकों के साथ दुर्ग से बाहर निकला, और अव्यवस्था का लाभ उठाकर वह रूस्तम खां की माता, पत्नी, तथा कुछ सन्तानों को बन्दी बनाकर दुर्ग में वापस लौट गया। इस विजय के परिणामस्वरूप मराठों ने न केवल मुग़ल सेनापति तथा उसके परिवार को बन्दी बनाने में सफलता प्राप्त की, अपितु मुग़ल सेना के 4,000 अश्वों, आठ हाथियों तथा रूस्तम खां के पूर्ण शिविर पर भी अधिकार कर लिया।[129]

16 दिन बाद रूस्तम खां ने अपनी मुक्ति के लिये एक लाख रुपये फ़िरौती देने का वचन दिया[129a] तथा अपनी माता और ज्येष्ठ पुत्र को मराठों के पास ज़मानत के रूप में छोड़ा। उसकी दो पत्नियाँ तथा दो पुत्र सतारा के दुर्ग के मराठा नायक द्वारा मुग़ल शिविर की लूट के दौरान फटे वस्त्र धारण कर और स्वयं को रूस्तम

खाँ का सेवक बताकर भागने में सफल रहे थे। अपने कुछ साथियों के मार्ग-दर्शन में उन्होंने पहाड़ी के एक कोने में छिप कर एक दिन व्यतीत किया था, और फिर भिखारियों का वेश बनाकर वे करारगाँव[130] में स्थित मुग़ल थाने पहुँचे थे।[131] रूस्तम खाँ की यह पराजय 11 मई 1690 की घटना है।[132]

रूस्तम खाँ की सहायता के लिये औरंगजेब ने फ़िरोज जंग को सैनिकों के साथ भेजा था। किन्तु मार्ग में रूपाजी भोंसले ने मुग़ल सेना पर आक्रमक कर दिया जिसमें 50 सैनिक हक हुये, तथा साज-सामान पर मराठों का अधिकार हो गया।[133] इससे चिन्तित होकर औरंगजेब ने लुत्फुल्ला खां को सतारा से 25 मील पूर्व में स्थित खटाव का थानेदार नियुक्त कर 30 मई 1690 को वहां जाने का आदेश दिया।[134] मुग़ल सम्राट की ओर से उसे निर्देश दिये गये थे कि वह खराब के आस-पास मुग़ल सैनिक चौकियाँ स्थापित करे और उत्तरी सतारा पर अधिकार की तैयारियाँ पूरी करे। लुत्फुल्ला खाँ 6 जुलाई 1690 को खटाव पहुँचा। उसने अपने श्रांत सैनिकों को कुछ समय विश्राम करने की अनुमति दी। तेज़ वर्षा के कारण नियमित शिविर स्थापित करना कठिन हो गया था। सेना की सुरक्षा के लिये खाई खोदना भी सम्भव नहीं था। *इंशा-ए-मधुरम्* में बताया गया है कि रात्रि में सन्ताजी घोरपड़े ने 10,000 अश्वारोही तथा असंख्य पैदल सैनिकों के साथ सोते हुये मुग़ल सैनिकों पर अचानक आक्रमण कर दिया।[135] लम्बी यात्रा करने से थके मुग़ल सैनिकों को जागने से समय लगा, तथा कवच धारण कर अश्वारूढ़ होने में कठिनाई हुयी।

लुत्फुल्ला खाँ का पुत्र, मुहम्मद खलील मराठों को रोकने के लिये अपने पिता के अंगरक्षको तथा सशस्त्र सेवकों के साथ पैदल ही उनसे संघर्ष करने चला गया, और इस प्रकार उसने मुग़ल शिविर की लूट से रक्षा की। इसी बीच कुछ सैनिक भी आकर उसके साथ सम्मिलित हो गये। सन्ताजी घोरपड़े ने लगभग तीन घण्टे तक भीषण युद्ध किया, और तत्पश्चात् बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए वह खटाव से 8 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित वर्धनगढ़ चला गया, जबकि उसके सैनिक अपने-अपने निवास-स्थान चले गये। इस युद्ध में लगभग 500 मराठा सैनिक मारे गये, तथा 100 अन्य को बन्दी बनाने के पश्चात् उनका वध कर दिया गया। इसके अतिरिक्त मराठों के 300 अश्व, 400 भाले, 200 बन्दूके तथा कुछ नगाड़े और पताकाएं भी मुगलों ने छीन लीं। मुग़लों के 67 सैनिक मारे गये, तथा 170 घायल हुये। इस आक्रमण से मराठों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ, और मुग़ल थानेदार, लुत्फुल्ला खाँ, ने उसे विफल करने के उपरान्त उस क्षेत्र में मुग़ल सैनिक चौकियाँ स्थापित करने का कार्य आरम्भ कर दिया।[136]

यद्यपि इस संघर्ष में मराठा सेनापति सफल नहीं रहा, तथापि उसने शीघ्र ही अपनी शक्ति को संगठित किया, और पूर्वी सतारा क्षेत्र में सक्रिय हो गया। औरंगजेब ने लुत्फुल्ला खाँ को मराठों को वहां से खदेड़ने का आदेश दिया। मुग़ल थानेदार शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया, और रात्रि में उसने म्हासवड से 12 मील पूर्व, तथा अकलुज से 15 मील दक्षिण में स्थित पिलिव नामक गांव में पड़ाव डाला।

अगले दिन सूर्योदय के समय, मराठा सेना मुग़ल पड़ाव के निकट पहुंच गयी। इस सेना में 20,000 अश्वारोही तथा बड़ी संख्या में पैदल सैनिक सम्मिलित बताये जाते हैं। इनका नेतृत्व सन्ताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव, डफले, मोरे तथा अन्य लोकप्रिय मराठा नायक कर रहे थे।

लुत्फुल्ला खां ने अपनी सेना को मराठा आक्रमण से पहले कूच करने का आदेश दिया। मराठा सैनिकों ने कूच करती हुयी इस छोटी मुग़ल टुकड़ी को चारों ओर से घेर लिया और लुत्फुल्ला खां को इस बात के लिये बाध्य किया कि वह अपने साज-सामान को बीच में रखकर चारों ओर से मराठा सैनिकों का सामना करे। मुग़लों को सबसे अधिक हानि डफले द्वारा लाये गये 10,000 कर्णाटकी पैदल बन्दूकचियों से पहुंची। यह युद्ध सूर्यास्त तक चलता रहा। इस समय तक मराठा सैनिक मुग़लों पर अनेक बार आक्रमण कर चुके थे, किन्तु प्रत्येक बार पीछे धकेल दिये गये थे। अन्ततः सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव ने 5,000 चुने हुये अश्वारोही सैनिकों के साथ स्वयं लुत्फुल्ला खाँ की टुकड़ी पर आक्रमण कर दिया, किन्तु असफल रहे। सूर्यास्त होने पर मराठा सेना अपने लगभग 1,000 मृत सैनिकों के शव युद्ध क्षेत्र में छोड़कर पीछे हट गयी। मुग़लों की ओर लगभग 200 सैनिक मारे गये, तथा 300 से अधिक घायल हुये।[137]

मुग़ल सम्राट को भेजी गयी जिस विज्ञप्ति से इस युद्ध का विवरण प्राप्त होता है, वह तिथिविहीन है। सरकार का सुझाव है कि लुत्फुल्ला खाँ की अकलुज की दूसरी थानेदारी के समय (16

अक्टूबर से 15 दिसम्बर 1692) सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव कनारा क्षेत्र में थे, और वे इस युद्ध में उस समय भाग नहीं ले सकते थे। अतः यह युद्ध 1690 में लुत्फुल्ला खाँ की पहली थानेदारी के समय रखा जाना चाहिए।[138] उनका यह भी सुझाव है कि यदि लुत्फुल्ला खाँ द्वारा औरंगजेब को भेजी गयी विज्ञप्तियों में सत्यता है, तो इससे यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि मराठों के पुनरुद्धार के इस प्रयास में कुछ समय के लिये गतिरोध उत्पन्न हो गया, और सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव को सुरक्षित स्थान पर छिपने और लगभग छह मास (अक्टूबर 1690 से अप्रैल 1691) तक अपेक्षाकृत निष्क्रिय रहने के लिये विवश होना पड़ा। इस अल्प अवधि में महाराष्ट्र पर मुग़लों का अधिकार बना रहा।[139]

सतारा क्षेत्र में मराठा असफलता के उपरान्त भी शंकराजी पन्त ने इस क्षेत्र से राजस्व अर्जित किया। उसने खटाव तथा उसके आस-पास के देशमुखों और देशपाण्डे को चेतावनी दी कि वे मराठों के अतिरिक्त किसी को राजस्व न चुकायें। इसके अतिरिक्त उसने मराठा नायकों को मुग़लों के अधिकार में गये महाराष्ट्र के क्षेत्रों पर मराठा अधिकार पुनः स्थापित करने के आदेश भी दिये।[140] इन गतिविधियों में सन्ताजी घोरपड़े भी संलग्न दिखाई देता है।

जुलाई 1691 के तीसरे सप्ताह में कणद खोरे के देशमुख, कान्होजी झुझारराव, ने मुग़लों की एक बड़ी सेना को पराजित कर प्रचण्डगढ़ पर अधिकार कर लिया, और उसे राजगढ़ तथा सिंहगढ़ पर अधिकार करने का उत्तरदायित्व सौपा गया।[141] सितम्बर 1691 के प्रथम सप्ताह में मालोजी ने 1,000 अश्वारोही सैनिकों के साथ

परनेर पर आक्रमण कर उसे लूट लिया।[142] एक अन्य मराठा सैन्य टुकड़ी बहादुरगढ़ तथा अहमदनगर के निकट पहुँच गयी, जिसकी उपस्थिति के कारण उस क्षेत्र के मुग़ल अधिकारियों को सतर्क रहने के आदेश दिये गये।[143] सितम्बर 1691 के मध्य के लगभग मराठों ने खटाव के निकट मोहम्मद आज़म की सेना के साथ संघर्ष किया।[144] सितम्बर 1691 के तीसरे सप्ताह में मराठों के साथ मुग़ल सेनापति अली-उल्-रुत्ब खाँ का कोड़ेगांव के निकट संघर्ष हुआ,[145] और अगले दिन एक अन्य मराठा बल ने पन्हाला के शाहदुर्ग पर आक्रमण कर उसकी रक्षा कर रहे मुग़ल अधिकारी का वध कर दिया।[146]

24 सितम्बर 1691 को सन्ताजी घोरपड़े ने अहमदनगर में नंदाज के निकट एक गाँव पर आक्रमण कर दिया। उसके साथ 3,000 अश्वारोही तथा 2,000 पैदल सैनिक थे। उस क्षेत्र के मुग़ल कोतवाल ने उसका सामना करने का प्रयास किया, किन्तु असफल रहा। उस गाँव के गोपाल गुमाश्ता ने मराठों को गुप्त सूचनायें उपलब्ध करायी थी। इस मराठा सफलता के परिणामस्वरूप ग्रामवासियों को 5,500 रुपये मराठों को *चौथ* के रूप में चुकाने पड़े। सन्ताजी घोरपड़े अपने साथ किले के सभी ऊँट भी ले गया।[147]

सितम्बर-अक्टूबर 1691 में राजाराम ने रोहिड़खोरे के सरजाराव जेधे देशमुख को मावल, पुरन्धर तथा जुन्नार क्षेत्र पर मराठा अधिकार पुनः स्थापित करने का उत्तरदायित्व सौंपा, और सन्ताजी घोरपड़े को आदेश दिया कि इस कार्य को पूर्ण करने में वह

जेधे देशमुख की हर संभव सहायता करे।[148] 5 अक्टूबर 1691 को मुहम्मद आज़म मराठों का दमन करने के लिये बहादुरगढ़ की ओर बढ़ा। उसे जब यह सूचना प्राप्त हुयी कि सन्ताजी घोरपड़े सतारा के निकट उपस्थित है, तो वह उस क्षेत्र की ओर त्वरित गति से बढ़ा।[149] 12 अक्टूबर 1691 को एक मराठा बल ने चौखण्डी के दुर्ग को घेर और वहाँ के थानेदार, सैयद मोहम्मद, को बन्दी बना लिया।[150] पारसगढ़ के मुग़ल किलेदार, अफरासियाब को भी मराठों ने बन्दी बना लिया।[151] अक्टूबर 1691 के मध्य के लगभग परेण्डा के निकट केशव के नेतृत्व में मराठा सेना का संघर्ष हमीद-उद्-दीन खां के साथ हुआ।[152] 16 दिसम्बर 1691 को 3,000 मराठा सैनिकों ने खानाज़ाद खाँ और दाउद खाँ की सेना पर आक्रमण कर दिया, और आगे बढ़कर रूहुल्ला खाँ के सैनिकों पर भी धावा बोला। इस संघर्ष में दोनों ओर के सैनिक बड़ी संख्या में मारे गये।[153] इस प्रकार, मई 1691 से मराठा नायक महाराष्ट्र में पुनः सक्रिय हो गये, और एक विज्ञप्ति में कहा गया है कि मुग़ल सम्राट को सभी ओर से निरन्तर मराठों के साथ संघर्ष की सूचनाएँ प्राप्त हो रही थी, और वह इसका उचित उपचार खोजने में सफल नहीं हो पा रहा था।[154]

फरवरी 1692 के बाद किसी समय रामचन्द्रपन्त ने परशुराम पन्त के नेतृत्व में सेना भेजकर पन्हाला के दुर्ग पर मराठा अधिकार पुनः स्थापित कर लिया था।[155] इससे प्रोत्साहन पाकर मराठों ने निरन्तर अकलुज पर आक्रमण करना आरभ कर दिया था। यह चौकी ठीक उस स्थान पर स्थित थी, जहाँ अहमदनगर से बीजापुर

जाने वाला दक्षिण भारत का मुख्य मार्ग, पूना से हैदराबाद जाने वाले एक अन्य महत्वपूर्ण मार्ग से मिलता था। औरंगजेब ने 8 मई 1692 को शाहजादा मुइजुद्दीन को इस आदेश के साथ अकलुज भेजा कि वह उस क्षेत्र को मराठों के आतंक से मुक्त कर दे। सन्ताजी घोरपड़े ने सतारा के उत्तर-पूर्व में स्थित महादेव पर्वत को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बना रखा था, जहाँ से वह पूर्व की ओर पड़ने वाले बीजापुर के मैदानी क्षेत्रों पर निरन्तर त्वरित आक्रमण करता रहता था। जब मुइजुद्दीन सन्ताजी घोरपड़े के विरुद्ध अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हो सका, तब लुत्फुल्ला खाँ को 16 अक्टूबर 1692 के आस-पास अकलुज का थानेदार बना कर भेजा गया।[156]

उधर पश्चिमी कर्णाटक में मराठा सैनिकों के दल बेलगाम, धारवाड़ और उसके आस-पास के क्षेत्रों पर धावे बोलकर मुग़लों को त्रस्त कर रहे थे। 8 अक्टूबर 1692 को सन्ताजी घोरपड़े ने धनाजी जाधव के साथ मिलकर 7,000 सैनिकों का नेतृत्व करते हुये बेलगाम और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में स्थित कुछ दुर्गों पर आक्रमण कर दिया, और उन्हें अपने अधिकार में ले लिया। इसके पश्चात् उसने बेलगाम नगर को भी घेर लिया और अपनी सेना के अश्वों को खेतों में फसल चरने के लिये छोड़ दिया। 27 अक्टूबर 1692 से पूर्व इन दोनों मराठा नायकों ने धारवाड़ पर आक्रमण कर दिया, और इसके पश्चात् वे धारवाड़ से 30 मील उत्तर-पूर्व में स्थित नरगुण्ड वापस पहुँच गये।

तत्कालीन *अखबारात* में कहा गया है कि मराठों से निपटने

के लिये औरंगजेब ने हमीद-उद्-दीन खाँ को बेलगाम और मतलब खाँ को धारवाड़ भेजा। साथ ही बीजापुरी कर्णाटक अर्थात् पश्चिमोत्तर कर्णाटक के फौज़दार, क़ासिमखाँ, को मुग़ल सम्राट द्वारा यह आदेश दिया गया कि वह बंकापुर और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों की सुरक्षा का व्यापक प्रबन्ध करे।[157] कुछ समय बाद मतलब खाँ ने धारवाड़ के निकट मराठों पर महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की, और एक मराठा नायक (जिसका नाम स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है) के एक पुत्र और एक पुत्री को उसने बन्दी बना लिया।[158]

नवम्बर 1692 के आरम्भिक दिनों में मुग़ल सेनाओं ने पन्हाला को पुनः घेर लिया। किन्तु दिसम्बर 1692 के प्रारम्भिक दिनों में सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव को शीघ्रतापूर्वक जिंजी के किले की मुग़ल घेराबन्दी हटाने में राजाराम की सहायता करने के लिये भेजा गया। इन दोनों मराठा नायकों के कर्णाटक की ओर प्रस्थान करने से कुछ समय के लिये महाराष्ट में मराठों तथा मुग़लों के मध्य संघर्ष अपेक्षाकृत शान्त हो गया।[159]

महाराष्ट्र से जिंजी पलायन करते समय राजाराम ने प्रशासन के सभी अधिकार रामचन्द्र पन्त को सौंप दिये थे। दिसम्बर 1692 के आरम्भिक दिनों में रामचन्द्र पन्त ने 30,000 से अधिक अश्वारोहियों की एक सेना तैयार की, और सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव को यह आदेश दिया कि वे इस सेना के साथ पूर्वी कर्णाटक की ओर कूच करें और जिंजी के दुर्ग की घेराबन्दी उठाने में राजाराम की सहायता करें।[160]

ये दोनों मराठा सेनापति अपनी सेना लेकर सबसे पहले

काँची पहुँचे। मराठा सैनिकों ने वहाँ के निवासियों को इतना भयाक्रान्त किया कि वे अपना नगर छोड़कर भाग गये, और उनमें से अनेक ने चेन्नई में शरण ली। इसके बाद सन्ताजी घोरपड़े अपनी सेना के साथ कावेरीपाक की सीमा पर पहुँच गया। इस सेना की शक्ति और सैनिकों की संख्या से अनभिज्ञ काँची का मुग़ल फौजदार, अली मार्दान खाँ, मराठों से संघर्ष करने के लिये नगर से बाहर निकल आया। मार्तिन ने इस युद्ध में सन्ताजी घोरपड़े की रणनीति का विशद विवरण दिया है।[161] कुछ सूचना *मद्रास डायरी,*[162] *जेधे शकावली* और कुछ अन्य स्रोतों[163] से भी प्राप्त होती हैं।

इन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि युद्ध के दौरान अली मर्दान खाँ के बहेलिया बन्दूकची उसका साथ छोड़कर मराठों की ओर आ गये। जब मुग़ल फौजदार ने अनुभव किया कि मराठों का सामना कर सकना सम्भव नहीं है, तो उसने नगर में वापस लौटने का प्रयास किया। किन्तु सन्ताजी घोरपड़े ने उसे चारों ओर से घेर लिया और उसका वापसी का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। अली मर्दान खाँ को बन्दी बना लिया गया।[164] मार्तिन के अनुसार मराठों ने उसके पाँच हाथियों और उत्तम नस्ल के 300 अश्वों पर कब्जा कर लिया,[165] किन्तु कुछ अन्य स्रोतों में हाथियों की संख्या छह और अश्वों की संख्या 1,500 बतायी गयी है।[166] बन्दी मुग़ल फौज़दार को जिंजी ले जाया गया, और कुछ महीने बाद उसके बहनोई अली क़ादिर, द्वारा एक लाख *हुण* की भारी फ़िरौती चुकाने पर उसे मुक्त किया गया।[167] किन्तु कुछ स्रोतों में फिरौती की रकम दो लाख रुपये बतायी गयी है।[168] बन्दी बनाये गये कुछ अन्य मुग़ल सरदारों

ने भी फिरौती चुका कर मराठों से मुक्ति प्राप्त की।[169]

पराजित मुग़ल सेना के अनेक अधिकारी भाग कर चेन्नई पहुँचे, जहाँ उनके साथ अंग्रेजों द्वारा उचित व्यवहार किया गया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यय पर उनके खाने-पीने, आदि की व्यवस्था की गयी।[170] विजयी मराठों ने आगे बढ़कर काँची नगर में प्रवेश किया और भारी लूटपाट की।

मराठा सेना जब जिंजी के निकट पहुँची तो उसकी संख्या देखकर जुल्फिक़ार खाँ ने पीछा हटना उचित समझा। सैयद लश्कर खां और कक्कड़ खां उसके साथ पीछे हट गये। किन्तु दुर्ग के पश्चिमी द्वार पर तैनात मुग़ल सेनापति, इस्माइल खाँ मक को यह आदेश देर से प्राप्त हुआ। धनाजी जाधव ने 7,000 से 8,000 अश्वारोही सैनिकों के साथ उस पर आक्रमण कर दिया। इस्माइल खाँ ने उसका सामना करने का प्रयास किया, किन्तु घायल होने पर बन्दी बना लिया गया।[171] मराठों ने उससे दो हाथी और 500 अश्व छीन लिये।[172] *मासिर-ए-आलमगिरी* में इस्माइल खाँ मक को पराजित कर बन्दी बनाने का श्रेय सन्ताजी घोरपड़े को दिया गया है।[173] किन्तु फ्रॉस्वा मार्तिन,[174] *शिव चरित्र साहित्य,*[175] तथा *जेधे शकावली*[176] में यह स्पष्ट रूप से धनाजी जाधव की उपलब्धि बतायी गयी है। मासिर-ए-आलमगिरी की सूचना त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती है।[177] इस घटना की तिथि 9 जनवरी 1693 बतायी गयी है।[177a]

अली मर्दान खाँ के ऊपर अपनी विजय से प्रोत्साहित होकर सन्ताजी घोरपड़े जिंजी पहुंचा, और जो मुग़ल सेना जुल्फ़िकार खाँ के नेतृत्व में जिंजी के दुर्ग को घेरे हुयी थी, वह स्वयं मराठों से

घिर गयी। मुग़ल सेना में कुछ आन्तरिक कठिनाइयाँ भी विद्यमान थी। शाहजादा काम बख्श मराठों के साथ मिलकर ज़ुल्फ़िकार खाँ के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहा था, और यद्यपि उसे असद खाँ और ज़ुल्फ़िकार खाँ ने बन्दी बना लिया था, तथापि उसकी सेना ज़ुल्फ़िकार खाँ के साथ सहयोग नहीं कर रही थी। जब सन्ताजी घोरपड़े ने 20,000 से अधिक की सेना के साथ घेरा डाले हुए मुग़लों पर प्रतिदिन आक्रमण करना आरम्भ किया, तो काम बख्श के सैनिकों ने युद्ध में भाग लेने से इंकार कर दिया। भीमसेन ने मुग़ल सेना की कठिनाइयों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।[178] उसके विवरण के अनुसार मराठा सेना में 20,000 से अधिक सैनिक थे, जबकि मुग़ल सेना बहुत छोटी थी और उसमें से कई सैनिक काम बख्श पर निगरानी रखने और शिविर की रक्षा करने के लिये नियुक्त करने पड़े थे। काम बख्श को सैन्य टुकड़ी मुग़ल सेनापति का सहयोग नहीं कर रही थी, और युद्ध में भाग नहीं ले रही थी। वह अपने शिविर से बाहर ही नहीं निकल रही थी। दो हज़ारी मनसबदार, मानसिंह राठौर, और अनेक मुग़ल अधिकारी अस्वस्थता का बहाना कर के अपने शिविरों में छिपे रहे। मराठों से संघर्ष करने की पूरी जिम्मेदारी ज़ुल्फ़िक़ार खाँ तथा राव दलपत, सरफराज खाँ दक्खिनी, फतेह उल्ला खाँ तूरानी, कान्होजी मराठा और कुछ मनसबदारों पर पड़ी जिनके पास मात्र 2,000 अश्वारोही सैनिक थे। *मासिर-ए-आलमगीरी* की सूचना है कि युद्ध लगभग रोजाना होता था, और मुग़ल सेना निरन्तर मराठा आक्रमणों को विफल करने में लगी रहती थी।[179]

मुग़ल सेना मराठा सैनिकों से चारों ओर से घिरी हुयी थी। इस कारण उसके पास खाद्य सामग्री तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का अत्यधिक अभाव हो गया था। जुल्फ़िकार खाँ खाद्य सामग्री जुटाने जिंजी से 24 मील उत्तर-पूर्व में स्थित वाण्डीवाश की ओर गया, और अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ रात्रि में वहाँ पहुँचा। अन्धकार का लाभ उठाकर उसके तूरानी सैनिकों ने बंजारा गल्ला-व्यापारियों पर धावा बोल दिया, और जितना अनाज वे उठाकर ले जा सकते थे, लूट कर चले गये। मुग़ल सेना में कोई अनुशासन नहीं रह गया। प्रातःकाल जुल्फ़िकार खाँ ने वह अनाज भी एकत्रित करवा लिया, जो लुटने से बच गया था, और 5 जनवरी 1693 को वह वापस जिंजी की ओर चल पड़ा।[180]

वाण्डीवाश से 10 मील दक्षिण में देसूर नामक स्थान पहुँचने पर सन्ताजी घोरपड़े ने 20,000 मराठा सैनिकों के साथ उसका मार्ग अवरुद्ध कर लिया। मुग़लों को अपना मार्ग साफ़ करने के लिये कठिन संघर्ष करना पड़ा, और रात में उन्होंने देसूर के दुर्ग में पहुँचकर शरण ली। वहाँ उन्होंने शिविर लगाकर एक अथवा दो दिन विश्राम किया।

जब मुग़लों ने पुनः जिंजी की ओर कूच किया तो मराठों ने पूरी शक्ति के साथ फिर से आक्रमण आरम्भ कर दिया। भीमसेन का कथन है कि मराठों ने इतनी अधिक बन्दूकों से गोलियाँ चलानी आरम्भ कर दीं, कि मुग़ल सैनिकों और बंजारों के लिये अपनी रक्षा करना सम्भव नहीं रहा। मराठों ने विशेष रूप से निशाना

साध कर उन हाथियों पर गोलियाँ चलायीं जिन पर मुग़ल सेनानायक सवार थे। ऐसे अनेक हाथी गोली लगने से घायल भी हुये। मराठों की गोली-बारी की चिन्ता न करते हुये राव दलपत और उसके बन्देला सैनिकों ने साहस के साथ मार्ग बनाने का प्रयास किया। किन्तु यातायात के पशु और तोपें धान के खेतों की गीली मिट्टी में फँस गये। गोला-बारूद की इतनी कमी पड़ गयी कि मुग़ल तोपची और बन्दूकची युद्ध सामग्री की कमी के कारण उचित भूमिका नहीं निभा सके।[181]

किन्तु उसी समय सरफ़राज खाँ हरावल के साथ वहाँ पहुँच गया, और उसने मराठा टुकड़ी को युद्ध में संलग्न कर लिया। मराठों की शक्ति एवं ध्यान बँट जाने के कारण राव दलपत उन्हें लगभग आधा मील पीछे धकेलने में सफल हुआ। इस क्षणिक राहत का उपयोग करके मुग़लों ने अपना साज-सामान और तोपें गीली मिट्टी से निकाल लीं। राव दलपत ने मुग़ल सेना को जिंजी की ओर भेज दिया, और स्वयं उसकी सुरक्षा करने के लिये उसके पीछे-पीछे चला। कुछ समय बाद मराठों ने लौटना उचित समझा।[182]

जुल्फ़िक़ार खाँ अपने साथ इतनी खाद्य सामग्री नहीं ला सका था कि मुग़ल सेना अनिश्चित काल तक घेरा डाले रह सके; मराठा सैनिक प्रतिदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक मुग़ल शिविर के चारों ओर एकत्रित होते रहते थे, और अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते रहते थे[183] मुग़ल वज़ीर असद खाँ ने, जो जिंजी की घेराबन्दी का सर्वोच्च अधिकारी था, राजाराम के पास यह सन्देश भेजा कि यदि वह मुग़ल सेना को सुरक्षित वाण्डीवाश जाने की अनुमति देगा तो

उसे इसके बदले में मुग़लों द्वारा भारी धनराशि चुकायी जायेगी। राजाराम के कुछ ब्राह्मण मन्त्रियों को मुग़लों से रिश्वत में भारी रकमें प्राप्त हुयीं।[184] यद्यपि राजाराम के सेनापतियों ने उसे सलाह दी कि मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा जाय, और अधमरी मुग़ल सेना को कुचल कर औरंगजेब द्वारा नयी सेना भेजी जाने से पूर्व पूरे क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया जाय[185] तथापि उसके ब्राह्मण मन्त्रियों ने उसे मुग़लों का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिये राजी कर लिया। मुग़ल सेना के कुछ अधिकारियों ने, जिनमें जुल्फ़िक़ार खाँ और राव दलपत प्रमुख थे, जिंजी का घेरा उठाने और पीछे हटने का विरोध किया। किन्तु जुल्फ़िक़ार खाँ के सैनिक थक गये थे। एकाएक मुग़ल सेना के तोपची सेना को छोड़कर भाग गये। अब असदखाँ और जुल्फ़िकार खाँ के सामने घेराबन्दी उठाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा। उन्हें 22 अथवा 23 जनवरी 1693 को वापसी के आदेश देने के लिये बाध्य होना पड़ा।[186] जब औरंगजेब को तोपें जाने और घेराबन्दी समाप्त किये जाने की सूचना प्राप्त हुयी, तो उसने क्रोधित होकर असद खाँ से 3,00,000 रुपये और जुल्फ़िक़ार खाँ से 1,50,000 रुपये की वसूली के आदेश दिये।[187]

भीमसेन ने घेराबन्दी उठने के समय मुग़ल शिविर का विस्तृत वर्णन किया है। उसके अनुसार लम्बी घेराबन्दी और खाद्य सामग्री की कमी के कारण सेना के अधिकांश अश्व, ऊँट तथा भार ढोने वाले अन्य पशु जीवित नहीं बचे थे। जिन सैनिकों को कोई भी पशु जीवित मिला, उन्होंने उसके ऊपर अपनी आवश्यकता भर का

सामान लाद लिया। अधिकांश सैनिकों ने अपने सामान में आग लगा दी। अनेक सैनिक अपने मित्रों और सम्बन्धियों को छोड़ कर अपनी राह चले गये। सेना का अत्यधिक सामान पीछे छूट गया। जब मुग़ल सेना शिविर छोड़ कर चली गयी, तो लगभग 1,000 मराठा अश्वारोही उनके पीछे आ गये, और उन्होंने सामान लूट लिया। मुग़ल सेना तीन दिन की यात्रा के पश्चात् वाण्डीवाश पहुँची।[188]

दस दिन बाद अली मर्दान खाँ के स्थान पर नियुक्त काँची का मुग़ल फौज़दार, कासिम खाँ, रसद और सैनिकों के साथ कडापा पहुँच गया। यह सूचना पाकर सन्ताजी घोरपड़े ने कावेरीपाक और काँची के मध्य उसे रोकने का प्रयास किया। 6 फरवरी 1693 को कासिम खाँ को काँची के एक मन्दिर-समूह में शरण लेने के लिये बाध्य होना पड़ा। अगले दिन जुल्फ़िक़ार खां ने मराठों को खदेड़ कर कासिम खां को मुक्त कराया, और उसे अपने साथ वाण्डीवाश ले गया।[189] इस प्रकार सन्ताजी घोरपड़े ने जिंजी की मुग़ल घेराबन्दी उठाने में और राजाराम की मुग़लों से रक्षा करने में महत्वपूर्ण योगदान किया।

जिंजी की घेराबन्दी उठवाने के पश्चात् सन्ताजी घोरपड़े ने स्वयं मार्च 1693 में त्रिचनापल्ली को घेर लिया। यहां का नायक निरन्तर तंजावुर के शासक, शाहजी II, के साथ युद्धरत रहता था। शाहजी II राजाराम का चचेरा भाई था, और सदैव उसकी सहायता करता रहता था।[190] राजाराम स्वयं इस युद्ध में भाग लेने जिंजी से त्रिचनापल्ली आया। अपनी स्थिति को समझकर त्रिचनापल्ली के

नायक ने 10 अप्रैल 1693 को राजाराम के साथ सन्धि कर ली। इस सन्धि के पश्चात् मई 1693 में राजाराम, शाहजी II से भेंट करने तंजावुर गया।[191]

जिंजी की घेराबन्दी समाप्त करने के लिये भेजे गये असद ख़ाँ के प्रस्ताव को राजाराम ने अपने ब्राह्मण मन्त्रियों की सलाह पर, सैन्य अधिकारियों के विरोध के बावजूद, स्वीकार कर लिया था। यह राजाराम और सन्ताजी घोरपड़े के मध्य मतभेद का एक महत्वपूर्ण कारण बना।[192] मार्च 1693 में यह मतभेद और अधिक बढ़ गये, तथा अप्रैल–मई 1693 में सन्ताजी घोरपड़े महाराष्ट्र वापस लौट गया।[193] उसके स्थान पर सेना के संचालन का उत्तरदायित्व धनाजी जाधव को सौंपा गया।[194]

इस विषय पर विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी।[195]

टिप्पणी

1. एच० जी० रॉलिन्सन, *शिवाजी, द मराठा,* पृ० 73–74; जे० एन० सरकार, *शिवाजी एण्ड हिज़ टाइम्स,* पृ० 156–74.
2. जी० एस० सरदेसाई, *मराठी रियासत,* I, पृ० 539.
3. *पूर्वोक्त,* पृ० 539–42.
4. *पूर्वोक्त,* पृ० 543.
5. आर० वी० नाडकर्णी, *द राइज़ एण्ड फॉल ऑव द मराठा एम्पायर,* पृ० 119.
6. जी० एस० सरदेसाई, *मराठी रियासत,* I, पृ० 548.
7. *पूर्वोक्त,* पृ० 542.
8. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,*I, पृ० 293. आर० वी० नाडकर्णी (*पूर्वोक्त,* पृ० 119) की सूचना है कि दुर्ग के रक्षक सैनिक शम्भूजी के साथ हो गये।
9. आर० वी० नाडकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 119.
10. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 294. किन्तु अन्य विद्वान 28 जुलाई 1680 की तिथि देते हैं (आर० वी० नाडकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 119)। *बाम्बे फैक्टरी रिकाडर्स,* 12 जुलाई 1680 को सूचना देते है कि शम्भूजी को सार्वजनिक रूप से राजा घोषित कर दिया गया है (जे० एन० सरकार, *हाउस ऑफ शिवाजी,* पृ० 215–16).
11. 10 जनवरी 1681 (जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 294)। किन्तु जे० एन० सरकार (*हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* IV, पृ० 243), फरवरी 1681 मानते हैं।

11a- जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 220.

12. कुछ विद्वानों की मान्यता है कि जब शम्भूजी औरंगजेब से बचकर दक्षिण वापस लौटा था, तब कवि कलश उसके साथ आया था (इलियट तथा डॉसन, *हिस्टरी ऑफ इण्डिया,* VII, पृ० 305)। किन्तु जे० एन० सरकार *(हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* IV, पृ० 253) के अनुसार वह शम्भूजी के भव्य राज्याभिषेक से पूर्व रायगढ़ आया था।

13. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 301.

14. राजवाड़े, VIII, पृ० 40, XV, पृ० 342; जी० एस० सरदेसाई, *मराठी रियासत,* I, पृ० 559, 560-63, आर० वी० नाडकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 121, टिप्पणी 14.

15. जे० एन० सरकार शम्भूजी की विलासप्रियता के लिये कवि कलश को पूर्णतः उत्तरदायी नहीं मानते हैं *(हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* IV पृ० 254, टिप्पणी)।

16. एम० जी० रानाडे, *मराठा शक्ति का उदय,* पृ० 85.

17. *अखबारात,* वर्ष 23, शाबान 17.

18. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 31.

19. खफ़ी ख़ाँ के अनुसार 1 जून 1681 को अकबर का राजगढ़ के निकट शम्भूजी के महल में स्वागत हुआ था।

20. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 297.

21. *पूर्वोक्त,* पृ० 298.

22. *पूर्वोक्त,* पृ० 302 और आगे।

23. देखिये, ऊपर अध्याय 1

24. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* IV, पृ० 304; जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 304.

25. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 32.

26. *बसातीन-उस्-सलातीन,* पृ० 446.

27. अखबारात, वर्ष 28, जिल्हिज 14 तथा18; *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 33.

28. ऊपर, अध्याय 1

29. *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* IV, पृ० 283.

30. *शिव चरित्र साहित्य,* II, संख्या 271, पृ० 267, संख्या 222, पृ० 221; *सम्भाजी कालीन पत्र सारसंग्रह,* संख्या 126, पृ०39; राजवाड़े XV, संख्या 281, पृ० 288, संख्या 342, पृ० 371-72; आदि।

31. *अखबारात,* 17 मार्च, 2,4, तथा 9 अप्रैल 1683, *अखबारात,* वर्ष 26 रबी I, 11; *अखबारात,* वर्ष 26, शव्वाल 13; *अखबारात,* वर्ष 26, रबी I, 11; *अखबारात,* वर्ष 26, रमजान; 10; *अखबारात,* वर्ष 26, शव्वाल, 22; *अखबारात,* वर्ष 28, मुहर्रम, 25; *अखबारात,* वर्ष 28, सफर 2; *अखबारात,* वर्ष 28, रबी I, 4; आदि।

32. जी० टी० कुलकर्णी, *द मुग़ल-मराठा रिलेशन्स,* पृ० 69.

33. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 33.

34. *पूर्वोक्त,* पृ० 31.

35. *सम्भाजी कालीन पत्र सारसंग्रह,* पृ० 119.

36. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, 5 पृ० 112–13.

37. *शिव चरित्र प्रदीप*, पृ० 34.

38. *अखबारात*, वर्ष 31, जमादी II, 20-

39. *अखबारात*, वर्ष 32,जिल्हिज़ 13.

40. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, 5, पृ० 114.

41. जी० एस० सरदेसाई, *उग्र सम्भाजी*, पृ० 90.

42. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ० 316.

43. शम्भूजी को बन्दी बनाये जाने का यह विवरण खफ़ी खाँ, पृ० 384–86 पर आधारित है। साथ ही देखिये, *शिव चरित्र प्रदीप*, पृ०34.

44. *वकील रिपोर्ट*, 24 रबी II, हिजरी 1100.

45. जी० टी० कुलकर्णी, *द मुग़ल–मराठा रिलेशन्स*, पृ० 74, तथा टिप्पणी 222.

46. मनुची, *स्टोरिया डो मोगोर*, II, पृ० 311–12.

47. खफ़ी खाँ, II पृ० 389.

48. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ० 317.

49. *पूर्वोक्त।*

50. एम० जी० रानाडे, *मराठा शक्ति का उदय*, पृ० 86.

51. ग्राण्ट उफ़, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़*, I, पृ० 307.

51a. *मासिर–ए–आलमगिरी*, पृ० 326.

51b. *काव्य इतिहास संग्रह* पत्रे याद्या, संख्या 3; पृ० 5.

51c. जी० टी० कुलकर्णी, *द मुग़ल–मराठा रिलेशन्स*, पृ० 138–39.

52. ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़*, I, पृ0 296–98; आर0 वी0 नाडकर्णी, *पूर्वोक्त*, पृ0 124.

53. *शिव चरित्र प्रदीप*, पृ0 34–35.

54. *पूर्वोक्त*, पृ0 35.

55. *पूर्वोक्त*, पृ0 35.

56. जी0 एस0 सरदेसाई *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0 322.

56a. देखिये, मद्रास डायरी, 6 दिसम्बर 1689, जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, V, पृ0 50.

57. *मद्रास डायरी*, 14 नवम्बर तथा 26 दिसम्बर 1689.

58. *राजाराम चरितं*, पृ0 35.

59. *शिव चरित्र प्रदीप*, पृ0 35.

60. जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0 325.

61. रायगढ़ की विजय के लिये देखिये, डगलस, *बाम्बे एण्ड वेस्टर्न इण्डिया*, I, पृ0 347.

62. *अखबारात* वर्ष 33, शव्वाल 28.

62a. जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0 323.

63. *राजाराम चरितं* पृ0 35 और आगे; राजवाड़े, XIII, पृ0 48, की सूची में सन्ताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव तथा खाण्डेराव दाभादे भी सम्मिलित हैं।

64. जी0 एस0 सरदेसाई, *राजाराम*, पृ0 25.

65. *जेधे शकावली*, पृ0 35.

66. *मराठी रियासत*, I, पृ0 646.

67. आर० वी० नाडकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 125, टिप्पणी 23.

68. किनकैड तथा पारसनिस, *हिस्टरी ऑव द मराठा पीपल,* पृ0158.

69. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 18.

70. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 35.

71. बेडनूर मैसूर के उत्तर-पश्चिम में नगर मण्डल में पड़ता है। जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 225.

72. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 328.

73. *पूर्वोक्त,* पृ० 329.

74. *पूर्वोक्त।*

75. *पूर्वोक्त।*

76. जी० एस० सरदेसाई, *राजाराम,* पृ० 26.

77. महाराष्ट्र से राजाराम की जिंजी यात्रा का विवरण उसके पुरोहित, केशव पण्डित, ने अपनी पुस्तक, *राजाराम चरितं* में दिया है। एक कन्नड़ ग्रन्थ, *केलडि नृपविजय,* में भी इसका वर्णन मिलता है। ऊपर दिया गया वर्णन आर० वी० नाडकर्णी, *राइज़ एण्ड फॉल ऑव द मराठा एम्पायर,* पृ० 124-26; जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 325-26; जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 225 तथा जी० टी० कुलकर्णी, *मुग़ल-मराठा रिलेशन्स,* पृ० 95-97, पर आधारित है। जी० एस० सरदेसाई *(मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 326) उसके जिंजी पहुंचने की तिथि 15 नवम्बर 1689 बताते हैं।

77a. हरजी महादिक को शम्भूजी ने 1681 के आरम्भिक् दिनों में जिंजी का प्रशासक नियुक्त किया था। जे० एन०सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 42.

77b. देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 49–50.

78. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 35.

79. हरजी महादिक की पत्नी जिंजी का शासन उसे सौंपना नहीं चाहती थी। देखिये, आर० वी० नाडकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 126, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 49–50.

80. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 98–99.

81. ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ० 301.

82. *अ हिस्टरी ऑव जिंजी एण्ड इट्स रूलर्स,* पृ० 265.

83. ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ० 301.

84. राजवाड़े, XV, पृ० 45

85. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 178, टिप्पणी 21.

86. ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ० 299–300, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 99.

87. आर० वी० नाडकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 125.

88. ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ० 302, जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* 1, पृ० 323.

89. ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ० 302.

90. *पूर्वोक्त,* पृ० 302, आर० वी० नाडकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 126.

90a *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 36.

90b. *ख़फी खाँ,* पृ0 392.

90c. राजवाड़े, XV, संख्या 283, पृ0 290.

91. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ0 35.

92. फ्रॉंस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ0 33, 77.

92a देखिये, जी0 टी0 कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ0 102–107.

93. *मद्रास डायरी,* I तथा 22 सितम्बर 1690, भीमसेन, *दिलकश* पृ0 98बी।

94. देखिये, जी0 टी0 कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ0 179, टिप्पणी 27.

95. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ0 35.

96. *पूर्वोक्त।*

97. अक्टूबर 1690 में जुल्फ़िकार खाँ ने फ्रांसीसियों को पत्र लिख कर आग्रह किया था कि वे ऐसा होने से रोके फ्रॉंस्वा मार्तिन, मेम्वार, III, पृ0 125–31 देखिये जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 55.

98. उसने अंग्रेजों से 500 गोलों की मांग करी थी, और साथ ही 500 सैनिक और 30 तोपची भी मांगें थे। जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑच औरंगजेब,* V, पृ0 57.

99. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ0 35–36.

100. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 240.

101. देखिये, जी0 टी0 कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ0 102.

102. *पूर्वोक्त* पृ0101.

103. *साउथ आर्काट मैनुअल,* पृ0 418.

104. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 352 ऐसी ही सूचना भीमसेन (*दिलकश,* पृ० 99बी) से भी प्राप्त होती है।

105. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 352.

106. *पूर्वोक्त,* पृ० 354-55.

107. *पूर्वोक्त,* पृ० 354.

108. *अखबारात,* वर्ष, 35, रबी, 26.

109. *दिलकश,* पृ० 100ए।

110. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 350.

111. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V पृ० 60.

112. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 105.

113. *दिलकश,* पृ० 105ए-106बी.

114. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 179-81.

115. *पूर्वोक्त,* पृ० 193.

116. *पूर्वोक्त,* पृ० 204.

117. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 106.

118. *अखबारात,* वर्ष 36, जिल्हिज़ 1.

119. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 224.

120. *अखबारात,* वर्ष 36, रबी I, 22.

121. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 36.

122. *पूर्वोक्त।* जे० एन० सरकार (*हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 226) सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव, दोनों के अधीन अश्वारोही सैनिकों की संख्या पंद्रह-पंद्रह हजार बताते हैं।

123. ख़फी ख़ाँ, II, पृ० 415.

124.जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त*, पृ० 107.

125.जे० एन० सरकार (*हिस्ट्री ऑव औरंगजेब*, V पृ० 21–23) ने *मासिर-ए-आलमगीरी* (पृ० 336), *जेधे शकावली*, तथा ईश्वरदास (पृ० 141 ए–143ए) की सूचना के आधार पर इस संघर्ष का विशद् विवरण प्रस्तुत कियां है।

126.जे० एन० सरकार, *हिस्ट्री ऑव औरंगजेब*, V, पृ० 22 तुलना कीजिए, भीमसेन, *दिलकश*, पृ० 146बी, जिसमें कहा गया है कि दक्खिनी सैनिक तलवार और भाले के अतिरिक्त कोई अस्त्र लेकर नहीं चलते थे, और (मराठों को छोड़कर) बीजापुरी सैनिक भाला भी नहीं रखते थे... यद्यपि उत्तर भारत के सैनिकों की नकल में उन्होंने तोपखाना हासिल कर लिया था, तथापि उसका उपयोग नहीं कर पाते थे।

127.जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, V, पृ० 22.

127a. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त*, पृ० 144.

128.जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, V, पृ० 22.

129. *पूर्वोक्त*, पृ० 23.

129a. जे० एन० सरकार *हाउस ऑव शिवाजी*, पृ० 226; जी०टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त*, पृ०144.

130.करारगाँव की पहचान सतारा से 10 मील पूर्व में स्थित कोड़ेगाँव से, अथवा सतारा के दुर्ग से 30 मील दक्षिण में स्थित करार से की गयी है। देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, V, पृ० 23, टिप्पणी।

131.जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, V,पृ० 23.

132.जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 226.

133.जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 23.

134.*मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ0 337.

135.देखिये, जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ028-30.

136.*पूर्वोक्त।*

137.*पूर्वोक्त,* पृ0 29-30.

138.*पूर्वोक्त,* पृ0 30, टिप्पणी।

139.*पूर्वोक्त*।

140.जी0 टी0 कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ0 145-46.

141.*राजवाड़े,* XVI, संख्या 27, पृ0 43.

142.*अखबारात,* वर्ष 34, जिल्हिज 16.

143.*अखबारात,* वर्ष 34, जिल्हिज 14.

144.*अखबारात,* वर्ष 34, मुहर्रम 4.

145.*अखबारात,* वर्ष 34, मुहर्रम 9.

146.*अखबारात,* वर्ष 34, मुहर्रम 10.

147.राजवाड़े XV; देखिये, जी0 टी0 कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ0 146-47.

148.राजवाड़े XV, संख्या 352, पृ0 382.

149.*अखबारात,* वर्ष 35, मुहर्रम 23

150.*अखबारात,* वर्ष 35, मुहर्रम 29

151.*अखबारात,* वर्ष 35, सफर 2.

152.*अखबारात,* वर्ष 35, सफर 2.

153.*अखबारात,* वर्ष 35, रबी II, 5.

154. *वकील रिपोर्ट* वर्ष 36, जीक़ाद 27; देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 145–49.

155. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 36.

156. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 31.

157. *अखबारात,* 16 अक्टूबर 1692.

158. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 32 टिप्पणी।

159. *पूर्वोक्त,* पृ० 32.

160. *ऊपर।*

161. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 268–69.

162. *मद्रास डायरी,* 13,17,23 दिसम्बर 1692, तथा 4 अगस्त 1693 (जे० एन० सरकार), *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 62.

163. *दिलकश,* पृ० 108बी.

164. ख़फी खाँ, पृ० 416. जी० एस० सरदेसाई (*मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 334) इसकी तिथि 13 दिसम्बर 1692 बताते हैं।

165. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 62.

166. जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 226.

167. *पूर्वोक्त।*

168. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 36, *वकील रिपोर्ट,* वर्ष 36, जमादी II, 24; देखिये, जी०टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 107.

169. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 107.

170. जी० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगाबाद,* V, पृ० 62.

171.फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 266-69; जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 226.

172.*अखबारात,* वर्ष 36, शाबान 1.

173.*मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 357.

174.फ्राँस्वा मार्तिन *मेम्वार,* III, पृ० 266-69.

175.*शिव चरित्र साहित्य,* V, संख्या 778, पृ० 23.

176.*जेधे शकावली,* पृ० 36.

177.देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 179, टिप्पणी 55

177a जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 334.

178.*दिलकश,* पृ० 108बी।

179.*मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 358.

180.जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 69.

181.*दिलकश,* 109बी।

182.देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 68-70.

183.*दिलकश,* पृ० 110ए।

184.फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 285-87.

185.जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* 110.

186.*दिलकश,* पृ० 110बी।

187.*अखबारात,* वर्ष 37, रमज़ान 4.

188.*दिलकश,* पृ० 110बी।

189. *दिलकश,* पृ० 111ए। देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 70-72.

190. देखिये, जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 228.

191. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 75.

192. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 335.

193. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 37.

194. जे० एन० सरकार *हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* V, पृ० 75, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 228 तथा टिप्पणी।

195. देखिये, अध्याय 'राजाराम-सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध'।

अध्याय 4

मुग़लों के साथ संघर्ष–II

पिछले अध्याय में हमने देखा था कि महाराष्ट्र में मुग़लों के बढ़ते दबाव के कारण राजाराम जिंजी में आकर रहने लगा था, और इस दुर्ग पर अधिकार करने के मुग़ल प्रयास सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव जैसे मराठा सरदारों के कारण निष्फल रहे थे। असद खां तथा जुल्फ़िकार खां को जिंजी की घेराबन्दी हटानी पड़ी थी। किन्तु महाराष्ट्र से जिंजी तक आपूर्ति तथा सम्पर्क का मार्ग सुरक्षित नहीं था। बीजापुर की आदिलशाही सल्तनत और गोलकुण्डा की कुतुबशाही सल्तनत के पतन के परिणामस्वरूप क्रमशः बीजापुरी कर्णाटक और गोलकुण्डा कर्णाटक पर मुग़लों का अधिकार हो गया था। औरंगजेब ने बीजापुरी कर्णाटक में अपने अधिकारी नियुक्त किये थे, किन्तु गोलकुण्डा कर्णाटक में अधिक प्रशासनिक फेरबदल नहीं किये थे। इस दूसरे क्षेत्र के सरदारों ने कभी औपचारिक रूप से मुग़लों के प्रति निष्ठा घोषित नहीं की थी, और मुग़ल तथा मराठा, दोनों अपनी अपनी सहूलियत की दृष्टि से उन्हें अपने प्रति निष्ठावान मानते थे।[1]

मराठा सरदार कर्णाटक के महत्व को समझते थे। उन्हें इस बात का अनुमान था कि यदि जिंजी के साथ सम्पर्क स्थापित रखना है तो कर्णाटक पर मुग़ल अधिकार को निष्प्रभावी बनाना होगा। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र से राजस्व भी प्राप्त किया जा सकता था। इस कारण कर्णाटक क्षेत्र में मुग़लों के साथ मराठों को संघर्ष करना पड़ा। कर्णाटक क्षेत्र में नव–नियुक्त मुग़ल अधिकारी प्रशासन को प्रभावी ढंग से नहीं चला पा रहे थे। नवम्बर 1690 से ही

औरंगजेब कर्णाटक में मराठा गतिविधियों के प्रति सतर्क हो गया था। उसने 12 नवम्बर 1690 को असद खां को कृष्णा नदी के पार निर्भीक विचरण कर रहे मराठों को 'दण्डित' करने के लिये भेजा।[2] असद खां ने बीजापुरी कर्णाटक में स्थित और मराठों द्वारा नियन्त्रित भूदरगढ़ का घेरा डाल दिया। यह दुर्ग कोल्हापुर से लगभग 36 मील दक्षिण में सह्याद्रि की छह चोटियों में से एक पर स्थित है। स्वयं असद खां द्वारा इस पर अधिकार का प्रयास किये जाने से इसके सामरिक महत्व का अनुमान सहज लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र के देसाई, देशमुख, आदि अधिकारियों ने इस घेराबन्दी के दौरान दुर्ग में रसद तथा अस्त्र-शस्त्रों की आपूर्ति में पर्याप्त योगदान किया। इस कारण असद खां की घेराबन्दी अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं हुयी, और मार्च 1691 में उसे घेराबन्दी उठाकर जाना पड़ा।[3] मुग़लों के इस असफल अभियान का उल्लेख आधिकारिक विवरणों में नहीं किया गया है। इस अभियान की सूचना राजाराम के एक अधिकारी द्वारा 7 नवम्बर 1691 को जारी एक मूल आदेश से प्राप्त होती है।[4] इस आदेश में घेराबन्दी के दौरान सहायता प्रदान करने वाले देसाई, देशमुख, आदि को दिये गये पुरस्कार का उल्लेख है। आदेश में इस अभियान की तिथि की चर्चा नहीं मिलती है, किन्तु इसके बाद दिये गये पुरस्कार की तिथि बतायी गयी है।[5]

अप्रैल-मई 1691 में औरंगजेब को अपने कुछ योग्य सेनापति और बड़ी संख्या में सैनिक पीड़या नायक के नेतृत्व में उपद्रव मचा रहे बेरदों का दमन करने के लिये भेजने पड़े। ये बेरद मराठों का साथ दे रहे थे। इस स्थिति का लाभ उठाकर मराठों ने रायबाग-हुकेरी

पर आक्रमण कर दिया, जो उत्तरी कर्णाटक के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित था।[6] हुकेरी का अलप्पा देसाई मराठों के साथ था। औरंगजेब के एक अधिकारी ने उसे इस कारण एक धमकी भरा पत्र लिखा था। साथ ही उसे मुग़लों का साथ देने के लिये प्रेरित करने का प्रयास भी किया जा रहा था।[7] इसके अतिरिक्त हुकेरी क्षेत्र में मुग़ल सैनिकों की संख्या में वृद्धि भी की गयी। किन्तु इस सब का कोई वांछित परिणाम नहीं निकला। अलप्पा देसाई को भूदरगढ़ में रामचन्द्र से भेंट करने के लिये तैयार किया गया, और अन्ततः उसे मराठों का साथ देने के लिये सहमत कर लिया गया।[8] बाद में अलप्पा देसाई द्वारा मराठों का पक्ष स्वीकार करने के लिये आभार प्रदर्शन हेतु नागोजी तुकदेव को उसके पास भेजा गया।[9]

स्थिति अपने नियन्त्रण से बाहर जाती देखकर मुग़ल अधिकारी, इनायत उल्ला, ने बीजापुर के दीवान, अब्दुल मुकर्रिम, को पत्र द्वारा सूचना भेजी। मई–जून 1691 में जान सिपर खाँ जाँनसिपर के नेतृत्व में एक बड़ी मुग़ल सेना इस क्षेत्र में भेजी गयी।[10]

जनवरी 1692 में एक मराठा सेन्य टुकड़ी गुलबर्गा के निकट सक्रिय हुई। औरंगजेब के मामूर खाँ, तेर के फौज़दार, मोमी खाँ तथा शाहगढ़ के ख्वाजा ज़फर अली को ये आदेश दिये गये कि वे मराठों के विरुद्ध उचित कार्यवाही करें और उसमें एक–दूसरे की सहायता करें। सियादत खां को भी इस लक्ष्य से गुलबर्गा भेजा गया।[11]

अब तक सन्ताजी घोरपड़े भी अपने सैनिकों के साथ कर्णाटक क्षेत्र में आ उपस्थित हुआ। सलाबत के दो पुत्रों, जाँ निसार खाँ

और तहौर खाँ, को कर्णाटक की रक्षा करने के आदेश प्राप्त हुये। इन दोनों का सन्ताजी घोरपड़े के साथ भीषण संघर्ष हुआ। इस युद्ध में दोनों ओर के सैनिक बड़ी संख्या में मारे गये। खाँ निसार खाँ और तहौर खाँ भी युद्ध करते हुये घायल हो गये। वे बड़ी कठिनाई के साथ जान बचाकर भाग सके। अन्य अनेक मुग़ल सरदारों को भी युद्ध क्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा। मराठों को लूट का बहुत सा धन प्राप्त हुआ। मुग़ल सैनिक भी बड़ी संख्या में बन्दी बनाये गये।[12]

सन्ताजी घोरपड़े को इस सफलता के लिये राजाराम द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया। उसे मिराज तथा 22 अन्य ग्रामों की देशमुखी प्राप्त हुयी। साथ ही शेख निज़ाम, शरजा खाँ, रणमस्त खाँ, और खाँ निसार खाँ जैसे बड़े मुग़ल सेनापतियों को पराजित करने में सफल रहने पर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी की गयी।[13] इसके पश्चात वर्षा ऋतु के अन्त तक इस क्षेत्र में किसी विशेष सामरिक गतिविधि की सूचना नहीं मिलती है। किन्तु शीघ्र ही औरंगजेब को ज्ञात हुआ कि सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव ने धारवाड़-बेलगाम क्षेत्र में कुछ दुर्गों पर अधिकार कर लिया है, और बेलगाम को त्रस्त कर दिया है।[14] अक्टूबर 1692 में मराठों ने चिकोड़ी पर अधिकार कर लिया और वहाँ से अश्व और सम्पत्ति लूट ले गये।[15]

औरंगजेब ने हमीद-उद्-दीन खाँ को बेलगाम तथा मतलब खाँ को धारवाड़ जाने के आदेश दिये। मार्ग में मराठों ने उसकी सेना पर आक्रमण कर दिया, जिसमें सात मुग़ल सैनिक मारे गये, और एक घायल हुआ।[16] साथ ही कासिम खाँ को बंकापुर की रक्षा

का अतिरिक्त भार सौंपा गया। वह नवम्बर 1692 के मध्य के लगभग सल्हटी पहुँचा। सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव उस समय कोपलगढ़ में थे। कासिम खां उनसे लगभग 20 मील दूर तक पहुंचा किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य कोई संघर्ष नहीं हुआ।[17] कुछ समय पश्चात् मतलब खाँ द्वारा धारवाड़ के निकट मराठों को पराजित किये जाने की सूचना प्राप्त होती है।[18] 1692 के अन्त में नुलवी के ज़ागीरदार, नरसिंहराव, का गुमाश्ता, शामजी, मराठों से मिल गया, और हुबली के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। किन्तु मुग़लों की ओर से हुबली के देसाई, देवजी हनामराव, ने उससे संघर्ष किया, और अथक प्रयास कर उसे पराजित कर दिया।[19] नवम्बर 1692 के तीसरे सप्ताह में फिरोज़ जंग ने कुंजरगढ़ जीत लिया।[20]

जिंजी की मुग़ल घेराबन्दी उठाने में योगदान करने के उपरान्त सन्ताजी घोरपड़े 1693 में महाराष्ट्र लौट गया। किन्तु अक्टूबर 1693 में सामरिक अभियान का काल आरम्भ होने के साथ सन्ताजी घोरपड़े बीजापुर क्षेत्र में सक्रिय हो गया। उसने बीजापुर से 65 मील उत्तर-पश्चिम और सतारा से 76 मील दक्षिण-पूर्व में स्थित भूपालगढ़ के आस-पास के क्षेत्रों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। औरंगजेब ने हिम्मत खाँ को आदेश दिया कि वह सन्ताजी घोरपड़े को पराजित कर उस क्षेत्र को मराठा सेनापति के आतंक से मुक्त करे। 22 अक्टूबर 1693 के लगभग हिम्मत खाँ, सन्ताजी घोरपड़े का पीछा करता हुआ उसके निकट तक पहुँच गया। सन्ताजी के सैनिकों की संख्या मुग़ल सैनिकों की संख्या से कहीं अधिक थी। वह मानगाँव में पलटकर हिम्मत खाँ से युद्ध करने

लगा। इस युद्ध में मराठा सेनापति ने हिम्मत खाँ को मानगाँव की सीमा के निकट शरण लेने के लिये बाध्य किया। किन्तु उसी समय हमीद-उद्-दीन खाँ और ख्वाजा खाँ अपनी-अपनी सेना के साथ वहाँ पहुँच गये। मुग़लों का बल बढ़ जाने के कारण सन्ताजी घोरपड़े को युद्ध छोड़कर वहां से हटना पड़ा। मुग़ल सेनाओं ने उसका पीछा किया, और विक्रमहल्ली नामक गांव के निकट सन्ताजी घोरपड़े तथा उसके बेरद साथियों को पराजित कर दिया। यद्यपि इस संघर्ष में मुग़लों को जन-धन की बहुत अधिक क्षति हुयी, तथापि मराठों की हानि उनसे कहीं अधिक रही। अपने 300 निजी सैनिकों के साथ सन्ताजी घोरपड़े के 200 बेरद सैनिकों ने भी अपनी जान गवाँयी। इसके अतिरिक्त मराठों की 300 घोड़ियों और कुछ पताकाओं और नक्कारों पर मुग़लों ने अधिकार कर लिया। मुग़ल की इस विजय की सूचना 19 नवम्बर 1693 के *अखबारात* में दी गयी है। अतः यह घटना इस तिथि के कुछ पूर्व की रही होगी। जे० एन० सरकार इसके लिये 14 नवम्बर 1693 के आस-पास की तिथि का सुझाव देते हैं।[21]

इस विजय के कुछ समय बाद मुग़ल सेनापतियों में आपस में किसी बात पर मतभेद हो गया। हमीद-उद्-दीन खाँ, और ख्वाजा खाँ हिम्मत खां को अकेला छोड़कर गुलबर्गा की ओर चले गये। हिम्मत खां अकेला सन्ताजी घोरपड़े का पीछा करता रहा। मराठा सेनापति मुग़ल दबाव कम हो जाने के कारण अपनी सेना को दो भागों में विभाजित कर दिया। उसने 4,000 सैनिकों के नेतृत्व का उत्तरदायित्व अमृत राव निम्बालकर को सौंपा। अमृत राव शम्भूजी के पतन के उपरान्त मुग़ल सेवा में सम्मिलित हो गया था, और

उसकी नियुक्ति फाल्टन थाने में की गयी थी। किन्तु अक्टूबर 1693 में वह वापस मराठों के साथ आ गया था। उसने सन्ताजी घोरपड़े के निर्देश पर अपने 4,000 सैनिकों के साथ बरार पर आक्रमण कर दिया। सन्ताजी अपने 6,000 अश्वारोही सैनिक लेकर मालखेड़ की ओर बढ़ा। कुछ साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उसने उस क्षेत्र के देशमुख के पास अपने सन्देश-वाहक *चौथ* के रूप में 7,000 *हुण* की माँग के लिये भेजे थे। किन्तु ये सन्देशवाहक मुग़लों के हाथ लग गये, और मुगलों ने पकड़कर उनका वध कर दिया।[22]

मालखेड़ से सन्ताजी घोरपड़े ने बेरद क्षेत्र में स्थित तोरगल की ओर कूच कर दिया। तोरगल बीजापुरी कर्णाटक में आदिलशाही सल्तनत के काल का एक महत्वपूर्ण दुर्ग था।[23] हिम्मत खाँ इस दुर्गम क्षेत्र में घुस कर सन्ताजी घोरपड़े का पीछा करने का साहस नहीं कर सका, और मालखेड़ में ही रूक गया। कुछ ही दिनों बाद,[24] सन्ताजी हैदराबाद की ओर बढ़ा। हिम्मत खाँ ने उसका पीछा किया। सैयद अब्दुल्ला उसके साथ था। मुग़ल दबाव के कारण सन्ताजी घोरपड़े को 21 नवम्बर 1693 को आलूर के दुर्ग में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। यह दुर्ग मालखेड़ से लगभग 14 मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित था।[25]

इसके पश्चात् अगले तीन महीने में सन्ताजी घोरपड़े की गतिविधियों के विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती है। 6 मार्च 1694 को हिम्मत खां, कानग्रति तालुका में बहराम नामक गाँव में उसका पीछा करता हुआ, और उसके आक्रमण को विफल करता हुआ दिखाई देता है। इसके तुरन्त बाद मतलब खाँ द्वारा औरंगाबाद

और गलगला के मध्य मकलूर (? अथवा महकूर) में मुगलों की दो बड़ी तोपों को नष्ट करने के सन्ताजी घोरपड़े के प्रयास को विफल करने की सूचना मिलती है। सन्ताजी इन विफलताओं से हतोत्साह होकर महादेव पर्वत लौटने पर विवश हो गया, और कुछ महीनों के लिए उसकी गतिविधियाँ बन्द हो गयी।[26]

अगस्त 1694 के आरम्भिक दिनों में सन्ताजी घोरपड़े पुनः मुग़लों के विरुद्ध सक्रिय हुआ। इस बार उसने सतारा को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया। औरंगजेब को यह सूचना प्रेषित की गयी कि 2 अगस्त 1694 को सन्ताजी घोरपड़े, धनाजी जाधव के साथ, सतारा से 25 मील पूर्व में स्थिति वरूगढ़ के दुर्ग के निकट उपस्थित था। इन मराठा सरदारों ने अपने कुछ सैनिक वरूगढ़ से 10 मील दक्षिण में स्थिति महिमानगढ़ की ओर भेजे थे, और मार्ग अवरुद्ध कर दिया था। इस क्षेत्र को मराठों के आतंक से मुक्त कराने कराने के लक्ष्य से एक मुगल सैन्य टुकड़ी वहां भेजी गयी।[27] किन्तु इस मुगल टुकड़ी को मराठों के विरुद्ध कोई सफलता प्राप्त हुई अथवा नहीं, इस विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है।

जुल्फ़िकार खां ने एक बार पहले जिंजी को जीतने का प्रयास किया था किन्तु विफल रहा था।[28] इस विफलता का मुख्य कारण यह था कि उसने दुर्ग को घेरने से पूर्व आस-पास के क्षेत्रों से राजाराम के समर्थकों का सफाया नहीं किया था। परिणामस्वरूप इन समर्थकों द्वारा राजाराम और मराठा सैनिकों को सहायता पहुँचाती रही थी, और जुल्फ़िकार खाँ की सेना त्रस्त होती रही थी। इन समर्थकों का साहस इतना बढ़ गया कि मुग़ल सेना के लिये इस क्षेत्र में अपना अस्तित्व बनाये रखना कठिन हो गया। फरवरी-मार्च

1693 में यचप्पा नायक का मराठा राजा के साथ गम्भीर विवाद हो गया, और वह मराठों का साथ छोड़कर चला गया। उसने तुरन्त सातगढ़ पर आक्रमण कर दिया, और वहाँ मराठों को पराजित कर दिया। मई–जून 1693 में राजाराम ने वेल्लूर में उस पर आक्रमण किया, किन्तु यचप्पा नायक भाग निकलने में सफल रहा, और नवम्बर–दिसम्बर 1693 में वह मुग़ल सेवा में सम्मिलित हो गया।[29]

इस स्थिति का लाभ उठाते हुये मुग़ल सेनापति, जुल्फ़िकार खाँ, ने राव दलपत बुन्देला को पेरू–मक्कल के दुर्ग पर आक्रमण करने के लिये भेजा। यह दुर्ग पाण्डुचेरी से 18 मील उत्तर और तिण्डीवनम् से 6 मील पूर्व में स्थित है।[30]

इसके पश्चात् जुल्फ़िकार खाँ तंजावुर की ओर बढ़ा। इस अभियान में उसे यचप्पा नायक से पूर्ण सहायता प्राप्त हुयी। वह जनवरी और फरवरी 1694 के मध्य किसी समय तंजावुर पहुँचा और आक्रमण कर दिया।[31] तंजावुर के राजा, शाहजी–II, की स्थिति अत्यन्त विकट हो गयी थी। उसका पड़ोसी राजा, त्रिचनापल्ली का नायक, मुग़लों का साथ दे रहा था। बाहिरजी घोरपड़े के नेतृत्व में एक मराठा सेना शाहजी–II की सहायता के लिये भेजी गयी।[32] किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। शाहजी–II को मुग़लों की शर्तें माननी पड़ी। उसने मुग़लों को 40,00,000 *चक्रम* कर के रूप में प्रदान किये। 22 मई 1694 को उसने एक लिखित आश्वासन पत्र मुग़लों को सौंपा कि वह भविष्य में कभी राजाराम की सहायता नहीं करेगा। साथ ही उसने मुग़लों की अधीनता स्वीकार करने का औपचारिक पत्र भी सौंपा। इसके अतिरिक्त उसे

30,00,000 प्रतिवर्ष की दर से कर चुकाने और कुछ दुर्ग भी मुग़लों को देने थे। ये दुर्ग वास्तव में राजाराम के अधिकार में थे, किन्तु इन्हें तंजावुर के राजा के पास रहन रखा गया था।[33]

राजाराम को जैसे ही यह सूचना प्राप्त हुयी, उसने तुरन्त एक सेना पालमकोटा की ओर भेज कर उस पर अधिकार कर लिया। किन्तु जून 1694 में जुल्फ़िकार ख़ाँ और राव दलपत बुन्देला वहाँ पहुँच गये और 23 जून 1694 को उन्होंने पुनः इस दुर्ग पर मुग़लों का अधिकार स्थापित कर दिया।[34] इस प्रकार मुग़ल सेना ने जिंजी के आस-पास के क्षेत्रों में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। वर्षा ऋतु के अन्त तक, अर्थात् सितम्बर 1694 तक, जुल्फ़िकार ख़ाँ अपनी सैन्य व्यवस्था तथा रसद की आपूर्ति पर ध्यान केन्द्रित किये रहा। इसके पश्चात् 10 सितम्बर 1694 को उसने वेतवलम् वन पर अधिकार कर लिया,[35] और इस प्रकार जिंजी के दुर्ग में रसद, आदि, की आपूर्ति का मार्ग बाधित कर दिया।

अक्टूबर 1694 में जुल्फ़िकार खां ने जिंजी की घेराबन्दी विधिवत् रूप से आरम्भ की। उसने वाण्डीवाश से कूच किया, और जिंजी से 42 मील पश्चिम में स्थित चंगामोन दुर्ग के उत्तर में अपना शिविर स्थापित किया। किन्तु उसके शिविर के कुछ अश्व मराठे चतुराई-पूर्वक ले जाने नें सफल रहे। इससे मुग़लों की ओर से संघर्ष कर रहे दाऊद खां पन्नी, किशोर सिंह हाड़ा तथा राव दलपत बुन्देला को यह सन्देह हुआ कि जुल्फ़िकार ख़ाँ और राजाराम के मध्य कोई गुप्त समझौता फिर से हो गया है। यह सन्देह विभिन्न स्रोतों[36] के अधार पर जे० एन० सरकार ने भी व्यक्त किया है।[37] किन्तु कुछ विद्वान इससे सहमत नहीं है।[38] कुछ

स्रोतों से ऐसा ज्ञात होता है कि इस समय राजाराम ने मुधोजी नायक निम्बालकर को एक पत्र लिखाकर इस बात पर चिन्ता व्यक्त की थी कि कर्णाटक में मुग़ल अत्यधिक शक्तिशाली हो गये हैं। उनके द्वारा वेतवलम् पर अधिकार किये जाने की सूचना देते हुये, राजाराम ने इस बात का भय व्यक्त किया कि शीघ्र ही जिंजी को वे अधिकृत कर लेंगे।

किन्तु इस अवसर पर हिन्दू राव घोरपड़े की सेवाओं से मराठों को मुग़लों का सामना करने में पर्याप्त सहायता मिली। सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव को भी जिंजी बुलाया गया। उनको यह सूचना भेजी गयी कि स्थिति भयावह हो गयी है। यदि वे एक मास के भीतर आ जाते हैं तो मराठा राज्य सुरक्षित बच सकता है। इस मामले में विलम्ब घातक सिद्ध होगा। मराठा राज्य का अस्तित्व इससे खतरे में पड़ सकता है।[39] इससे यह संकेत मिलता है कि राजाराम और जुल्फ़िकार खां के मध्य कोई गुप्त समझौता नहीं हुआ होगा। राजाराम के लिए जिंजी की मुग़ल घेराबन्दी वास्तव में भय का कारण रही होगी।

शंकराजी पन्त ने सन्ताजी घोरपड़े को जिंजी जाने के आदेश दिये। उसका मुख्य कार्य जिंजी की घेराबन्दी उठाने में राजाराम की सहायता करना था। उसके साथ एक विशाल मराठा सेना भी भेजी गयी। येमाजी मल्हार मुतालिक को उसके साथ भेजा गया। इसके अतिरिक्त हनुमन्त राव निम्बालकर तथा अनेक अन्य प्रसिद्ध मराठा सरदारों को 25,000 अश्वारोही सेना के साथ जिंजी जाने के आदेश दिये गये।[40]

उधर जुल्फ़िकार खाँ की स्थिति अच्छी नहीं थी। उसके साथी, यथा सरफराज खाँ, उसका साथ छोड़कर सम्राट के दरबार लौट गये थे। दाऊद खाँ पन्नी और किशोर सिंह हाड़ा जैसे सरदार, राजाराम के साथ जुल्फ़िकार खाँ के समझौते का खुले रूप से आरोप लगा रहे थे और मराठों के विरुद्ध सैन्य गतिविधियों में जुल्फ़िकार खाँ की कोई सहायता नहीं कर रहे थे। इस कारण 1695 का वर्ष जिंजी में मुग़लों और मराठों के मध्य किसी गम्भीर संघर्ष के बिना निकल गया। इस काल में मुग़ल सेना आस-पास के क्षेत्रों को लूटने और भस्म करने पर अधिक ध्यान दे रही थी। वाण्डीवाश के निवासी मुग़ल सेना के भय से नगर छोड़कर भाग गये, और उन्होंने चंगामोन पर्वत में शरण ली। मुग़ल सैनिकों के इन कृत्यों के कारण स्थानीय लोग उनसे रुष्ट थे, और वे मराठों के विरुद्ध मुग़लों को किसी प्रकार की सहायता नहीं प्रदान कर रहे थे।[41]

अक्टूबर-नवम्बर 1695 में जुल्फ़िकार खाँ ने वेल्लूर को घेर लिया। कुछ ही समय बाद मुग़ल सैन्य शिविर में यह सूचना पहुँची कि सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के नेतृत्व में एक विशाल मराठा सेना पूर्वी कर्णाटक पहुँच गयी है। इससे मुग़ल सेना में भय व्याप्त हो गया। अनेक व्यक्तियों ने अपने परिवार सुरक्षा की दृष्टि से चेन्नई भेज दिये।[42] दिसम्बर 1695 के अन्त के लगभग धनाजी जाधव वेल्लूर के निकट पहुँच गया, और जुल्फ़िकार खाँ को घेराबन्दी उठाने के लिये बाध्य होना पड़ा।[43] इसके पश्चात् धनाजी जाधव ने तेरुवाड़ी में मुग़ल फ़ौजदार को चारों ओर से घेर लिया। किन्तु शीघ्र ही जुल्फ़िकार खाँ उसकी सहायता के लिये वहाँ पहुँच गया, और मराठों से उसकी रक्षा की।[43a] इसके उपरान्त जुल्फ़िकार

खाँ आर्कोट चला गया।[44]

मार्च 1696 में सन्ताजी घोरपड़े जिंजी पहुँचा और उसने राजाराम से भेंट कर उसके प्रति अपनी निष्ठा जतायी।[45] सन्ताजी के जिंजी पहुँच जाने से मराठों की शक्ति और उनका उत्साह बढ़ गया। उन्हें पराजित कर जिंजी के दुर्ग पर अधिकार करना मुग़लों के लिये कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त, जुल्फ़िकार खां धन तथा सम्राट से और सैन्य सहायता प्राप्त न होने के कारण असहाय हो रहा था।[45a] जुल्फ़िकार खाँ ने चेन्नई के अंग्रेज व्यापारियों के पास यह प्रस्ताव भेजा कि वे एक लाख *हुण* के ऋण के बदले कोई भी क्षेत्र अपने पास रहन रख लें।[46] किन्तु जब अंग्रेजों ने उसका यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तो अक्टूबर 1696 में उसने चेन्नई पर आक्रमण करने की धमकी दी।[47] इसी बीच अप्रैल 1696 में अरनी में जुल्फ़िकार खाँ और सन्ताजी घोरपड़े के मध्य एक झड़प हुयी। इसमें जुल्फ़िकार खाँ का पलड़ा भारी पड़ा, और सन्ताजी को असफल होकर लौटना पड़ा। किन्तु इसके पश्चात् जुल्फ़िकार खाँ ने स्वयं को आर्कोट के दुर्ग में सीमित कर लिया, और रक्षात्मक रूख अपना लिया।[48]

भीमसेन की सूचना है कि जुल्फ़िकार खाँ के पक्ष में संघर्ष में लगे सरदार किशोर सिंह हाड़ा की मृत्यु हो जाने से मुग़ल सेनापति की स्थिति और कमजोर पड़ गयी।[49] 1696 में लगभग पूरे वर्ष सन्ताजी घोरपड़े आर्कोट के आस-पास मंडराता रहा, और जुल्फ़िकार खाँ को सुरक्षात्मक रूख अपनाने के लिए बाध्य करता रहा।[50]

नवम्बर 1696 में सन्ताजी घोरपड़े को खुफिया रूप से सूचना मिली कि मुग़ल सम्राट द्वारा जुल्फ़िकार खाँ की सहायता के लिये कुछ धन भेजा गया है, और वह कोष कडापा पहुँच चुका है।[51] सन्ताजी उस पर अधिकार करने के लिए तुरन्त कड़ापा की ओर चल पड़ा। जुल्फ़िकार खाँ कोष की रक्षा करने के लिये उसके पीछे बढ़ा। किन्तु किन्ही कारणों से सन्ताजी घोरपड़े ने कोष को अधिकृत करने की योजना बीच में ही छोड़ दी। स्थिति को देख कर कुछ समय बाद जुल्फ़िकार खाँ भी आर्कोट वापस लौट गया।

इसके पश्चात् सन्ताजी घोरपड़े ने बीजापुर के ऊपरी क्षेत्रों पर धावा बोल दिया। औरंगजेब ने जुल्फ़िकार खाँ को उससे मोर्चा लेने का आदेश दिया। उसे यह भी निर्देश दिया गया था कि वह शाहजादा बिदार बख्त का सहयोग करे और मराठों को पराजित कर उन्हें तुंगभद्रा नदी के पार धकेलने में उसकी सहायता करे। जुल्फ़िकार खाँ और बिदार बख्त की सेनाएँ बेंगलूर से 75 मील उत्तर में स्थित पेनुकोण्डा में एक दूसरे से मिली। किन्तु इस समय तक मराठा सेना बिना युद्ध किये वहाँ से जा चुकी थी। फरवरी 1697 में जुल्फ़िकार खाँ आर्कोट वापस लौट गया।[52]

उधर अगस्त 1696 तक जिंजी में मराठों की स्थिति कमजोर पड़ गयी थी। राजाराम और सन्ताजी घोरपड़े के मध्य एक बार पुनः मत वैभिन्य हो गया था। धनाजी जाधव के साथ सन्ताजी घोरपड़े की स्पष्ट प्रतिद्वन्द्विता थी। इसमें राजाराम ने धनाजी जाधव का पक्ष लिया था, किन्तु धनाजी जाधव को सन्ताजी घोरपड़े और उसके पक्षधरों ने मई 1696 में महाराष्ट्र जाने के लिये बाध्य कर दिया था।[53] भीमसेन की सूचना से संकेत मिलता है कि मराठों में एकता

का अभाव होता जा रहा था। साथ ही, अपने अधिकारियों पर राजाराम का नियन्त्रण भी शिथिल पड़ रहा था। भीमसेन के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को *सरदार* कह रहा था, और व्यक्तिगत स्तर पर लूट में व्यस्त था।[54] कुछ *फैक्टरी रिकाड्‌र्स* से ऐसा प्रतीत होता है कि जिंजी की घेराबन्दी उठाने का प्रस्ताव जुल्फ़िकार खाँ की ओर से आया था। 29 जुलाई 1697 को जुल्फ़िकार खाँ ने रामसिंह तथा कुछ अन्य सरदारों को 500-600 अश्वारोही सैनिकों के साथ राजाराम के पास जिंजी भेजा। राम सिंह ने राजाराम को 15,000 रुपये भेंट किये, तथा 35,000 रुपये और देने का अश्वासन दिया, और राजाराम ने अपने पुत्र, कर्णा, को उसके साथ जुल्फ़िकार खाँ के पास भेजने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कर्णा को जुल्फ़िकार खाँ के पास दो मास तक रहना था। इस अवधि के अन्त में जुल्फ़िकार खाँ उसे राजाराम के लिए 50,000 रुपये देने वाला था। राजाराम की एक पत्नी मुग़लों द्वारा बन्दी बनायी गयी थी। कर्णा उसे भी अपने साथ लेकर राजाराम के पास लौटने वाला था। इस प्रकार राजाराम को जुल्फ़िकार खाँ से कुल एक लाख रुपये प्राप्त होने थे, और इसके बदले उससे अपेक्षा की जा रही थी कि वह जिंजी का दुर्ग जुल्फ़िकार खाँ को सौंप देगा। यदि ये शर्तें पूरी नहीं होती तो कर्णा को मराठों के पास वापस लौट आना था।[55] किन्तु जे० एन० सरकार इससे सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार धन की आवश्यकता राजाराम को थी, और उसने शान्ति-प्रयासों में पहल की होगी।[56] उसने 2 अगस्त 1697 को रामसिंह हाड़ा की सहायता से शंकराजी मल्हार के साथ जुल्फ़िकार खाँ के पास सन्धि प्रस्ताव के साथ

भेजा। प्रत्युत्तर में जुल्फ़िकार खाँ ने अपनी सेना से त्रिम्बकराव को राजाराम के पास भेजकर उसे व्यक्तिगत रूप से भेंट करने का निमन्त्रण दिया।[57] किन्तु औरंगजेब सन्धि के लिये तैयार नहीं था। उसने राजाराम की शर्तों को अस्वीकार कर दिया, और जुल्फ़िकार खां को आदेश दिया कि वह अविलम्ब जिंजी पर अधिकार कर लें अतः, मुगल सेनापति ने अक्टूबर 1697 के मध्य में कर्णा को राजाराम के पास वापस भेज दिया, और स्वयं नवम्बर 1697 के आरम्भिक दिनों में जिंजी पर अधिकार करने की गम्भीरतापूर्वक तैयारी करने लगा।[58]

किन्तु इस बीच सन्ताजी घोरपड़े के मुग़लों के साथ कुछ अन्य संघर्ष भी हुये। 26 नवम्बर 1694 को सन्ताजी हैदराबाद के निकट पहुँचा। हिम्मत खां उसके पीछे था। वहाँ मुग़ल सेनापति के समक्ष एक समस्या उत्पन्न हुयी। उसके सैनिक निरन्तर उसका साथ छोड़कर मुख्य मुग़ल शिविर वापस भाग रहे थे। इसका मुख्य कारण यह था कि वे युद्ध की कठिनाइयों से बचना चाहते थे। हैदराबाद से सन्ताजी घोरपड़े बीजापुर की ओर बढ़ा। किन्तु 30 नवम्बर 1694 को हिम्मत खाँ ने उसे पानूर के निकट युद्ध करने के लिये बाध्य किया। इस संघर्ष में सन्ताजी घोरपड़े के दो सैन्य अधिकारी मारे गये, और उसे वहाँ की स्थिति विपरीत देखकर भागना पडा। हिम्मत खाँ उसके पीछे गया।

7 दिसम्बर 1694 अथवा इस तिथि के आस-पास हिम्मत खां ने नलदुर्ग के निकट सन्ताजी घोरपड़े को पुनः पराजित कर दिया। इस युद्ध में दोनों पक्षों की भारी क्षति हुयी। इस पराजय के उपरान्त सन्ताजी घोरपड़े ने अपनी शक्ति के केन्द्र, महादेव पर्वत,

वापस लौटना बुद्धिमानी समझा। दिसम्बर 1694 के अन्तिम दिनों में रायचूर क्षेत्र की ओर अभियान करने के सन्ताजी घोरपड़े के प्रयासों को एक बार फिर हिम्मत खां ने विफल कर दिया।[59]

मई 1695 के अन्तिम दिनों में सन्ताजी घोरपड़े परली में अपने अनुज, बाहिरजी घोरपड़े के दो पुत्रों के विवाह में सम्मिलित होने के पश्चात् भूपालगढ़ के मार्ग से होते हुये महादेव पर्वत में स्थित अपने निवास स्थान पर पहुँच गया था। बाहिरजी घोरपड़े उस समय राजाराम की सेवा में जिंजी गया हुआ था। सन्ताजी घोरपड़े की महादेव पर्वत वापसी के कुछ ही समय बाद उसका एक साथी, माधव नारायण, मराठों का साथ छोड़कर, अपने परिवार और 300 सैनिकों के साथ मुग़लों की सेवा में चला गया।[60]

जुलाई 1695 में मराठों ने खटाव में स्थित मुग़ल सैन्य चौकी को घेर लिया। इस गतिरोध को दूर करने के लिए औरंगजेब ने हमीद-उद्-दीन खाँ को वहाँ भेजा। मराठों ने युद्ध में अपनी तीन सेनाऐं उतार रखी थी। अगस्त 1695 के अन्तिम दिनों तक मराठा सैनिकों की संख्या मुग़ल सैनिकों से कहीं अधिक रही। किन्तु इसके बाद मुग़ल सम्राट, औरंगजेब, ने अपनी कुछ अन्य सैन्य टुकड़ियों को हमीद-उद्-दीन खाँ की सहायता करने के लिये खटाव पहुँचाने के निर्देश दिये। सितम्बर 1695 में हमीद-उद्-दीन खाँ द्वारा फतेह-उल्ला को चन्दन वन्दन के दुर्ग के निकट स्थित गाँव को जलाने के लक्ष्य से भेजा गया। जब सन्ताजी घोरपड़े को इस आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ तो वह फतेह-उल्ला से युद्ध करने के लिये आगे बढ़ा। यदि फतेह-उल्ला की सहायता के लिये हमीद-उद्-दीन खाँ वहाँ न पहुँचा होता, तो सन्ताजी घोरपड़े ने

गाँव को जलाने के लक्ष्य से आये हुये इस मुग़ल अधिकारी को पराजित भी कर दिया होता। किन्तु हमीद-उद्-दीन ख़ाँ के वहाँ पहुँच जाने से मुग़ल सेना की शक्ति और साहस बढ़ गया और मराठा सेना पराजित हुई। धनाजी जाधव के एक पुत्र और एक अन्य अधिकारी की मृत्यु होने पर मराठों को दुर्ग में वापस लौटना पड़ा। हमीद-उद्-दीन ख़ाँ ने मराठों से उनकी 200 घोड़ियाँ और कुछ अन्य असबाब लूट लिया। इसमें कुछ बहुमूल्य दक्खिनी तलवारें भी सम्मिलित थीं। लूट के माल के साथ हमीद-उद्-दीन ख़ाँ अपने शिविर वापस लौट गया।[61] लगभग इसी समय मराठों को एक अन्य झटका लगा। अमृत राव निम्बालकर अपने 500 साथियों के साथ सन्ताजी घोरपड़े को छोड़कर पुनः मुग़ल सम्राट की सेवा में चला गया।[62]

हिम्मत ख़ाँ तथा हमीद-उद्-दीन ख़ाँ के साथ होने वाले सन्ताजी घोरपड़े के इन संघर्षों के लिये जे० एन० सरकार द्वारा सुझायी गयी नवम्बर-दिसम्बर 1694 तथा सितम्बर 1695 की तिथियों पर कुछ विद्वानों ने संदेह व्यक्त किया है।[63] उनका तर्क है कि अक्टूबर-नवम्बर 1694 में सन्ताजी घोरपड़े जिंजी की घेराबन्दी उठाने में राजाराम की सहायता करने के लिये वहाँ भेज दिया गया था,[64] और यदि *जेधे शकावली* की यह सूचना सही मानी जाये, तो सरकार द्वारा सुझायी गयी तिथियाँ त्रुटिपूर्ण हैं, क्योंकि इस समय सन्ताजी घोरपड़े हिम्मत ख़ाँ तथा हमीद-उद्-दीन ख़ाँ के साथ संघर्ष नहीं कर सकता था।[65] उनका यह भी कथन है कि जे० एन० सरकार ने अपना विवरण किस स्रोत-सामग्री के आधार पर दिया है, यह स्पष्ट रूप से नहीं बताया है।[66] किन्तु सरकार ने हिम्मत ख़ाँ

तथा हमीद-उद्-दीन ख़ाँ के साथ संघर्ष के विषय में स्पष्ट लिखा है कि ये विवरण तत्कालीन अखबारात से प्राप्त सूचना पर अधारित हैं।[67] इसके अतिरिक्त ये विद्वान स्वयं लिखते हैं कि सन्ताजी घोरपड़े मार्च 1696 में जिंजी पहुँचा और राजाराम से भेंट कर उसके प्रति निष्ठा व्यक्त की।[68] इसका यह अर्थ हुआ कि *जेधे शकावली* के अनुसार शक संवत् 1616 के कार्तिक मास (9 अक्टूबर-7 नवम्बर 1694)[69] में शंकराजी द्वारा जिंजी कूच करने का आदेश मिलने के बाद सन्ताजी घोरपड़े को जिंजी पहुँचने में मार्च 1696 तक का समय लग गया। इस विलम्ब का एक कारण राजाराम के साथ सन्ताजी घोरपड़े के तनावपूर्ण सम्बन्ध हो सकते हैं। किन्तु एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि जिंजी की ओर जाते हुये मार्ग में सन्ताजी घोरपड़े को मुग़ल सेनापतियों, हिम्मत ख़ाँ, हमीद-उद्-दीन ख़ाँ, क़ासिम ख़ाँ, आदि से संघर्ष करना पड़ा।

सन्ताजी घोरपड़े की सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि, मुग़ल सेनापतियों, क़ासिम ख़ाँ और खानाज़ाद ख़ाँ पर उसकी विजय मानी जा सकती है। इस विजय का विवरण *मासिर-ए-आलमगीरी,* खाफी ख्वाँ, *जेधे शकावली,* आदि स्रोतों से ज्ञात होता है। तत्कालीन *अखबारात* भी इस संघर्ष का उल्लेख विस्तार से करते हैं।

सन्ताजी घोरपड़े ने अक्टूबर 1695 का लगभग पूरा महीना और नवम्बर 1695 के आरम्भिक दिन दक्षिण के उन क्षेत्रों पर आक्रमण करने में व्यतीत किये, जिन पर मुग़लों का अधिकार था। उसने विशेष रूप से बीजापुर क्षेत्र में लूट-पाट की। नवम्बर 1695 के आरम्भिक दिनों में वह भागदुर्ग के निकट उपस्थित था।[70] इस

दुर्ग की पहचान बीजापुर और धारवाड़ के मध्य, तोरगल के निकट स्थित रामदुर्ग से की गयी है।[71] इस पूरे समय में हिम्मत ख़ाँ के नेतृत्व में मुग़ल सेना उसका पीछा करती रही, किन्तु सन्ताजी घोरपड़े की मुग़ल-विरोधी गतिविधियों को रोकने में उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। कृष्णा नदी के दक्षिण में स्थित मुग़ल क्षेत्रों को लूटने के उपरान्त सन्ताजी घोरपड़े लूट का धन उत्तर-पश्चिमी कर्णाटक में स्थित अपनी जाग़ीर में सुरक्षित रखने के लिये गया।

मुग़ल सम्राट, औरंगजेब, उस समय इस्लामपुरी में अपना शिविर लगाये हुए था। उसने पश्चिमी कर्णाटक में स्थित सेरा प्रदेश के मुग़ल प्रान्तपति (गवर्नर) क़ासिम ख़ाँ को आदेश दिया कि वह मराठों का मार्ग रोके, और लूट का धन उनसे छीन ले। क़ासिम ख़ाँ की सहायता के लिये औरंगजेब ने अपने कुछ युवा सैन्य उच्चाधिकारियों को भी भेजा, जिनमें ख़ानाज़ाद ख़ाँ, सफ़ शिकन ख़ाँ, सैयद असालत ख़ाँ, और मुहम्मद मुराद प्रमुख थे। इनमें से ख़ानाज़ाद ख़ाँ को बाद में रूहुल्ला ख़ाँ-II की उपाधि प्रदान की गयी थी। मुहम्मद मुराद, शाहज़ादा काम बक्श की सेना का वेतनाधिकारी था। ये अधिकारी अपने साथ एक शक्तिशाली सेना ले गये, जिसमें औपचारिक रूप से 25,000 सैनिक थे, किन्तु वास्तव में केवल 4,800 सैनिक भर्ती थे। फिर भी ये सभी सैनिक अत्यन्त योग्य थे, और उनमें सम्राट के अंगरक्षक और उसके व्यक्तिगत लाव-लश्कर के सदस्य सम्मिलित थे। साथ ही इस सेना में इन सामन्तों की सैन्य टुकड़ियाँ भी सम्मिलित थीं, जिन्हें सप्ताह के अलग-अलग दिनों में मुग़ल सम्राट के शिविर के बाहर गश्त *(हफ़्त-चौकी)* लगानी पड़ती थी। इसके अतिरिक्त इस मुग़ल सेना

में तोपखाना भी सम्मिलित था।

दोनों मुग़ल सेनाएँ (अर्थात् कासिम खाँ के नेतृत्व वाली सेना, तथा खानाज़ाद खाँ, आदि द्वारा लायी गयी सेना) नवम्बर 1695 के आरम्भ में उस मार्ग से लगभग 12 मील की दूरी पर एक-दूसरे से मिलीं, जिस मार्ग से सन्ताजी घोरपड़े के अपनी जग़ीर जाते समय गुज़रने की सम्भावना थी। किन्तु उस मराठा सेनापति को अपने अग्रिम दल से यह सूचना पहले ही प्राप्त हो गयी थी, और उसने मुग़ल सेनाओं को पराजित कर नष्ट करने की योजना बना ली थी। अपने इस प्रयास में सन्ताजी घोरपड़े को मुग़ल सेनापतियों और अधिकारियों के आचरण से भी सहायता प्राप्त हुयी। ये सभी असतर्क और आराम-पसन्द थे।

क़ासिम खाँ ने औरंगजेब द्वारा भेजे गये उच्च अधिकारियों को अपने अतिथि के समान रखा था, और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और प्रभाव के अनुरूप उनका सत्कार करने का प्रयास किया था। उदाहरणार्थ, खानाज़ाद खाँ मुख्य वेतनाधिकारी रुहुल्ला खाँ-II प्रथम का पुत्र था, और बेग़म मुमताज़ महल की बहन का प्रपौत्र था। कासिम खाँ ने यह अनुभव किया कि उसके अतिथियों के लिये उसके शिविर में उपलब्ध सामग्री अपर्याप्त होगी। अतः, उसने यह आदेश दिया कि अदोनी के दुर्ग में स्थित उसके भण्डार से बहुमूल्य वस्तुएँ, जैसे नये कर्णाटकी तम्बू, सोने, चाँदी, और चीनी मिट्टी के पात्र, तथा अन्य सामग्री वहाँ लायी जाये, और मुग़ल शिविर से छह मील आगे, उस स्थान पर भेज दी जाये, जहाँ अगले दिन की कूच के बाद मुग़ल सेना को पहुँचना था।[72]

किन्तु अगले दिन सन्ताजी घोरपड़े ने मुग़ल सेना पर भीषण आक्रमण कर दिया। इस संघर्ष में उसने अपने रण-कौशल का परिचय देते हुये अपनी तीनों सैन्य टुकड़ियों के लिये ऐसी रणनीति बनायी कि वे एक-दूसरे की सहायता करते हुये मुग़लों पर टूट पड़ीं, और मुग़ल सेना उनका सामना नहीं कर सकी।[73]

सन्ताजी घोरपड़े ने अपनी सेना को तीन भागों में विभाजित किया था। इनमें से एक भाग को उस छोटे मुग़ल सैन्य शिविर पर आक्रमण करके उसे लूटने के लक्ष्य से भेजा गया, जो मुख्य मुग़ल पड़ाव से छह मील आगे स्थित था। यहाँ अदोनी दुर्ग से कासिम खाँ द्वारा मँगवायी गयी बहुमूल्य वस्तुएँ मुग़ल अधिकारियों के स्वागत-सत्कार के लिये रखी गयीं थीं। दूसरा भाग, मुख्य मुग़ल सेना से लड़ने के लिये भेजा गया। तीसरा भाग *रिज़र्व* के रूप में रखा गया; इस भाग को यह निर्देश दिया गया था कि आवश्यकता पड़ने पर वह युद्ध कर रही मराठा सेना की यथास्थान सहायता करे। इस संघर्ष में चित्तलदुर्ग के ज़मींदार, बर्माप्पा नायक, ने भी सन्ताजी घोरपड़े की सहायता की। इस नायक द्वारा सन्ताजी घोरपड़े की सहायता किये जाने के दो कारण प्रतीत होते हैं: (1) क़ासिम खाँ ने इस नायक को अपमानित किया था, और वह क़ासिम खाँ से उस अपमान का बदला लेना चाहता था; तथा/अथवा (2) सम्भवतः युद्ध में विजय के उपरान्त होने वाली लूट का एक भाग प्राप्त होने का लोभ उसे सन्ताजी घोरपड़े के पक्ष में ले आया। इस प्रकार मुग़ल सेना चारों ओर से घिर गयी, और मुग़ल सम्राट से उसका सम्पर्क बाधित हो गया।[74]

सूर्योदय से डेढ़ घण्टा बार प्रथम मराठा सैन्य टुकड़ी ने कासिम खाँ के अग्रिम शिविर पर आक्रमण कर दिया।[75] वहाँ उपस्थित रक्षकों तथा सेवकों को मराठों ने सरलतापूर्वक पराजित कर दिया, और अधिकाँश का वध कर दिया। मुग़ल अग्रिम शिविर को लूट लिया गया। जो सामग्री मराठा सैनिक अपने साथ उठा ले जाने में साक्षम नहीं थे, उसे शिविर में ही भस्म कर दिया गया। ऐसी सामग्री में भारी कर्णाटकी तम्बू सम्मिलित थे।

जब यह सूचना क़ासिम खाँ के पास पहुँची, तो वह बिना कोई योजना बनाये, तथा बिना खानाज़ाद खाँ, आदि, को जगाये, अपने अग्रिम शिविर की ओर बढ़ गया। किन्तु अभी वह कठिनाई से दो मील के लगभग ही आगे बढ़ पाया था, कि द्वितीय मराठा सैन्य टुकड़ी ने उस पर आक्रमण कर दिया, और भीषण युद्ध आरम्भ हो गया।

युद्ध के शोर से खानाज़ाद खाँ की नींद खुल गयी, और वह सब कुछ छोड़ कर क़ासिम खाँ की सहायता के लिए तेजी से बढ़ा। किन्तु मराठा सैनिक संख्या में मुग़ल सैनिकों से बहुत अधिक थे।[76] इसके अतिरिक्त मराठा सेनापति ने अपने दल में बड़ी संख्या में *काला पियादा* बन्दूकचियों को भी भर्ती कर रखा था। ये *काला पियादा* बन्दूकची दक्षिण के सर्वोत्तम निशानेबाज और सर्वाधिक वीर पैदल सैनिक माने जाते थे। साथ ही, सन्ताजी घोरपड़े ने अपने साथ अत्यन्त गतिशील अश्वारोही सेना भी ले रखी थी। *मासिर-ए-आलमगीरी*[77] में इस युद्ध का विस्तृत विवरण निम्नवत् दिया गया हैः

''एक भयंकर युद्ध लड़ा गया, और दोनों पक्षों के अनेक योद्धा मारे गये। यद्यपि मुग़ल सम्राट की सेनाओं ने स्थिर रहकर युद्ध किया और मराठा सैनिकों का विनाश भी किया, तथापि मराठा सेना न तो एक कदम पीछे हटी और न ही उसमें कोई अस्थिरता आयी। फिर सन्ताजी की रिज़र्व टुकड़ी ने शिविर पर आक्रमण कर दिया, और सब कुछ लूट लिया। यह समाचार जब भीषण युद्ध करते हुये क़ासिम खाँ और खानाज़ाद खाँ तक पहुँचा, तो उनकी दृढ़ता को आघात पहुँचा। उन्होनें आपस में विचार-विमर्श किया, और यह निर्णय लिया कि वे दोदेरी के उस छोटे दुर्ग की ओर जायें, जिसके निकट उनका अग्रिम शिविर लगाया गया था, और जहाँ एक जलाशय स्थित था। दो मील युद्ध करते हुये, वे संध्या को उस जलाशय तक पहुँचे और वहाँ पड़ाव डाला। मराठों ने आक्रमण बन्द कर दिया, किन्तु उन्होंने निकट ही अपना शिविर स्थापित किया।''[78]

भीमसेन भी लिखता है कि 'मुगलों ने युद्ध के सभी विचार त्याग दिये, अस्त-व्यस्तता में दोदेरी का मार्ग पकड़ा, अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करते हुये उस स्थान तक पहुँचे और घेर लिये गये'[79]

दोदेरी चित्तलदुर्ग से 22 मील पूर्व में, और सीधी रेखा में अदोनी से 96 मील दक्षिण में स्थित है। वर्तमान में भी उसके दक्षिण में एक जलाशय है। दोदेरी का दुर्ग छोटा था, और उसमें जितनी खाद्य सामग्री थी, वह मराठों से भागते हुये इन हज़ारों सैनिकों के लिये पर्याप्त नहीं थी। परिणामतः, वहाँ स्थित मुग़ल

रक्षक सेना ने इन भगोड़ों के लिये अपने दुर्ग के द्वार बन्द कर दिये। क़ासिम ख़ाँ और ख़ानाज़ाद ख़ाँ ने अपने अन्य अधिकारियों के साथ वह भोजन किया जो वे अपने साथ लाये थे। साधारण सैनिकों को खाने के लिये कुछ भीर नहीं मिला, और उन्हें जलाशय से जल पीकर ही सन्तोष करना पड़ा। हाथियों और घोड़ों के खाने के लिये घास, चना, आदि कहीं भी उपलब्ध नहीं था। रात का अन्तिम प्रहर बीतते-बीतते मराठों ने मुग़लों को पूरी तरह से घेर लिया। मुग़ल सेना आक्रमण का सामना करने के लिये पूरी तरह तैयार थी। किन्तु तीन दिन तक मराठों ने मुग़लों पर आक्रमण नहीं किया, अपितु वे मुग़ल शिविर के आस-पास घूमते रहे।

तभी बर्माप्पा नायक द्वारा भेजे गये कुछ हज़ार पैदल सैनिक मराठा सेना में सम्मिलित हो गये। इससे मराठों की संख्या और साहस अत्यधिक बढ़ गया और तब अवसर का लाभ उठाकर उन्होंने आक्रमण कर दिया। चौथे दिन, सूर्योदय से पूर्व पिछली बार से दस गुना अधिक *काला पियादा* सैनिकों (कनारी बन्दूकचियों) ने युद्ध करना आरम्भ कर दिया। मुग़ल तोपों का गोला-बारूद शिविर में ही लूट लिया गया था, और तोपची सैनिकों के पास जो थोड़ी-बहुत युद्धक सामग्री थी, वह शीघ्र ही समाप्त हो गयी। कुछ घण्टों के निष्फल प्रयास के बाद वे हताश होकर बैठ गये। मराठा बन्दूकचियों की गोली से कई मुग़ल सैनिक इसी अवस्था में मारे गये।[80] इस युद्ध में मिर्जा हसन और अनेक अन्य मुग़ल सरदार मारे गये। हताहत मुग़ल सैनिकों की संख्या इतनी अधिक थी, और मराठा आक्रमण का भय इतना अधिक व्याप्त था, कि जीवित मुग़ल सैनिकों ने अपने हत साथियों के शव युद्ध क्षेत्र से उठाने का साहस

नहीं किया। संघर्ष करते समय मुहम्मद मुराद ख़ाँ का पुत्र, ख़ुदादात, भी घायल हो गया। इस युद्ध ने क़ासिम ख़ाँ और ख़ानाज़ाद ख़ाँ को विचलित कर दिया।[81] यह सूचना प्राप्त होती है कि दोनों मुग़ल शिविरों में, दोदेरी की ओर पलायन करते समय, और जलाशय के तट पर हुये युद्ध में कुल मिलाकर मुग़ल सेना के लगभग एक-तिहाई सैनिक मारे गये थे।[82]

ख़फी ख़ाँ इस युद्ध का कुछ भिन्न विवरण देता है।[83] उसने लिखा है:-

> " शत्रु सेना की एक टुकड़ी क़ासिम ख़ाँ के शिविर पर टूट पड़ी...और दस से बारह हजार अश्वारोही सैनिकों ने ख़ानाज़ाद के असबाब पर आक्रमण कर दिया...। सात अथवा आठ हज़ार अन्य सैनिक दोनों ख़ानों के मध्य इस प्रकार डट गये कि दोनों में से कोई एक-दूसरे की सहायता के लिये नहीं जा सकता था ...। युद्ध सूर्यास्त तक भीषण रूप से चलता रहा...। पूरी रात सेनापतियों ने अपने हाथियों पर व्यतीत की, और सैनिकों ने अपने अश्वों की लगाम पकड़े हुये, जिससे रात्रि में होने वाले आक्रमण को रोका जा सके। प्रातःकाल मराठों ने पुनः आक्रमण आरम्भ किया...। इस प्रकार मुग़लों पर तीन दिन आक्रमण होते रहे। अन्त में {चौथे दिन} वे वहाँ से युद्ध करते हुये दोदेरी पहुँचे, और गढ़ी के निकट शरण ली। इन तीन दिनों में उनके पास भोजन नहीं था। इसी प्रकार तीन अथवा चार दिन और व्यतीत हुये जब मुगल रात और दिन गढ़ी की दीवार की आड़ लेकर मोर्चाबन्द रहे, और आक्रमणों को रोकते रहे। उनके ऊँटों,

घोड़ों और बैलों को मराठा उठा ले गये। गढ़ी के द्वार उनके लिये बन्द थे। अतः गढ़ी के पंसारियों ने दीवारों के ऊपर से फेंक कर अनाज उन्हें बेचा, और प्रत्येक सेर के बदले एक से दो रूपये तक की ऊँची कीमत वसूल की। चौथे अथवा पाँचवें दिन (अर्थात् प्रथम युद्ध के सातवें अथवा आठवें दिन) दोनों खानों ने गढ़ी में प्रवेश करने का निर्णय लिया।''

खाफी खाँ के विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध चार दिन तक चला।[84] किन्तु यह उचित नहीं प्रतीत होता। यह तर्क दिया गया है कि यदि युद्ध दो दिन से अधिक चला होता, तो सारे मुग़ल सैनिक मारे गये होते।[85] जे० एन० सरकार खफी खाँ के विवरण के स्थान पर राजकीय विज्ञप्तियों[86] और *अखबारात* में दिये गये विवरण को अधिक विश्वसनीय मानते हैं। उनके अनुसार खाफी खाँ द्वारा इस घटना का विवरण घटना से लगभग 30 वर्ष बाद लिखा गया था। सरकार इस विवरण को 'प्रतीयमानतः अशुद्ध' मानते हैं।[87]

जब मुग़ल अधिकारियों ने देखा कि उनकी स्थिति अरक्षणीय है तो उन्होंने गढ़ी में गुप्त रूप से प्रवेश करने का, और इस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा करने का निर्णय लिया। दुर्ग के द्वार न खुलने की दशा में उन्होंने जिस लज्जाजनक ढंग से गढ़ी में प्रवेश किया, उसका विवरण देते हुये खाफी खाँ लिखता है[88] कि उस संकट के समय कासिम खाँ, खानाज़ाद खाँ और सफ शिकन खाँ ने एक-दूसरे के निकट आकर, अपने से कुछ दूरी पर युद्ध कर रहे मोहम्मद मुराद तथा अन्य साथियों को सूचित किये बिना, गुप्त रूप से दुर्ग में प्रवेश करने की योजना बनायी। जो असबाब मराठा सैनिकों द्वारा लूटे जाने से रह गया था, उसे इन मुग़ल अधिकारियों

ने दुर्ग के भीतर यह प्रचारित करके भेजना आरम्भ कर दिया कि वे युद्ध करते समय स्वयं को उस सामग्री की रक्षा के उत्तरादायित्व से मुक्त रखना चाहते हैं। पहली रात कासिम खाँ गश्त के बहाने अपना नियत स्थान छोड़कर दुर्ग की ओर बढ़ा। द्वार के सम्मुख एकत्रित समूह की उपस्थिति में उस मार्ग से दुर्ग में प्रवेश करना उपयुक्त नहीं था। इस कारण क़ासिम खाँ ने रस्सियों के सहारे दीवार चढ़कर दुर्ग में प्रवेश किया। उसके उपरान्त खानाज़ाद खाँ और सफ़ शिकन खाँ ने दुर्ग के द्वार के सम्मुख एकत्रित अपने ही सैनिकों पर आक्रमण करके द्वार के मार्ग से दुर्ग में प्रवेश किया। यह सूचना पाकर अन्त में मोहम्मद मुराद और अन्य अधिकारियों ने भी गढ़ी में प्रवेश किया। सफ़ शिकन खाँ ने मोहम्मद मुराद से कहा, देखो कितनी वीरतापर्वूक हम यहाँ आ गये।' इस गर्वोक्ति पर मोहम्मद मुराद के भतीजे ने उत्तर दिया, 'जिस वीरता का तुम वर्णन कर रहे हो, उस पर धिक्कार है।'[89]

मुग़ल अधिकारियों के गढ़ी में प्रविष्ट होने के प्रथम दिन सभी वर्ग के मुग़ल सैनिकों को पिसे ज्वार और बाजरे की बनी रोटियाँ दी गयीं, और पशुओं के खाने के लिये घरों के छप्पर से निकाले गये नये और पुराने पुआल की व्यवस्था की गयी। किन्तु दूसरे दिन मनुष्य अथवा पशु किसी के लिये भी भोजन उपलब्ध नहीं था। मराठा सेनापति, सन्ताजी घोरपड़े, को इस बात की पूरी आशा थी कि दुर्ग में विद्यमान मुग़ल सैनिकों में भुखमरी फैलने से उन्हें पर्याप्त सहायता मिलेगी।

मराठा सैनिक मुग़ल सेना के कई पशु उठा ले गये थे। जो पशु मुग़लों के पास बच गये थे, उनमें से अधिकांश भोजन की

कमी के कारण मर गये। दुर्ग में मनुष्यों और पशुओं के लिये भोजन की सामग्री की इतनी अधिक कमी हो गयी थी, कि पशुओं ने 'एक-दूसरे की पूँछ को पुआल समझ कर चबाना आरम्भ कर दिया,' जबकि मुसलमान सैनिकों ने जीवित बचे उन बैलों को मार कर खा लिया, जो 'गधे की पूँछ के समान दुर्बल हो गये थे'। भूख से बेहाल अनेक मुग़ल सैनिकों ने दुर्ग की दीवार से कूद कर मराठा शिविर में शरण लेने का प्रयास किया, किन्तु मराठों ने उनका धन और सोना छीन कर उन्हें भटकने के लिये छोड़ दिया। खफी खाँ की सूचना है कि मराठा शिविर-बाज़ार के अनेक व्यापारी दुर्ग की दीवार के निकट जाकर ऊँची कीमत में फल और मिठाइयाँ, आदि, मुग़लों को बेचते थे। मुग़ल सैनिक चीथड़ों में बाँधकर सिक्के दीवार से नीचे फेंकते थे, और रस्सी के माध्यम से भोजन सामग्री ऊपर खींच लेते थे।[90]

मासिर-ए-आलमग़ीरी[91] की सूचना है कि कासिम खाँ को अफ़ीम की आदत थी। वास्तव में उसका जीवन इसी पर निर्भर करता था, और अफ़ीम न मिलने की स्थिति में दुर्ग में प्रवेश के तीसरे दिन ही उसकी मृत्यु हो गयी। किन्तु यह सन्देह भी व्यक्त किया गया है कि सन्ताजी घोरपड़े के विरुद्ध अपनी असफलता के कारण मुग़ल सम्राट, औरंगजेब, के क्रोध से बचने के लिये उसने अपने जीवन का अन्त कर लिया था।[92]

ख़फी खाँ *और मासिर-ए-आलमगीरी* से सूचना प्राप्त होती है कि कुछ ही समय बाद दोदेरी के दुर्ग में पानी की भी कमी हो गयी, और जो पानी उपलब्ध भी था, वह पीने योग्य नहीं था। खानाजाद खाँ को औरंगजेब से किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त

होने की कोई आशा नहीं रह गयी थी। अतः, विवश होकर उसने सन्ताजी घोरपड़े के पास शान्ति का प्रस्ताव भेजा। यह प्रस्ताव ले जाने के लिये उसने अपने दीवान और मुग़ल सेना के एक दक्खिनी नायक को चुना।

आरम्भ में मुग़ल अधिकारियों को दुर्ग से सुरक्षित बाहर जाने देने के लिये सन्ताजी घोरपड़े ने एक लाख *हुण* के अतिरिक्त मुग़ल सेना के सभी हाथी, घोड़े, और सम्पत्ति की माँग की। किन्तु दक्खिनी नायक ने चुपचाप उससे मँत्रणा कर उसे सलाह दी कि उसे अपनी माँग बढ़ा देनी चाहिए, क्योंकि उसने मूलतः जो माँग रखी थी, वह उसे केवल खानाज़ाद खाँ की फिरौती के रूप में मिल सकती थी। उसकी सलाह मानकर सन्ताजी घोरपड़े ने पराजित मुग़ल सेना के हाथी, घोड़े और मणियों के अतिरिक्त 20 लाख रुपये की माँग रखी।[93] खफी खाँ 7,00,000 रुपये की चर्चा करता है,[94] जबकि *जेधे शकावली* में यह राशि मात्र 1,00,000 रुपये बतायी गयी है।[95] प्रत्येक मुग़ल अधिकारी को अपनी फ़िरौती के *इकरार-नामे* पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त और अपने किसी सम्बन्धी अथवा प्रमुख सेवक को ज़मानत के रूप में छोड़ने के पश्चात् केवल एक अश्व पर आरूढ़ होकर और केवल शरीर पर धारण किये गये वस्त्रों के साथ दुर्ग से बाहर जाने की अनुमति दी गयी।[96]

सन्ताजी घोरपड़े ने यह सुनिश्चित किया कि मराठों की ओर से सन्धि की सभी शर्तों का निष्ठापूर्वक पालन किया जाये। किन्तु मुग़लों की ओर से ऐसा नहीं किया गया। खफी खाँ का उल्लेख है कि सन्ताजी घोरपड़े को फिरौती की आधी राशि भी नहीं चुकायी

गयी, क्योंकि कई बन्धक मराठा सेना से बचकर भाग आये और {शीघ्र ही} सन्ताजी घोरपड़े की हत्या कर दी गयी। किन्तु उसके द्वारा मुग़लों से अधिकृत की गयी सम्पत्ति की कीमत 50,00,000 अथवा 60,00,000 थी।[97]

मासिर-ए-आलमगीरी[98] से ज्ञात होता है कि क़ासिम खाँ की संकटपूर्ण स्थिति की सूचना पाकर औरंगजेब ने दोदेरी से 280 मील उत्तर में स्थित इस्लामपुरी के अपने शिविर से हमीद-उद्-दीन खाँ को, और हैदराबाद से रूस्तम दिल खाँ को, कासिम खाँ की सहायता के लिये कूच करने के आदेश दिये थे। किन्तु उन्हें वहाँ पहुँचने में बहुत देर हो गयी, और वे क़ासिम खाँ की किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सके। दोदेरी जाते समय उन्हें खानाजाद खाँ अदोनी की ओर लौटता हुआ मिला। अदोनी पहुँच कर खानाज़ाद खाँ के सैनिकों ने वहाँ नियुक्त अधिकारियों और वहाँ के निवासियों से भेंट और सहयोग ज़बरन प्राप्त किया और इससे उन्हें नये वस्त्र और अस्त्र-शस्त्र उपलब्ध कराये गये।[99]

मासिर-ए-आलमगीरी[100] से ऐसा आभास मिलता है कि सन्ताजी घोरपड़े और क़ासिम खाँ-खानाज़ाद खाँ के मध्य यह युद्ध 19 जनवरी 1696 के बाद हुआ। इसकी सूचना है कि क़ासिम खाँ और खानाज़ाद खाँ की सेनाएँ मराठा सेना से सम्पर्क में आने से पूर्व 23 जमदी-उस-सानी (=19 जनवरी 1696) को एक-दूसरे से मिली थीं किन्तु *अखबारात*[101] की सूचना है कि इस तिथि को क़ासिम खाँ की सहायता के लिये औरंगजेब द्वारा भेजे गये अधिकारी, हमीद-उद्-दीन खाँ और रूस्तम दिल खाँ, सन्ताजी घोरपड़े के बन्धन से मुक्त होकर अदोनी की ओर जाते हुये

खानाज़ाद खाँ को सुरक्षापूर्वक अदोनी पहुँचाकर औरंगजेब के पास वापस ब्रह्मपुरी पहुँच गये थे। *जेधे शकावली*[102] के अनुसार सन्ताजी घोरपड़े ने कासिम खाँ और खानाजाद खाँ को पौष, शुक्ल पक्ष की एकादशी, शक संवत् 1617 (=5 जनवरी 1696) के बाद बन्दी बनाया था। इस आधार पर यह सुझाव दिया गया है कि सन्ताजी घोरपड़े ने दोदेरी के युद्ध में विजय 5 जनवरी 1696 से पूर्व नहीं प्राप्त की होगी।[103] किन्तु इस बात के साक्ष्य उपलब्ध हैं कि क़ासिम खाँ की मृत्यु इस तिथि से पूर्व हो चुकी थी। 15 दिसम्बर 1695 की *मद्रास डायरी* में मराठों के हाथों कासिम खाँ की पराजय का उल्लेख मिलता है। जे0 एन0 सरकार कासिम खाँ की मृत्यु की तिथि 20 नवम्बर 1695 के आस-पास रखते हैं।[104] किन्तु *मद्रास डायरी* में दी गयी सूचना के आधार पर निश्चयपूर्वक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कासिम खाँ की पराजय दिसम्बर 1695 के मध्य से पूर्व किसी समय हो चुकी थी।

हमने ऊपर देखा कि औरंगजेब ने हिम्मत खाँ को कासिम खाँ की सहायता के लिये जाने का आदेश दिया था, किन्तु हिम्मत खाँ के दोदेरी पहुँचने से पूर्व ही सेरा का गर्वनर पराजित हो चुका था, और उसकी मृत्यु हो गयी थी। मुग़ल सेना की इस पराजय से औरंगजेब बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने पराजित होने के उपरान्त उससे भेंट करने की इच्छा रखने वाले अपने अधिकारियों को बिना भेंट किये वापस लौटा दिया।[105] मुग़ल सम्राट ने हिम्मत खाँ को आदेश दिया कि वह सन्ताजी घोरपड़े को पराजित कर उसे दण्डित करे।[106] किन्तु हिम्मत खाँ के पास सेना का अभाव था। उसके अश्वारोही सैनिकों की संख्या मात्र 1,000 से कुछ ही अधिक रही

होगी। जब उसने यह अनुभव किया कि औरंगजेब के आदेशों का पालन कर सन्ताजी घोरपड़े से संघर्ष करना सम्भव नहीं होगा, तो उसने दोदेरी से 40 मील पश्चिम में स्थित बासवपाटन के दुर्ग में शरण ली।

दोदेरी के दुर्ग पर अधिकार करने के बाद सन्ताजी घोरपड़े ने अपने सैनिकों की एक टुकड़ी दुर्ग की रक्षा के लिये वहाँ छोड़ दी। दूसरी सैन्य टुकड़ी को उसने बासवपाटन में हिम्मत खाँ की गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिये, और उसका विरोध करने के लिये पश्चिम की ओर भेजा। एक तीसरी सैन्य टुकड़ी को इस आदेश के साथ उत्तर की ओर भेजा गया कि वह हमीद-उद्-दीन खाँ पर दृष्टि रखे, और आवश्यकता पड़ने पर उसका मुकाबला करे।

3 फरवरी 1696 के *अखबारात* से सूचना मिलती है कि 20 जनवरी 1696 को सन्ताजी घोरपड़े, 10,000 अश्वारोही सैनिक, और लगभग उतने ही पैदल सैनिक साथ लेकर बासवपाटन पहुँचा। उसके *काला पियादा* सैनिकों ने एक पहाड़ी पर मोर्चा जमाया। किन्तु हिम्मत खां ने उन पर आक्रमण कर दिया, और लगभग 500 *काला पियादा* सैनिकों को मार कर उन्हें पहाड़ी छोड़ कर भागने पर विवश किया।

मुग़ल सेनापति, हिम्मत ख़ाँ, ने तब यह आदेश दिया कि उसके हाथी को उस स्थान पर ले जाया जाये, जहाँ सन्ताजी घोरपड़े युद्ध कर रहा था। किन्तु मराठा सेनापति के सामने पहुँचने से पूर्व ही वह सिर में गोली लगने से घायल हो गया, और मूर्छित होकर अपने हाथी के हौदे में गिर गया। उसका महावत हाथी को युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाना चाहता था। तभी उससे मुग़ल टुकड़ी के

जमादार, अली बाकी, ने कहा कि वह हाथी को लेकर आगे चला जाये, क्योंकि खान अभी जीवित था। अली बाकी को पूर्ण विश्वास था कि वह मराठों को पीछे धकेल देगा। किन्तु कुछ ही समय बाद वह भी घायल होकर नीचे गिर पड़ा, और मराठों ने उसे बन्दी बना लिया। सन्ताजी घोरपड़े को भी इस संघर्ष में बाणों से दो घाव लगे।

अपने सेनापति के घायल होने से मुग़ल सैनिकों का उत्साह समाप्त हो गया। वे युद्ध छोड़कर अपने खन्दक में वापस लौट आये। मध्य रात्रि के लगभग घायल हिम्मत खाँ की मृत्यु हो गयी। उस के लगभग 300 सैनिक उसी समय सेना छोड़कर भाग गये। शेष सैनिकों ने कुछ दिनों तक अपने शिविर की रक्षा की। विजय प्राप्त करने के उपरान्त, और एक योग्य मुग़ल सेनापति को मारने में सफलता प्राप्त करने के बाद मराठों ने अपनी घेराबन्दी समाप्त कर दी, और हिम्मत खाँ के असबाब को लूट कर वहाँ से चले गये।[107]

जे० एन० सरकार ने सन्ताजी घोरपड़े द्वारा हिम्मत खाँ की पराजय और हिम्मत खाँ की मृत्यु का उपरोक्त विवरण मुख्यतः *अखबारात* के आधार पर दिया है। कुछ तथ्य *मासिर-ए-आलमगीरी* से भी जोड़े हैं। किन्तु खफी खाँ द्वारा इस घटना के विवरण को उन्होंने पूर्णतः अस्वीकार कर दिया है। साथ ही *मासिर-ए-आलमगीरी* में दी गयी कुछ सूचनाओं को भी उन्होंने सन्दिग्ध माना है।[108] खफी खाँ के अनुसार, हिम्मत खाँ के आगमन की सूचना पाकर सन्ताजी घोरपड़े ने अपनी सेना की दो टुकड़ियाँ बनायी, और दो मार्गों से द्रुत गति से हिम्मत खाँ का सामना करने के लिये बढ़ा।

32 मील की दूरी पर हिम्मत खाँ का संघर्ष पहली मराठा सैन्य टुकड़ी से हुआ, जिसका नेतृत्व स्वयं सन्ताजी घोरपड़े कर रहा था। भीषण युद्ध हुआ जिसमें दोनों पक्षों से सैनिक बड़ी संख्या में मारे गये। मराठा सैनिक अपनी दूसरी सैन्य टुकड़ी की ओर भागे, और उनका पीछा करता हुआ हिम्मत खाँ भी वहाँ पहुँच गया। सन्ताजी घोरपड़े ने हिम्मत खाँ के मार्ग में घने वन में अनेक स्थानों पर चुने हुये निशानेबाज तैनात कर रखे थे। पेड़ पर चढ़े एक *कालिया* बन्दूकची ने हिम्मत खाँ के माथे पर गोली मार दी। उसका असबाब, हाथी, और भण्डार मराठों द्वारा लूट लिया गया।[109] जे० एन० सरकार खफी खाँ के इस वर्णन को 'गढ़ी हुई गप' मानते हैं।[110]

जब औरंगजेब ने हिम्मत खाँ की विकट स्थिति के विषय में सुना था, तो उसने 22 जनवरी 1696 को हमीद-उद्-दीन खाँ को हिम्मत खाँ की सहायता के लिये वासवपाटन पहुँचने का आदेश दिया था। हमीद-उद्-दीन खाँ ने अपना भारी असबाब अदोनी के दुर्ग में छोड़ा, और फिर 1 फरवरी 1696 को वह 12,000 सैनिकों के साथ वासवपाटन में मुग़ल सेना की सहायता के लिये उस स्थान की ओर बढ़ा। औरंगजेब को हिम्मत खाँ की मृत्यु की सूचना 28 जनवरी 1696 को ही प्राप्त हो गयी थी। अतः, यह सम्भव है कि हमीद-उद्-दीन खाँ भी बासवपाटन की ओर कूच करने से पहले मुग़ल सेनापति, हिम्मत खां, की मृत्यु के विषय में जान गया होगा। बासवपाटन में सैयद अज़मत-उल्ला और किलेदार, मोहम्मद एऊज़[111] वीरतापूर्वक मुग़ल शिविर की रक्षा कर रहे थे।

अखबारात की सूचना है कि बासवपाटन से लगभग 20 मील पहले सन्ताजी घोरपड़े ने मुग़ल सेना पर आक्रमण कर दिया। सम्भवतः यह स्थान चकरगोला था, जो तुंगभद्रा के तट पर हरिहर से चार मील पूर्व में स्थित था। हरिहर स्वयं बासवपाटन से 22 मील पूर्व में स्थित था।[112] सन्ताजी घोरपड़े का यह आक्रमण विफल रहा। मराठा सेनापति को पराजित कर लगभग आठ मील पीछे धकेल दिया गया। मुग़लों ने मराठा शिविर को लूट लिया। सन्ताजी घोरपड़े को स्वयं खर्गदुर्ग (?) की ओर भागना पड़ा। मृत मुग़ल सैनिकों का अन्तिम संस्कार करने के लिये, तथा अपने घायल सैनिकों का उपचार करने के लिये, हमीद-उद्-दीन खाँ दो अथवा तीन दिन वहाँ रुकने के पश्चात् बासवपाटन की ओर बढ़ा।

सन्ताजी घोरपड़े मुग़ल सेना से युद्ध करने के लिये पुनः बासवपाटन पहुँच गया। किन्तु हमीद-उद्-दीन खाँ ने दुर्ग से बाहर निकल कर उसका सामना किया, और वहाँ से भागने पर विवश किया। मराठों के 200 अश्व और बड़ी संख्या में अस्त्र-शस्त्रों पर भी मुग़लों का अधिकार हो गया। जब औरंगजेब को इस सफलता की सूचना प्राप्त हुयी, तो उसने दरबार में हमीद-उद्-दीन खाँ की प्रशंसा की और जुल्फ़िकार खा को लज्जित करने के लिये उसे यह लिख कर भेजा, 'एक सैनिक इस प्रकार युद्ध करता है!''[113]

किन्तु हमीद-उद्-दीन खाँ के हाथों पराजित होने से सन्ताजी घोरपड़े के उत्साह में कमी नहीं आयी थी। *अखबारात* से ज्ञात होता है कि 6 मार्च 1696 को सन्ताजी ने पुनः हमीद-उद्-दीन खाँ पर आक्रमण कर दिया। किन्तु पूर्व की भांति यह आक्रमण भी मुगलों ने विफल कर दिया। इस संघर्ष में मराठा सैनिक बड़ी संख्या में

मारे गये, तथा घायल हुये।[114]

इसी बीच औरंगजेब ने पन्हाला में व्यस्त शाहज़ादा बिदार बख्त को बासवपाटन पहुँचने का आदेश दिया। किन्तु जब तक बिदार बख्त चित्तल दुर्ग होता हुआ बासवपाटन पहुँचा, तब तक सन्ताजी घोरपड़े जिंजी की दूसरी मुग़ल घेराबन्दी उठाने में सहायता प्रदान करने, तथा जुल्फ़िकार खाँ से युद्ध करने, राजाराम के पास जा चुका था। उसने हमीद-उद्-दीन खाँ को सन्ताजी घोरपड़े का पीछे करने का आदेश दिया।[115] किन्तु बाद में उसे बालाघाट में ही रुकने का निर्देश हुआ।

जून 1696 में मराठा सेना तंजावुर के निकट सक्रिय दिखायी देती है।[116] जुलाई 1696 में सोंढ़े के देसाई, सदाशिव नायक, को मराठों द्वारा धमकी दी गयी कि वह मुग़ल अधिकारियों को राजस्व का भुगतान न करें, बल्कि समस्त राजस्व का भुगतान मराठों को करे।[117] कुछ विद्वानों की मान्यता है कि अगस्त 1696 के पश्चात् कर्णाटक में मुग़लों तथा मराठों के बीच संघर्ष बन्द हो गये।[118] यह बात कुछ मासों के लिये उपयुक्त मानी जा सकती है, किन्तु लम्बे समय के सन्दर्भ में नहीं। नवम्बर 1697 में जुल्फ़िकार खाँ ने जिंजी पर मुग़ल अधिकार स्थापित करने के गम्भीर प्रयास आरम्भ कर दिये थे,[119] और इस कार्य में अन्ततः उसे सफलता भी प्राप्त हुयी।

ऊपर हमने देखा कि मई 1696 में सन्ताजी घोरपड़े और उसके साथियों ने *सेनापति* पद के लिये अपने प्रमुख प्रतिद्वन्दी, धनाजी जाधव, को पराजित कर कर्णाटक से महाराष्ट्र जाने के लिये बाध्य कर दिया था।[120] किन्तु 1696 के अन्त के लगभग सन्ताजी

घोरपड़े के लिये राजाराम के साथ कार्य करना कठिन हो गया, और वह जिंजी की घेराबन्दी उठाये बिना कर्णाटक से लौट गया। राजाराम तथा जुल्फ़िकार ख़ाँ ने सन्धि के प्रयास किये, किन्तु औरंगजेब ने उन्हें अस्वीकार कर दिया, और नवम्बर 1697 के आरम्भिक दिनों में मुग़ल सेनापति जिंजी पर अधिकार करने की तैयारी गम्भीरतापूर्वक करने लगा।[121] जिंजी के लिये होने वाले इस मराठा-मुग़ल संघर्ष में यद्यपि अब सन्ताजी घोरपड़े की कोई भूमिका नहीं रह गयी थी, तथापि इस घटना की चर्चा अधूरी छोड़ना उचित नहीं प्रतीत होता, और इस कारण संक्षेप में जिंजी के पतन का वर्णन अभीष्ट है।

जुल्फ़िकार ख़ाँ ने स्वयं जिंजी दुर्ग के उत्तर द्वार के सम्मुख सिंहवरम् पर्वत की ओर अपनी सेना स्थित की। रामसिंह हाड़ा को उसकी सेना के साथ दुर्ग के पश्चिम में शैतानदरी की ओर नियुक्त किया गया। दाऊद ख़ाँ पन्नी को जिंजी से एक मील दक्षिण में चिक्कली दुर्ग के निकट नियुक्त किया गया। दाऊद ख़ाँ पन्नी ने तोपख़ाना और घेराबन्दी के लिये आवश्यक सामग्री के अभाव में भी दुस्साहस के साथ चिक्कली दुर्ग पर आक्रमण कर उसे एक ही दिन में अधिकृत कर लिया, और जिंजी में आ उपस्थित हुआ। उसने जिंजी के दक्षिणी दुर्ग, चन्द्रयान दुर्ग, के समक्ष खाई खोद कर अपने सैनिक नियुक्त किये। भीमसेन का कथन है कि यदि जुल्फ़िकार ख़ाँ चाहता तो अगले ही दिन जिंजी पर अधिकार कर सकता था।[122] किन्तु उसकी गुप्त नीति यह थी कि जिंजी की घेराबन्दी को जितने दीर्घ काल तक खींचा जा सकता हो, खींचा जाये, जिससे उसकी सेना उसके पास रहे, उसे समस्त सुविधाएँ मिलती रहें, और उसे सम्राट की आज्ञा पर किसी नये सैन्य

अभियान पर जाकर कष्ट न सहने पड़ें।[123] इसलिए वह जिंजी पर आक्रमण तो करता रहा, किन्तु उसने मराठों को सूचित कर दिया था कि उसके आक्रमण दिखावा मात्र थे। उसने राजाराम को यह आश्वासन भी दिया था, कि दुर्ग पर अधिकार करना जब अपरिहार्य हो जायेगा, तो वह अधिकार करने से पूर्व राजाराम को सुरक्षित स्थान पर जाने के लिये पर्याप्त समय भी देगा।

जुल्फ़िकार खाँ द्वारा राजाराम की गुप्त रूप से सहायता किये जाने का सम्भावित कारण बताते हुये सुझाव दिया गया है कि मुग़ल सेनापति अपने दीर्घायु सम्राट की मृत्यु निकट जानकर अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लक्ष्य से मराठों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयास कर रहा था। वह जान रहा था कि औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों के बीच उत्तराधिकारी के लिए संघर्ष होगा। वह मराठों की शक्ति से भी भली-भांति परिचित था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् वह कर्णाटक में अपने लिये एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करना चाहता था। मुग़लों की सेवा में उसे अपना कोई भविष्य नहीं दिखायी दे रहा था, और स्वतन्त्र राज्य की स्थापना में वह मराठों की सहायता का आकांक्षी था। इसी कारण वह जिंजी के लिये मराठा-मुग़ल संघर्ष में तटस्थ हो गया था, और जब दुर्ग पर आक्रमण का दिखावा करना आवश्यक हो जाता था, तो वह आक्रमण की पूर्व सूचना मराठों को दे देता था, जिससे वे सुरक्षा के समुचित प्रबन्ध कर लें।[124] इस प्रकार जिंजी की घेराबन्दी दो मास और चलती रही।

कुछ स्रोतों से ज्ञात होता है कि जुल्फ़िकार खाँ के सहायक, दाऊद खाँ ने जिंजी पर अनेक बार आक्रमण किये, किन्तु जुल्फ़िकार

खाँ हर बार यह गुप्त सूचना मराठों को पहुँचा देता था, जिस कारण दाऊद खाँ पन्नी के ये आक्रमण विफल रहते थे, और उसके सैनिक बड़ी संख्या में मारे जाते थे।[125] किन्तु मुग़ल शिविर में उपस्थित भीमसेन दाऊद खाँ के केवल एक आक्रमण की सूचना देता है।[126]

जब जुल्फ़िकार खाँ के लिये युद्ध का दिखावा मात्र करना सम्भव नहीं रहा और उसे यह आशंका होने लगी कि यदि घेराबन्दी का परिणाम नहीं निकला तो औरंगजेब क्रोधित होकर उसे अपमानित तथा दण्डित कर सकता है, तो उसने वास्तव में जिंजी पर अधिकार के लिये प्रयास किया। आक्रमण की अग्रिम सूचना पाकर राजाराम 26 दिसम्बर 1697[127] को अपने उच्च अधिकारियों के साथ गुप्त रूप से जिंजी छोड़कर वेल्लूर चला गया। किन्तु उसका परिवार जिंजी में ही रह गया।

जुल्फ़िकार खाँ द्वारा आक्रमण का आदेश प्राप्त होने पर दाऊद खाँ पन्नी ने दक्षिण की ओर से चन्द्रयान दुर्ग की दीवार चढ़ने का प्रयास किया और इस काम में इतना शोर मचा कि दुर्ग के रक्षकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और वे रक्षा के लिये उधर आ गये। इसका लाभ उठाकर राव दलपत कृष्णगिरि के दुर्ग की उत्तरी दीवार चढ़कर दुर्ग में प्रविष्ट हो गया, और घोर संघर्ष के पश्चात् उस पर अधिकार करने में सफल रहा। दुर्ग की रक्षक-सेना कालाकोट नामक एक भीतरी दुर्ग में प्रवेश कर गयी, किन्तु राव दलपत के बुन्देला सैनिक उन्हीं के साथ उस दुर्ग में प्रविष्ट हो गये, और उस पर अधिकार कर लिया। शेष मराठों ने सबसे ऊँचे दुर्ग, राजगढ़, में शरण ली।[128]

इस बीच दाऊद खाँ पन्नी चन्द्रयान दुर्ग में प्रविष्ट होकर जिंजी नगर से होता हुआ कृष्णगिरि की ओर बढ़ा। वहाँ के निवासी कृष्णगिरि (पर्वत) के शीर्ष पर पहुँच गये, किन्तु वहाँ भी स्वयं को सुरक्षित न पाकर उन्होंने समर्पण कर दिया। वहाँ पर संग्रहीत बहुत सा धन, असबाब, अश्व, तथा ऊँटों पर मुगलों का अधिकार हो गया।[129]

राजाराम का परिवार जिंजी के तीन दुर्गों में से सर्वोच्च और सर्वाधिक सुदृढ़, राजगढ़, में था। मुगल सेनाओं ने अब इस दुर्ग को घेर लिया, और मराठा राजपरिवार के बचने की कोई आशा नहीं रह गयी। राव दलपत का अधिकार कालाकोट के द्वार पर था। उत्तरी द्वार से प्रविष्ट होने वाला जुल्फ़िकार खाँ राजगढ़ के प्रवेश द्वार पर स्थित था। भीमसेन की सूचना है कि जुल्फ़िकार खाँ ने शैतानदरी के मार्ग से जिंजी में प्रवेश किया था, और राव दलपत से भेंट होने पर उसने अपने सरदार को बधाई दी। इसके पश्चात् दोनों ने एक-साथ कालाकोट में प्रवेश किया।[130] किन्तु जे० एन० सरकार इसे त्रुटिपूर्ण सूचना मानते हैं। उनके अनुसार शैतानदरी के सम्मुख रामसिंह हाड़ा तैनात था, जबकि उससे एक मील उत्तर-पूर्व में स्थित उत्तरी द्वार अथवा वेल्लूर द्वार पर जुल्फ़िकार खाँ स्वयं उपस्थित था। अतः, उसने उत्तरी द्वार से ही जिंजी में प्रवेश किया होगा, और भीमसेन में वर्णन में वेल्लूर द्वार को त्रुटिवश शैतानदरी लिखा गया है।[131]

अन्ततः, रामसिंह हाड़ा ने लकड़ी के एक पटरे की सहायता से दुर्ग की परिखा पार की, और राजगिरि के शीर्ष पर पहुँच गया। मराठा राजपरिवार ने सुरक्षा की याचना की। उन्हें सुरक्षा का

आश्वासन दिया गया, और उन्हें राजगढ़ से नीचे लाने के लिये पालकियाँ उपलब्ध करायी गयीं। राजाराम की चार पत्नियाँ, तीन पुत्र, तथा दो पुत्रियाँ दुर्ग से बाहर निकलीं, और उन्हें 'सम्मानपूर्वक कैद (?)' में रखा गया। राजाराम की एक अन्य पत्नी ने बन्दी बनाये जाने की अपेक्षा दुर्ग के शीर्ष से खाई में कूदना पसन्द किया। उसका सिर बाहर निकली एक शिला से टकरा गया, और उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। किन्तु उसका शव एक वृक्ष में अटक गया, और उस स्थान के दुर्गम होने के कारण उसे उतार कर अन्त्येष्टि भी नहीं की जा सकी। दुर्ग में लगभग 4,000 स्त्री, पुरुष, तथा बच्चे उपस्थित थे, किन्तु उनमें संघर्ष करने योग्य कोई भी नहीं था।[132]

दुर्ग पर अधिकार करने के पश्चात् जुल्फ़िकार खाँ ने वहाँ से प्राप्त सभी वस्तुओं और अस्त्र-शस्त्रों, आदि, का संग्रह करवाया। युद्ध में दुर्ग को हुयी क्षति की मरम्मत कराने के पश्चात् उसने जिंजी की सुरक्षा के लिए वहाँ सेण्ट थॉम में निर्मित रॉकेट और बारूद की व्यवस्था की।[133] इसके बाद जुल्फ़िकार खाँ वाण्डीवाश लौट आया, और फिर वेल्लूर से गरमकोण्डा तक राजाराम का पीछा किया। किन्तु फरवरी 1698 में मराठा राजा सुरक्षित विशालगढ़ पहुँच गया, और इस प्रकार औरंगजेब जिंजी विजय के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त करने में, अर्थात् राजाराम को बन्दी बनाने, में सफल नहीं हुआ।[134]

जिंजी के पतन की तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। जे० एन० सरकार के अनुसार, *मासिर-ए-आलमगीरी*[135] में स्पष्ट बताया गया है कि जिंजी पर अधिकार औरंगजेब के शासनकाल के

इकतालीसवें वर्ष में 6 शाबान को हुआ, जिससे 7 फरवरी 1698 की तिथि आती है। *मद्रास डायरी* में 2 जनवरी 1698 को लिखा गया है कि उस दिन मुग़ल शिविर में अमीर जहाँ से प्राप्त पत्र से ज्ञात हुआ है कि जिंजी में एक को छोड़कर सभी दुर्गों पर मुग़ल सेना ने अधिकार कर लिया है, और शेष बचे दुर्ग पर भी शीघ्र अधिकार होने की आशा है। इससे सरकार की 7 फरवरी 1698 की तिथि को स्वीकार करने में कुछ कठिनाई होती है। इस कारण सरकार ने सुझाव दिया है कि यदि *मासिर-ए-आलमगीरी* में शाबान के स्थान पर रजब पढ़ा जाये तो 08 जनवरी 1698 की तिथि प्राप्त होगी।।[136] किन्तु जी० टी० कुलकर्णी के अनुसार *मासिर-ए-आलमगीरी* में दी गयी तिथि 16 शाबान (=18 फरवरी 1698) है, न कि सरकार द्वारा बतायी गयी 6 शाबान,[137] जो निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण है।

भीमसेन के अनुसार जिंजी का पतन संक्रान्ति के दिन हुआ था,[138] और जे० एन० सरकार इस संक्रान्ति की तिथि 2 जनवरी 1698 अथवा 31 जनवरी 1698 बताते हैं।[139] किन्तु *गदाधर प्रह्लाद शकावली* के अनुसार जुल्फिकार खाँ ने जिंजी पर अधिकार पौष, कृष्ण पक्ष, 12, शक संवत् 1619 (=30 दिसम्बर 1697) को किया था,[140] और यह दिन भी संक्रान्ति था।[141] *मद्रास डायरी* भी 2 जनवरी तक एक दुर्ग (राजगढ़ ?) को छोड़कर जिंजी के शेष सभी दुर्गों पर जुल्फ़िकार खाँ के अधिकार की सूचना देती है।[142] *लेटर्स टू फोर्ट सेण्ट जार्ज* में 5 जनवरी 1698 के एक पत्र में लिखा गया है कि जुल्फ़िकार खाँ ने जिंजी अधिकृत कर लिया है, और फोर्ट सेण्ट डेविड के अधिकारियों को आक्रमण से आगाह किया है।[143] अतः जे० एन० सरकार द्वारा *मासिर-ए-आलमगीरी* के

आधार पर जिंजी के पतन के लिये सुझायी गयी 7 फरवरी 1698 की तिथि बाद की प्रतीत होती है। जी० टी० कुलकर्णी इसके लिये 30 दिसम्बर 1697 की तिथि सही मानते हैं।[144] किन्तु *मद्रास डायरी* से स्पष्ट है कि 2 जनवरी 1698 तक जिंजी का एक दुर्ग (राजगढ़ ?) जुल्फ़िकार खां द्वारा अधिकृत नहीं किया जा सका था, और फोर्ट सेण्ट जार्ज के 5 जनवरी 1698 के पत्र में जुल्फ़िकार खां द्वारा जिंजी को अधिकृत करने और पूरे क्षेत्र के पूर्ण अधिकारी बन जाने की सूचना दी गयी है।[145] भीमसेन की एक संक्रान्ति भी 2 जनवरी 1698 को पड़ती है। अतः मेरी दृष्टि में जिंजी का पूर्ण पतन 2 जनवरी 1698 और 5 जनवरी 1698 के मध्य हुआ होगा।

लगभग एक वर्ष बाद जुल्फ़िकार खां को औरंगजेब का आदेश प्राप्त हुआ कि वह जमशीद खां को जिंजी का उत्तरदायित्व सौंप कर सम्राट की सेवा में उपस्थित हो, और 25 अप्रैल 1699 को वह जिंजी छोड़कर औरंगजेब से भेंट करने चल पड़ा।[146]

टिप्पणी

1. जी० टी० कुलकर्णी, *द मुग़ल–मराठा रिलेशन्स,* पृ० 117–18.
2. *मासिर–ए–आलमगीरी,* पृ० 338.
3. *शिव चरित्र साहित्य,* XII, संख्या 46, पृ० 26
4. *प्रोसीडिंग्स ऑव द इण्डियन हिस्टॉरिकल रिकाड्‌र्स कमीशन,* XXII, पृ० 84.
5. देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 119 तथा टिप्पणी 87.
6. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 30–31.
7. *शिव चरित्र साहित्य,* XII, संख्या 89, पृ० 28.
8. *पूर्वोक्त,* संख्या 51, पृ० 29.
9. *पूर्वोक्त,* संख्या 52, पृ० 30.
10. *परवाना,* वर्ष 35, रमजान 8; देखिए, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 119–20.
11. *अखबारात,* वर्ष 35, रबी II, 25
12. *खफ़ी खां,* II, पृ० 417; देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 120.
13. *ऐतिहासिक पत्रे यादि वगैरे,* संख्या 4, पृ० 6. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 120–21 द्वारा उद्धृत।
14. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 31.
15. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 121.
16. *अखबारात,* वर्ष 36, जिल्हिज 26.
17. *अखबारात,* वर्ष 36, रबी I, 21; जी०टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 121.

18. देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 31–32.

19. *शिव चरित्र साहित्य,* VI, देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 121.

20. *अखबारात,* वर्ष 36, रबी I, 23.

21. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 32–33.

22. *पूर्वोक्त,* पृ० 33.

23. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 81, टिप्पणी 105.

24. अधिक से अधिक दो दिन। देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 33.

25. *पूर्वोक्त,* पृ० 33.

26. *पूर्वोक्त,* पृ० 32–33.

27. *पूर्वोक्त,* पृ० 34.

28. ऊपर, अध्याय – 3.

29. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 37.

30. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 76.

31. *दिलकश,* पृ० 114ए।

32. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 37

33. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 77.

34. *दिलकश,* पृ० 114 बी; *अखबारात,* वर्ष 38, जिल्हिज 5.

35. *दिलकश,* पृ० 115 बी; *अखबारात,* वर्ष 38, सफर 12.

36. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 287; *दिलकश,* पृ० 123ए; मनुची, *स्टोरिया डो मोगोर,* III, पृ० 271; *मद्रास रिकाड्र्स,* 5 नवम्बर 1696.

37. *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 78-79.

38. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 114 और आगे।

39. *शिव चरित्र साहित्य,* V, संख्या 729, पृ० 81-82.

40. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 31.

41. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 115.

42. *मद्रास डायरी,* 5 दिसम्बर 1695. देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 80.

43. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 38.

43a. *अखबारात,* 18 जनवरी 1696.

44. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 80; जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 115-16.

45. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 38. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 80, इस तिथि को स्वीकार करते हैं।

45a. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 81.

46. *मद्रास डायरी,* 3 मार्च 1696.

47. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 81.

48. *पूर्वोक्त;* जी०टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 116.

49. *दिलकश,* पृ० 118बी।

50. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 81.

51. जी० टी० कुलकर्णी (*पूर्वोक्त,* पृ० 116) के अनुसार जिस प्रकार का विवाद जुल्फ़िकार खाँ द्वारा जिंजी की प्रथम घेराबन्दी के अन्त के समय राजाराम और सन्ताजी घोरपड़े के मध्य हुआ था, वैसा ही विवाद दूसरी घेराबन्दी के समय भी उठ खड़ा हुआ। इन अन्तरों के कारण सन्ताजी घोरपड़े जिंजी

में रुकने के लिये तैयार नहीं था। धनाजी जाधव के साथ भी उसके सम्बन्ध निरन्तर तनावपूर्ण होते जा रहे थे। परिणामस्वरूप, मई 1696 में सन्ताजी घोरपड़े जिंजी से महाराष्ट्र की ओर चल दिया। किन्तु जे० एन० सरकार (*हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 81) 1696 के अन्त तक कर्णाटक में सन्ताजी घोरपड़े की गतिविधियों का वर्णन करते हैं। वास्तव में मई 1696 में वे धनाजी जाधव के महाराष्ट्र जाने की बात करते हैं। (*पूर्वोक्त,* पृ० 82).

52. *दिलकश,* पृ० 121बी; *मद्रास डायरी,* 31 दिसम्बर 1696. दृष्टव्य, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 80-81.

53. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 82.

54. *दिलकश,* पृ० 122ए।

55. फोर्ट सेण्ट डेविड द्वारा दिनांक 29 जुलाई 1697 को फोर्ट सेण्ट जार्ज भेजा गया पत्र। *प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इण्डियन हिस्टॉरिकल रिकार्ड्स कमीशन,* XIX, पृ० 160-61; जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 117.

56. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* V, पृ० 82.

57. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 39; जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 116.

58. *दिलकश,* पृ० 122बी; *मद्रास डायरी,* 26 अक्टूबर 1697; *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 39.

59. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* V, पृ० 35-36. सरकार ने सन्ताजी घोरपड़े तथा हिम्मत खाँ के मध्य

नवम्बर-दिसम्बर 1694 में होने वाले इन संघर्षों का पुनर्निरूपण तत्कालीन अखबारात से प्राप्त सूचना के आधार पर किया है।

60. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 36.

61. *पूर्वोक्त,* पृ० 36-37.

62. *पूर्वोक्त,* पृ० 37.

63. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 181, टिप्पणी 108.

64. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 37; जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 36, टिप्पणी।

65. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 181, टिप्पणी 108.

66. *पूर्वोक्त।*

67. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 31, टिप्पणी, जहाँ सरकार लिखते हैं कि उस अध्याय का शेष भाग *अखबारात* पर आधारित है, जब तक कि अन्य स्रोत न दिये गये हों। हिम्मत खाँ तथा हमीद-उद्-दीन खाँ के साथ सन्ताजी घोरपड़े के संघर्ष के विवरण इसके बाद उक्त अध्याय में दिये गये हैं।

68. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 116.

69. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 36, टिप्पणी।

70. *अखबारात,* 5 एवं 15 नवम्बर, 1695.

71. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब* V, पृ० 86, टिप्पणी।

72. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 375

73. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 87.

74. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 375; *दिलकश,* पृ० 117बी.

75. कुछ लेखक बताते हैं कि प्रथम मराठा सैन्य टुकड़ी ने कासिम खाँ के अग्रिम शिविर पर मध्य रात्रि के कुछ समय बाद ही आक्रमण कर दिया था। देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 124. किन्तु वे इस सूचना के स्रोत का उल्लेख नहीं करते हैं।

76. एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक मराठा सैन्य टुकड़ी में 8,000 से 10,000 सैनिक थे। देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 124, किन्तु एक बार पुनः इस सूचना के स्रोत का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है।

77. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 375-77.

78. देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 88-89.

79. *दिलकश,* पृ०118ए.

80. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 375-77 देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* V, पृ० 89.

81. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 125.

82. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 89-90.

83. खफी खाँ, II, पृ० 429.

84. *पूर्वोक्त,* पृ० 430.

85. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 182, टिप्पणी 110.

86. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 375-377.

87. देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 89, टिप्पणी।

88. खफी खाँ, II, पृ० 331.

89. देखिये जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 90-91.

90. देखिये, *पूर्वोक्त,* पृ० 91.

91. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 378.

92. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 91.

93. *पूर्वोक्त,* पृ० 91-92.

94. खफी खाँ, II, पृ० 433.

95. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 38. देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 182, टिप्पणी 112.

96. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 91-92.

97. खफी खाँ, II, पृ० 433.

98. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 379.

99. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 92-93.

100. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 375.

101. *अखबारात,* वर्ष 39, शाबान 72,

102. *शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 38.

103. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 182, टिप्पणी 113.

104. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 93 टिप्पणी।

105. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 128.

106. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 379.

107. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 93-94; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 237.

108.जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 237, टिप्पणी।

109.खफी खाँ, II, पृ० 433-34.

110.जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 237, टिप्पणी।

111.जी० टी० कुलकर्णी (*पूर्वोक्त,* पृ० 129) उसका नाम मोहम्मद ईसा बताते है।

112.देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 95, टिप्पणी।

113.*पूर्वोक्त,* पृ० 94-95.

114.*अखबारात,* वर्ष 39, शाबान 2; देखिये जे० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 129.

115.*अखबारात,* वर्ष 40, रमजान 12; देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 129.

116.*अखबारात,* वर्ष 40, जीकार 8; देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 129.

117.*शिव चरित्र साहित्य,* III, संख्या 479, पृ० 85-86.

118.जी० टी० कुलकर्णी, पृ० 129-30.

119.*शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 39; *दिलकश,* पृ० 112बी।

120.इसकी विस्तार के साथ चर्चा अगले अध्याय, 'राजाराम-सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध' के अन्तर्गत की जायेगी।

121.देखिये, ऊपर।

122.*दिलकश,* पृ० 123ए।

123.*पूर्वोक्त।*

124.देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 130-131.

125.विल्कूस, *हिस्टरी ऑव मैसूर,* I, पृ0 133. दृष्टव्य, जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 83 टिप्पणी।

126.जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 83 टिप्पणी।

127.इस तिथि का उल्लेख जी0 टी0 कुलकर्णी (*पूर्वोक्त,* पृ0 132) ने किया है, किन्तु उसका स्रोत नहीं बताया है।

128.*दिलकश,* पृ0 124ए देखिये, जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब* V, पृ0 83.

129.जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 83-84.

130.*दिलकश,* पृ0 124ए।

131.जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 84, टिप्पणी।

132.*दिलकश* पृ0 124बी। देखिये, जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 84.

133.*दिलकश,* पृ0 124बी; *मद्रास डायरी* (दृष्टव्य, जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 85.

134.जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 85.

135.*मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ0 391.

136.जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 84, टिप्पणी। *चिटनीस बखर* (II. 58) में दी गयी चैत्र प्रतिपद, शुक्ल पक्ष, शक संवत् 1618 (= 23 मार्च 1696) की तिथि निश्चित रूप से सही नहीं है।

137.जी0 टी0 कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ0 183, टिप्पणी 125.

138.*दिलकश,* पृ0 135ए।

139.जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑफ औरंगजेब,* V, पृ० 84, टिप्पणी।

140.*शिव चरित्र प्रदीप,* पृ० 66.

141.जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 183, टिप्पणी 125.

142.देखिये, ऊपर।

143.सी० एस० श्रीनिवासाचारी, *अ हिस्टरी ऑफ जिंजी एण्ड इट्स रूलर्स,* पृ० 346-47.

144.जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 183, टिप्पणी 125.

145.देखिये, ऊपर।

146.*अखबारात,* 25 अप्रैल 1699. देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 85, टिप्पणी।

अध्याय–5

राजाराम–सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध

सन्ताजी घोरपड़े के अपने छत्रपति, शिवाजी के पुत्र, राजाराम, के साथ सम्बन्धों को उनके वास्तविक परिपेक्ष्य में समझने और उनका उचित आकलन करने के लिये पहले इस मराठा राजा के व्यक्तित्व, उसकी स्थिति, उसकी सीमाओं, तथा उसकी विवशताओं पर दृष्टि डालना आवश्यक होगा। ऊपर हमने देखा कि अपने अग्रज, शम्भूजी, के मुग़लों द्वारा बन्दी बनाये जाने और कठोर यातनाओं के उपरान्त वध किये जाने के बाद, एकाएक राजाराम को बन्दी के जीवन से मुक्त करके सिंहासन पर बैठा दिया गया। सिंहासनारोहण के कुछ ही समय बाद मुग़ल दबाव के कारण उसे महाराष्ट्र छोड़ कर कर्णाटक में जिंजी के दुर्ग में शरण लेनी पड़ी। महाराष्ट्र में प्रशासन का समस्त उत्तरदायित्व उसने रामचन्द्र अमात्य को सौंपा था और उसे *हुकूमत–पनाह* की उपाधि प्रदान की थी।[1] रामचन्द्र ने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह बुद्धिमत्तापूर्वक और कुशलता के साथ किया। राजाराम तथा रामचन्द्र के मध्य समय–समय पर पत्राचार होता रहता था। किन्तु दूरी तथा मार्ग की कठिनाइयों के कारण पत्रों के मध्य लम्बा अन्तराल हो जाता था और इस कारण राजाराम पश्चिम में अपने प्रशासन पर प्रभावी ढंग से नियन्त्रण रखने में स्वयं को अक्षम पा रहा था। राजाराम के जिंजी में नौ वर्षों के प्रवास के दौरान रामचन्द्र महाराष्ट्र में लगभग अनियन्त्रित शक्तियों तथा अधिकारों का स्वामी रहा।[2]

कर्णाटक में राजाराम ने भी शम्भूजी के समान अपना अधिकांश समय विलासिता में व्यतीत करना आरम्भ कर दिया।

साथ ही, उसमें अपने पिता जैसी योग्यता और कुशाग्र बुद्धि का अभाव था। 'वह एक ऐसा राजा था, जिसके पास न तो सेना थी, न अपना कोष, और न ही अपने अविवादित शासन में प्रजा।'[3] जिंजी के दुर्ग में सीमित राजाराम के लिये किसी सरदार को किसी वस्तु के लिये मना करना अथवा उन पर अनुशासन रखना कठिन रहा होगा। शक्तिहीन राजा कर्णाटक में प्रत्येक ऐसे सरदार की निष्ठा के बदले शर्तें मानने के लिये विवश था, जो 1,000 अथवा 500 योद्धा एकत्र कर उसे सहायता प्रदान कर सकता था।[4] इस कारण राजाराम ने अपने सरदारों को प्रसन्न करने के लिये उन्हें मुक्तहस्त होकर उपाधियाँ तथा जागीरें प्रदान कीं। चिटनीस की सूचना है कि सभी सरदार जिंजी पहुँच कर राजाराम से मिले, और मराठा राजा ने उन्हें उपाधियाँ, सेना में पद, तथा विभिन्न क्षेत्र प्रदान किये जहाँ से उन्हें *चौथ* वसूल करने का अधिकार था। इन सरदारों ने *पोलीगारों* के समान इन क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया, और अपने क्षेत्र की सीमा का विस्तार भी किया। इस प्रकार राजाराम के सभी मन्त्री और सरदार सम्पन्न होने लगे, और राजाराम से प्रसन्न भी हो गये।[5]

यह जहाँ एक ओर सरदारों की शक्ति एवं साहस में वृद्धि की ओर संकेत करता है, वहीं दूसरी ओर राजाराम के घटते प्रभाव का भी आभास कराता है। किन्तु इस तथ्य का सबसे प्रबल संकेत राजाराम द्वारा एक से अधिक व्यक्तियों को एक ही समय में एक ही उपाधि प्रदान करने, तथा एक से अधिक व्यक्तियों को एक ही समय में समान पदों पर नियुक्त करने से मिलता है। इसके अतिरिक्त, चिटनीस के विवरण[6] से ऐसा आभास मिलता है कि

महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त व्यक्तियों को शीघ्र ही हटा कर उनके स्थान पर दूसरे व्यक्ति नियुक्त कर दिये जाते थे। उदाहरण के लिये, जिंजी में राजाराम ने अपने सर्वाधिक विश्वसनीय सलाहकार, प्रह्लाद निराजी, को *प्रतिनिधि* के नवसृजित पद पर नियुक्त कर दिया, और वह पेशवा नीलकण्ठ मोरेश्वर पिंगले से अधिक प्रभावशाली हुआ। अपने 11 वर्ष के अल्पशासन में राजाराम ने पाँच बार सेनापति बदला। एक ही समय में कई ऐसे सैन्य अधिकारी थे, जिनका पदनाम सेनापति के समकक्ष था, यथा *सेना-साहिब-सूबा, सर-ए-लश्कर, सेना-धुरन्धर,* आदि।[7] इन सभी को वे अधिकार प्राप्त थे, जो सेनापति को मिलते थे।[8] परिणामस्वरूप मराठा मन्त्रियों तथा सेनापतियों/सरदारों के मध्य वैमनस्य बढ़ गया, और महाराष्ट्र तथा कर्णाटक में इनके अनेक परस्पर विरोधी गुट तैयार हो गये। इस सबका मराठों की शक्ति पर विपरीत प्रभाव अवश्य पड़ा होगा, जिसका लाभ मुग़लों ने उठाया। वर्ष 1697 के सन्दर्भ में भीमसेन का कथन है कि मराठों में अधिक एकता नहीं दिखायी देती है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को *सरदार* कहता है, और व्यक्तिगत लाभ के लिये धावे बोलता है और लूटता हैं।[9] इन सब परिस्थितियों का प्रभाव सन्ताजी घोरपड़े और राजाराम के मध्य सम्बन्धों पर भी पड़ा, और अनेक बार दोनों एक-दूसरे से रुष्ट दिखायी देते हैं।

अपने शासन के आरम्भ में राजाराम द्वारा नियुक्त *अष्ट-प्रधान* की सूची में अधिकांश स्रोत सेनापति के पद पर महादजी नायक पनसंबल का उल्लेख करते हैं।[10] साथ ही यह सूचना भी प्राप्त होती है कि राजाराम के जिंजी पहुँचने के कुछ समय बाद ही महादजी पनसंबल की मृत्यु हो गयी, तथा सन्ताजी घोरपड़े को

सेनापति नियुक्त किया गया।[11] किन्तु कुछ साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि मूल रूप से सेनापति के पद पर सन्ताजी घोरपड़े की ही नियुक्ति की गयी थी।[12] इस बात की पूरी सम्भावना है कि यह सूचना त्रुटिपूर्ण हो। किन्तु यहाँ पर मल्हार रामराव चिटनीस के विवरण का उल्लेख करना उचित होगा। उसके अनुसार जब राजाराम जिंजी गया, तो उसने सन्ताजी घोरपड़े तथा उसके दोनों भाइयों को निर्देश दिया कि वे महाराष्ट्र में रह कर रामचन्द्र अमात्य के आदेशों का पालने करें। किन्तु जब रामचन्द्र ने पन्हाला की मुग़ल घेराबन्दी उठाने का प्रयास किया, तो सन्ताजी घोरपड़े ने उसकी कोई सहायता नहीं की, और उसके निर्देशों के अनुरूप आचरण नहीं किया। वह सन्दूर क्षेत्र में रुका रहा और तुंगभद्रा नदी तक सैन्य अभियान करता रहा। उसने गुंटी के दुर्ग पर अधिकार कर लिया, और अनेक सीमावर्ती थानों को अधिकृत कर वहीं रुका रहा। रामचन्द्र अमात्य ने सन्ताजी घोरपड़े की इस अनुशासनहीनता की सूचना जिंजी में राजाराम को प्रेषित की। राजाराम में रुष्ट होकर सन्ताजी घोरपड़े को सेनापति के पद से च्युत कर दिया, और 1690 में महादजी नायक पनसंबल को सेनापति नियुक्त किया।

राजाराम ने अपने इस निर्णय की सूचना एक पत्र के माध्यम से रामचन्द्र अमात्य को दी, और दो व्यक्तियों को सन्ताजी घोरपड़े के पास भेजकर उससे *सिक्के-कतार* छीन कर रामचन्द्र के पास रखवा दिये। सन्ताजी घोरपड़े ने 15 दिन अथवा एक मास तक रामचन्द्र से भेंट करने के प्रयास किये किन्तु अमात्य ने उससे भेंट करने से मना कर दिया। तब सन्ताजी घोरपड़े राजाराम के पास जिंजी पहुंचा और उसने राजा को आश्वासन दिया कि अन्य

अधिकारियों के समान वह भी राजाराम की सन्तोषप्रद ढंग से सेवा करेगा, और उसके दोनों भाई महाराष्ट्र में रहकर रामचन्द्र की आज्ञाओं का पालन करेंगे। इस प्रकार का समझौता कर सन्ताजी घोरपड़े जिंजी की मुग़ल घेराबन्दी उठाने में सहायता करने लगा।[13] बाद में महादजी नायक पनसंबल की युद्ध करते समय मृत्यु हो गयी, और उसके स्थान पर सन्ताजी घोरपड़े को सेनापति नियुक्त किया गया।[14]

जे0 एन0 सरकार का मत है कि चिटनीस द्वारा दी गयीं तिथियाँ तथा नाम अनकेशः त्रुटिपूर्ण पाये गये हैं।[15] किन्तु वे इस विवरण की विश्वसनीयता पर स्पष्ट संदेह व्यक्त नहीं करते हैं।[16] यदि इस विवरण में कोई तथ्य है तो इस बात की सम्भावना हो सकती है कि राजाराम के *अष्ट-प्रधान* में मूलतः सन्ताजी घोरपड़े ही सेनापति नियुक्त रहा हो, किन्तु रामचन्द्र अमात्य की अवज्ञा की शिकायत के कारण उसे इस पद से हटा दिया गया हो, और उसके स्थान पर महादजी नायक पनसंबल को सेनापति नियुक्त किया गया हो। बाद में, महादजी पनसंबल की मृत्यु होने पर सन्ताजी घोरपड़े को यह पद पुनः प्राप्त हुआ हो।

जिंजी की मुग़ल घेराबन्दी उठाने में सन्ताजी घोरपड़े के योगदान का विस्तार से वर्णन ऊपर किया जा चुका है।[17] सन्ताजी घोरपड़े की सामरिक उपलब्धियों के कारण असद खाँ और उसके पुत्र, जुल्फ़िक़ार खाँ, के लिये जिंजी पर अधिकार करना असम्भव हो गया, और उन्होंने घेराबन्दी समाप्त कर दी। विभिन्न स्रोतों से ऐसा प्रतीत होता है कि असद खाँ एवं जुल्फ़िक़ार खाँ ने अपनी सेना को सुरक्षित जिंजी से वाण्डीवाश ले जाने के लिये राजाराम

तथा उसके कुछ ब्राह्मण मन्त्रियों को धन भी भेंट किया था।[18] मराठा सेनानायकों से राजाराम ने कोई सलाह नहीं ली। उन्होंने मुग़ल सेना को सुरक्षित वाण्डीवाश जाने की अनुमति देने के राजाराम के निर्णय का विरोध भी किया, और इसी विषय पर राजाराम तथा सन्ताजी घोरपड़े के मध्य पुनः विवाद उत्पन्न हुआ। इसका विशद विवरण फ्राँस्वा मार्तिन से प्राप्त होता है।[19]

मार्तिन के अनुसार जिंजी में उपस्थित मराठा सेनानायक इस बात को लेकर चिढ़े हुये थे कि राजाराम ने उनसे विचार-विमर्श किये बिना, केवल अपने मन्त्री की सलाह पर मुग़लों के साथ सन्धि कर ली थी। वे मन्त्री से विशेष रूप से क्रुद्ध थे, और उन्होंने उस पर आरोप लगाया कि उसने मुग़ल सेना के लिये अपने क्षेत्र तक वापसी का सुरक्षित मार्ग सुनिश्चित करने के लिये भारी मात्रा में धन प्राप्त किया था। यह स्पष्ट था कि उस समय जिंजी में मराठों की स्थिति मुग़लों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ थी, और वे शाहज़ादा काम बख्श, असद खाँ, जुल्फ़िक़ार खाँ, तथा मुग़ल सेना के अन्य अधिकारियों को घेर कर बन्दी बना सकते थे। इन मराठा सेनानायकों ने राजाराम से आवेदन किया कि वे इन मुग़ल अधिकारियों की फ़िरौती के रूप में भारी मात्रा में धन प्राप्त कर सकते थे, और उनकी मुक्ति के बदले मुग़ल सम्राट से अपनी शर्तें स्वीकार करा सकते थे। सन्ताजी घोरपड़े राजाराम के इस कृत्य से खिन्न होकर अपनी सेना के साथ जिंजी से कुछ दूरी पर चला गया। मार्तिन का अपना विचार है कि राजाराम जानता था कि यदि जुल्फ़िक़ार खाँ चाहता तो वह सरलतापूर्वक जिंजी पर अधिकार कर सकता था, किन्तु उसके ऐसा न करने से कृतज्ञ राजाराम ने उसे

सुरक्षित वापसी की अनुमति प्रदान की थी।

मार्तिन आगे बताता है कि राजाराम तथा जुल्फ़िक़ार खाँ के मध्य यह सन्धि एक गुप्त समझौते का परिणाम थी। असद खाँ तथा जुल्फ़िक़ार खाँ जानते थे कि वृद्ध औरंगजेब की मृत्यु निकट है, और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों के मध्य उत्तराधिकार के लिये संघर्ष अवश्यम्भावी है। ऐसी दशा में असद खाँ और उसका पुत्र, जुल्फ़िक़ार खाँ, स्वयं को दक्षिण में स्वतन्त्र राजा के रूप में स्थापित करना चाहते थे। इसके लिये उन्हें मराठों की सहायता की आवश्यकता थी। उनकी योजना थी कि वे स्वयं गोलकुण्डा तथा कर्णाटक पर शासन करेंगे, जबकि राजाराम को बीजापुर का क्षेत्र प्राप्त होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने सेनानायकों की निष्ठा पुनः प्राप्त करने के लक्ष्य से राजाराम ने उन्हें इस गुप्त समझौते के विषय में बता कर मुग़ल सेना को वाण्डीवाश तक सुरक्षित जाने की अनुमति देने का कारण स्पष्ट कर दिया। साथ ही उन्हें उपहार भी दिये। वह स्वयं जाकर सन्ताजी घोरपड़े से मिला। उसके ऐसा करने से विरोध के स्वर कुछ मन्द अवश्य पड़े, किन्तु वैमनस्य पूर्णतः दूर नहीं हो सका।[20]

मुग़ल सेना जिंजी की घेराबन्दी उठाकर 22 अथवा 23 जनवरी 1693 को वहाँ से चली, और तीन दिन बाद वाण्डीवाश पहुँच गयी।[21] भीमसेन मुग़ल सेना की वापसी का विस्तृत वर्णन करता है।[22] जिंजी के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के पश्चात् सन्ताजी घोरपड़े ने मार्च 1693 में स्वयं त्रिचनापल्ली पर आक्रमण कर उसकी घेराबन्दी कर ली। वहाँ का शासक, तंजावुर के राजा, शाहजी II का परम शत्रु था, और दोनों के मध्य अनेक बार संघर्ष हुये थे।

शाहजी II स्वयं राजाराम का चचेरा भाई और मित्र राजा था।[23] कुछ समय बाद राजाराम स्वयं इस अभियान में भाग लेने जिंजी से त्रिचनापल्ली पहुँचा।

अपनी स्थिति की विकटता देखकर त्रिचनापल्ली के नायक ने 10 अप्रैल 1693 को राजाराम के साथ सन्धि कर ली। इस सन्धि के पश्चात्, मई 1693 में, राजाराम शाहजी II से भेंट करने तंजावुर चला गया।[24] लगभग इसी समय किन्ही कारणों से सन्ताजी घोरपड़े राजाराम के साथ कलह करके कर्णाटक छोड़कर महाराष्ट्र चला गया। क्रुद्ध राजाराम ने सन्ताजी घोरपड़े को सेनापति के पद से च्युत करके उसके स्थान पर धनाजी जाधव को नियुक्त कर दिया।[25]

चिटनीस भी मई 1693 में राजाराम और सन्ताजी घोरपड़े के मध्य कलह का उल्लेख करता है। उसके अनुसार सन्ताजी घोरपड़े किसी न किसी कारण राजाराम के दरबारियों से कलह करता रहता था, और उन्हें अपमानित करता रहता था। इस कारण राजाराम ने माने को सन्ताजी घोरपड़े पर आक्रमण करने के लिये भेजा। किन्तु अन्य सरदारों ने उसे बहुत समझा कर ऐसा न करने के लिये सहमत कर लिया। अतः सन्ताजी घोरपड़े की मात्र निन्दा की गयी, और सेनापति का पद धनाजी जाधव को प्रदान किया गया।[26] चिटनीस के अनुसार यह स्थिति दो अथवा तीन वर्ष तक चलती रही।[27] जे० एन० सरकार चिटनीस के विवरण को अंशतः त्रुटिपूर्ण मानते हैं।[28]

सन्ताजी घोरपड़े 1693 के मध्य के लगभग राजाराम से रुष्ट होकर जिंजी छोड़ कर चला गया। उसने अपनी शक्ति एवं संसाधन

का उपयोग बेलारी क्षेत्र में अपने लिये एक राज्य स्थापित करने के लिये किया, और व्यवहार में स्वतन्त्र राजा के रूप में राज्य करने लगा। इस दौरान उसने राजाराम की आज्ञाओं का पालन नहीं किया।[29] शाहज़ादा मुइजुद्दीन ने अक्टूबर 1692 के अन्तिम दिनों में पन्हाला को घेर लिया। जनवरी 1693 में औरंगजेब ने उसकी सहायता के लिये तोपखाना भी भेज दिया। अगस्त 1693 तक मुइजुद्दीन की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी थी।[30] किन्तु अक्टूबर 1693 में धनाजी जाधव, रामचन्द्र, तथा शंकराजी मल्हार के नेतृत्व में एक विशाल मराठा सेना पन्हाला पहुँच गयी।[31] यह रोचक है कि पन्हाला की मुगल घेराबन्दी उठाने के लक्ष्य से आई इस मराठा सेना में सन्ताजी घोरपड़े सम्मिलित नहीं था।[32]

इसी बीच सन्ताजी घोरपड़े के भाई, बाहिरजी घोरपड़े, का भी राजाराम के साथ विवाद हो गया। जे० एन० सरकार का विचार है कि इस विवाद का कारण जिंजी में राजाराम की राजसभा में ब्राह्मण मन्त्रियों का अधिक प्रभावशाली होना था। राजाराम की 'स्थिर बुद्धि' और विलासितापूर्ण जीवन शैली[32a] के कारण उसके मन्त्रियों ने प्रशासन पर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया था। उन्होंने राज्य की सम्पत्ति पर भी अधिकार करना आरम्भ कर दिया था। अतः सेनानायकों ने अपने घटते प्रभाव से खिन्न होकर विरोध प्रकट किया। यचप्पा नायक ने स्वयं को सातगढ़ में स्वतन्त्र राजा के रूप में स्थापित कर लिया था। बाहिरजी घोरपड़े उसके साथ मिल गया। सम्भवतः वह भी यचप्पा नायक का अनुसरण कर अपने लिये एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करना चाहता था। मई 1693 में मराठा सेना ने वेल्लूर में बाहिरजी घोरपड़े एवं यचप्पा नायक पर आक्रमण

कर दिया। किन्तु बाद में राजाराम के साथ उनकी सुलह हो गयी, और फरवरी 1694 में वे राजाराम से मिल गये।[33]

चिटनीस अथवा किसी अन्य स्रोत से मई 1693 में राजाराम और सन्ताजी घोरपड़े के मध्य विवाद का स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष कारण नहीं ज्ञात होता है। क्या यह सुझाव दिया जा सकता है कि राजाराम ने मई 1693 में अपनी सेना वेल्लूर में बाहिरजी घोरपड़े पर आक्रमण करने के लिये भेजी थी, और राजाराम द्वारा अपने भाई के विरुद्ध सेना भेजे जाने से क्रुद्ध होकर सन्ताजी घोरपड़े उसका साथ छोड़कर चला गया? सम्भव है कि राजाराम के दरबारियों ने अपने राजा को ऐसा करने की सलाह दी हो, और इसी कारण सन्ताजी घोरपड़े ने उनसे कलह की हो तथा उन्हें अपमानित किया हो जैसा कि चिटनीस उल्लेख करता है।[34] यह भी सम्भावना हो सकती है कि सन्ताजी घोरपड़े की दृष्टि में राजाराम के दरबारियों का अपराध यह रहा हो कि उन्होंने राजाराम को बाहिरजी घोरपड़े के विरुद्ध अभियान करने से मना नहीं किया। यद्यपि स्पष्ट सूचना के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, तथापि मई 1693 में राजाराम द्वारा बाहिरजी घोरपड़े के विरुद्ध सेना भेजे जाने, तथा मई 1693 में ही सन्ताजी घोरपड़े के साथ राजाराम का विवाद होने से इस सुझाव को बल मिलता प्रतीत होता है।

राजाराम के साथ सन्ताजी घोरपड़े की दूरी का एक कारण महाराष्ट्र में मराठा मन्त्रियों और सरदारों की दलबन्दी भी हो सकती है। ऊपर हमने देखा कि राजाराम ने जिंजी प्रवास के दौरान रामचन्द्र अमात्य को महाराष्ट्र के प्रशासन का उत्तरदायित्व सौंपा था। परशुराम त्रिम्बक उसका विरोधी था, और उसने अमात्य के

विरुद्ध एक दल का गठन किया था, और सन्ताजी घोरपड़े को इस दल में सम्मिलित कर लिया था। इसकी स्वाभाविक परिणति यह हुयी कि रामचन्द्र अमात्य ने सन्ताजी घोरपड़े के परम विरोधी, धनाजी जाधव, का समर्थन किया।[35] सन्ताजी घोरपड़े महाराष्ट्र में *हुकूमत-पनाह* रामचन्द्र अमात्य की आज्ञाओं का सहजतापूर्वक पालन नहीं करता था, और इसी कारण 1690 में रामचन्द्र अमात्य की शिकायत पर राजाराम ने उसे सेनापति के पद से हटा कर महादजी नायक पनसंबल को सेनापति भी नियुक्त किया था।[36] 1693 में पन्हाला की मुग़ल घेराबन्दी उठाने के लिये रामचन्द्र अमात्य के अभियान में भी सन्ताजी घोरपड़े ने सहयोग नहीं किया।[37]

अक्टूबर 1694 में जुल्फ़िक़ार ख़ाँ ने जब दोबारा जिंजी की घेराबन्दी की, तो शंकराजी मल्हार सचिव ने सन्ताजी घोरपड़े के साथ मिलकर संयुक्त कार्यवाही की योजना बनायी। उसने सन्ताजी घोरपड़े को राजाराम की सहायता हेतु कर्णाटक जाने के लिये तैयार कर लिया। उसने सन्ताजी घोरपड़े से कहा कि वह अपनी सेना के साथ जाये, और राजाराम की सहायता के लिये प्रयास करे। उसे यह भी समझाया गया कि जिंजी में वह राजा के प्रति उचित सम्मान का प्रदर्शन करे। शंकराजी मल्हार ने सन्ताजी घोरपड़े से कहा कि वह जिंजी की मुग़ल घेराबन्दी उठाने में योगदान करे, और अपने प्रति विश्वास को आघात न पहुँचाये। सन्ताजी घोरपड़े से इस प्रकार की शपथ लेने के उपरान्त शंकराजी मल्हार ने उसकी सेना के साथ हनुमन्त राव निम्बालकर तथा कुछ अन्य सरदारों की सैन्य टुकड़ियाँ भी भेजीं जिससे जिंजी की सहायतार्थ महाराष्ट्र से भेजी गयी सेना की संख्या 25,000 अश्वारोहियों की हो गयी। इस

अभियान में शंकराजी मल्हार ने अपने भाई, येसाजी मल्हार, को अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा।[38]

किन्तु इस बार सन्ताजी घोरपड़े ने जिंजी की घेराबन्दी उठाने में राजाराम की सहायता करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया। इस कारण नवम्बर 1695 में धनाजी जाधव को मद्रास-कर्णाटक में राजाराम की सहायता हेतु भेजा गया। उसने वेल्लूर में जुल्फ़िक़ार खाँ को पराजित कर वहाँ की घेराबन्दी समाप्त करने के लिये बाध्य किया।[39] सन्ताजी घोरपड़े क़ासिम खाँ, खानाज़ाद खाँ, हिम्मत खाँ, आदि से संघर्ष कर उन्हें पराजित करता हुआ[40] मार्च 1696 में राजाराम के पास जिंजी पहुँचा।[41] अप्रैल 1696 में अर्नी में सन्ताजी घोरपड़े की जुल्फ़िक़ार खाँ के साथ झड़प हुयी, और यद्यपि इसमें जुल्फ़िक़ार खाँ का पलड़ा भारी रहा, तथापि इस झड़प के उपरान्त मुग़ल सेनापति ने स्वयं को आर्कोट के दुर्ग में सीमित कर लिया, और रक्षात्मक रुख अपनाने के लिये बाध्य हुआ।[42]

अपनी उपलब्धियों से सन्ताजी घोरपड़े का साहस बढ़ गया, और सम्भवतः उसने जिंजी में राजाराम से सेनापति के पद पर पुनः नियुक्त किये जाने की माँग की। प्रतिनिधि के पद पर नियुक्त प्रह्लाद निराजी एक कुशल राजनयिक था, और अपने जीवन काल में वह सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव के मध्य शान्ति बनाये रखने में न्यूनाधिक सफल रहा था। उसने यह प्रयास किया कि शासन के किसी कृत्य से इन दो परस्पर विरोधी सेनानायकों को यह आभास न हो कि किसी एक की अनदेखी कर, दूसरे का पक्ष लिया जा रहा है। किन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् इस प्रकार का सन्तुलन स्थापित रखने की योग्यता राजाराम के किसी भी मन्त्री

में नहीं थी।[43]

परिणामस्वरूप मई 1696 में सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव के मध्य संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में राजाराम ने खुलकर धनाजी जाधव का साथ दिया। यह युद्ध काँची के निकट वृद्धचलम् से 11 मील उत्तर-पश्चिम में स्थित ऐवर-गुडी में लड़ा गया।[44] राजाराम ने सेना के हरावल में अमृत राव निम्बालकर को तैनात किया, और सन्ताजी घोरपड़े पर आक्रमण कर दिया।[45] *मासिर-ए-आलगीरी* में इस युद्ध का विवरण प्राप्त होता है।[46] इसके अनुसार जिंजी जाते समय सन्ताजी घोरपड़े का किसी पुरानी कलह के कारण कर्णाटक में राजाराम का सहयोग करने आये धनाजी जाधव के साथ संघर्ष हो गया। इसमें सन्ताजी घोरपड़े की विजय हुई। उसने धनाजी जाधव के मित्र और सहयोगी, तथा नागोजी माने के साले, अमृतराव निम्बालकर, को हाथी के पैरों के नीचे कुचल कर मरवा दिया।[47] सन्ताजी घोरपड़े ने राजाराम को भी बन्दी बना लिया, किन्तु धनाजी जाधव सुरक्षित बच निकला। अगले दिन सन्ताजी घोरपड़े राजाराम के समक्ष अपने हाथ बाँध कर उपस्थित हुआ, और उससे कहा कि वह अभी भी पूर्व के समान राजाराम का निष्ठावान सेवक है। उसने यह उद्दण्डता इसलिये की, क्योंकि राजाराम धनाजी जाधव को उसके समतुल्य बनाना चाहता था, और उसकी सहायता से जिंजी पहुँचना चाहता था। सन्ताजी घोरपड़े ने राजाराम को आश्वासन दिया कि अब वह उसके आदेशों का पालन करेगा। इसके पश्चात् उसने राजाराम को मुक्त कर दिया, और सम्मानपूर्वक जिंजी पहुँचा दिया। किन्तु *मासिर-ए-आलमगीरी* में इस युद्ध की तिथि अक्टूबर 1689 बतायी गयी है, जिसे जे0

एन० सरकार त्रुटिपूर्ण मानते हैं।[48]

खफ़ी खाँ संघर्ष में विजय का श्रेय धनाजी जाधव को देता है। उसके अनुसार सन्ताजी घोरपड़े के व्यवहार से खिन्न होकर अनेक मराठा सरदारों ने पत्रों तथा संदेशवाहकों के माध्यम से उसके विरुद्ध धनाजी जाधव के साथ षड्यन्त्र रचा। हनुमन्त राव ने धनाजी जाधव की सैन्य टुकड़ी के साथ सन्ताजी घोरपड़े पर आक्रमण कर दिया। धनाजी जाधव ने सन्ताजी घोरपड़े के कुछ सहयोगी सरदारों को अपनी ओर मिला लिया था। उन्होंने सन्ताजी की सेना का असबाब लूट लिया। सन्ताजी घोरपड़े के अनेक सहयोगी सरदार, हनुमन्त राव की ओर चले गये। उसके अनेक सैनिक युद्ध में मारे गये अथवा घायल हो गये। स्वयं को शक्तिहीन पाकर सन्ताजी घोरपड़े पर्वतीय क्षेत्रों से अपने मावल लौट गया।[49] किन्तु *मासिर-ए-आलगीरी* तथा *जेधे-शकावली* के विवरण के आधार पर इस युद्ध में सन्ताजी घोरपड़े को विजयी माना गया है।[50]

भीमसेन इस संघर्ष का उल्लेख करते हुये बताता है कि धनाजी जाधव ने राजाराम को समझा दिया था कि सन्ताजी घोरपड़े की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गयी है। वह एक अच्छा योद्धा होने के कारण अपने लिये एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का आकांक्षी है। इस कारण उसका अन्त करना आवश्यक है। राजाराम तथा धनाजी जाधव ने एक विशाल सेना के साथ और अमृत राव निम्बालकर को सेना के हरावल में रखकर सन्ताजी घोरपड़े पर आक्रमण कर दिया। सन्ताजी के सैनिकों ने अमृत राव निम्बालकर का वध कर दिया, और मराठों में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया।[51]

उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि इस युद्ध में सन्ताजी घोरपड़े को मुख्यतः अपनी सामरिक योग्यता के कारण विजय प्राप्त हुयी। पराजित होने के उपरान्त धनाजी जाधव कर्णाटक से महाराष्ट्र वापस लौट गया।[52] इस संघर्ष में सफलता प्राप्त करने के उपरान्त सन्ताजी घोरपड़े लगभग पूरे 1696 में आर्कोट में मंडराता रहा, जहाँ मुग़ल सेनापति, जुल्फ़िक़ार ख़ाँ, उपस्थित था। सन्ताजी घोरपड़े की इस क्षेत्र में गतिविधियों के कारण जुल्फ़िक़ार ख़ाँ सुरक्षात्मक रूख़ अपनाने के लिए बाध्य था।[53] नवम्बर 1996 में सन्ताजी घोरपड़े ने औरंगजेब द्वारा जुल्फ़िक़ार ख़ाँ को भेजे गये कोष पर भी अधिकार करने की योजना बनायी, किन्तु बाद में उसने यह योजना बीच में ही छोड़ दी।[54]

कुछ विद्वानों का मत है कि जिस प्रकार का विवाद जुल्फ़िक़ार ख़ाँ की जिंजी की प्रथम घेराबन्दी के अन्त के समय राजाराम तथा सन्ताजी घोरपड़े के मध्य हुआ था, वैसा ही विवाद दूसरी घेराबन्दी के समय भी उठ खड़ा हुआ। इन अन्तरों के कारण सन्ताजी घोरपड़े जिंजी में रूकने के लिये तैयार नही था। परिणामस्वरूप मई 1696 में सन्ताजी घोरपड़े जिंजी से महाराष्ट्र की ओर चल दिया।[55] किन्तु जे० एन० सरकार वर्ष 1696 के अन्त तक कर्णाटक में सन्ताजी घोरपड़े की गतिविधियों का वर्णन करते हैं।[56] वास्तव में मई 1696 में धनाजी जाधव, सन्ताजी घोरपड़े के हाथों पराजित होकर महाराष्ट्र जाने पर विवश हुआ था।[57] ऊपर अभी हमने देखा कि इस विजय के उपरान्त कम से कम वर्ष 1696 के अन्त तक सन्ताजी घोरपड़े कर्णाटक में जुल्फ़िक़ार ख़ाँ के लिये समस्या बना रहा। जे० एन० सरकार का मत है कि सन्ताजी घोरपड़े मार्च 1697 में महाराष्ट्र पहुँचा।[58]

राजाराम एक 'स्थिर-बुद्धि' शासक था। उसमें अपने पिता, शिवाजी, जैसे शौर्य तथा साहस का अभाव था। इसके अतिरिक्त, उसे जिंजी में विलासितापूर्ण जीवन भा गया था। मराठों को कुशल नेतृत्व प्रदान करने का सामर्थ्य उसमें नहीं था। सौभाग्य से उसे प्रह्लाद निराजी जैसा *प्रतिनिधि*, रामचन्द्र नीलकण्ठ जैसा *अमात्य*, तथा सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव जैसे *सेनापति* प्राप्त थे, जिनके प्रयासों के कारण औरंगजेब मराठों का दमन करने में सफल नहीं हुआ। मुग़लों के विरुद्ध मराठा संघर्ष में 1689 से 1697 तक सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव का इतना महत्वपूर्ण योगदान रहा कि कुछ विद्वान इस दशक में दक्षिण भारत के इतिहास को मुख्य रूप से इन दो मराठा सेनापतियों का जीवनवृत्त मानते हैं।[59] किन्तु सेनापति के पद के लिये इन दोनों के मध्य प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप सन्ताजी घोरपड़े जिंजी की दूसरी मुग़ल घेराबन्दी के समय राजाराम की यथेष्ठ सहायता नहीं कर सका, जिससे मुग़लों का पलड़ा भरी पड़ गया।[60] अतः इस प्रतिस्पर्धा का परिणाम न केवल मराठों के लिये हानिकारण रहा, अपितु इसी के कारण अन्ततः सन्ताजी घोरपड़े को प्राणों से हाथ धोना पड़ा।[61]

टिप्पणी

1. *चिटनीस बखर,* II, पृ0 40.
2. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* II, पृ0 149.
3. *पूर्वोक्त।*
4. *पूर्वोक्त।*
5. *चिटनीस बखर,* II, पृ0 35.
6. *पूर्वोक्त,* II, पृ0 40–41.
7. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 151, टिप्पणी। परसोजी भोंसले को *सेना–साहिब–सूबा* की उपाधि, सिधोजी निम्बालकर को *सर–ए–लश्कर,* तथा खण्डेराव दाभादे को *सेना–धुरन्धर* की उपाधि प्राप्त थी। देखिये, जी0 टी0 कुलकर्णी, *द मुग़ल–मराठा रिलेशंस,* पृ0 99.
8. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 150–51.
9. *दिलकश,* II, पृ0 122ए।
10. देखिये, आर0 वी0 नाडकर्णी, *द राइज़ एण्ड फॉल ऑव द मराठा एम्पायर,* पृ0 125. ग्राण्ट डफ, *ए हिस्टरी ऑव द मराठाज़,* I, पृ0 301, से भी ऐसी ही सूचना प्राप्त होती है।
11. राजवाड़े, XV, पृ0 45; ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ0 301
12. सी0 एस0 श्रीनिवासाचारी, *ए हिस्टरी ऑव जिंजी एण्ड इट्स रूलर्स,* पृ0 265.
13. *चिटनीस बखर,* II, पृ0 34.
14. *पूर्वोक्त,* II, पृ0 40.
15. जे0 एन0 सरकार, *द हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 228.
16. *पूर्वोक्त,* पृ0 228–29.

17. देखिये, अध्याय 3, 'मुग़लों के साथ संघर्ष-I'.

18. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ0 285-87. देखिये, जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 70-71; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 226-27.

19. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ0 285-87.

20. फ्राँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ0 286.

21. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 71.

22. भीमसेन, *दिलकश,* पृ0 110बी।

23. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 228.

24. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 75.

25. जे0 एन0 सरकार (*हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 75; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 228 एवं टिप्पणी 1) ने यह विवरण *जेधे-शकावली* के आधार पर दिया है।

26. *चिटनीस बखर,* II, पृ0 42.

27. *पूर्वोक्त।*

28. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 229.

29. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 229.

30. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ0 360.

31. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0 24-27.

32. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 229.

32a जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ0149.

33. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 229.

34. *चिटनीस बखर,* II, पृ0 42.

35. भीमसेन, *दिलकश,* पृ0 122ए।

36. देखिये, इसी अध्याय में ऊपर।

37. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 152.

38. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ०36, टिप्पणी; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 230.

39. जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 231.

40. इन संघर्षों का विवरण अध्याय 4, 'मुगलों के साथ संघर्ष–II' में दिया गया है।

41. देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 80; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 238; जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 116.

42. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 81; जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 116; देखिये, ऊपर अध्याय 4, 'मुगलों के साथ संघर्ष–II'.

43. ग्राण्ट डफ, *ए हिस्टरी ऑव द मराठाज़* I, पृ० 315; जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 339; राजाराम पृ० 72.

44. जी० एस० सरदेसाई, राजाराम, पृ० 80–82.

45. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 238.

46. *मासिर–ए–आलमगीरी,* पृ० 401.

47. ख़फी खाँ (II, पृ० 445) से ऐसा प्रतीत होता है कि नागोजी माने के साले का वध सन्ताजी घोरपड़े ने 1697 में अपने मृत्यु से अनेक वर्ष पूर्व करवाया था। किन्तु जे० एन० सरकार (*हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97; *हाउस ऑव*

शिवाजी, पृ० 238) इसे मई 1696 की घटना मानते हैं।

48. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97, टिप्पणी; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 238
49. ख़फ़ी ख़ाँ, II, पृ० 445.
50. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97; *हाउस ऑव शिवाजी* पृ० 238; जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 340.
51. *दिलकश,* II, पृ० 122ए। देखिये, जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97-98, टिप्पणी।
52. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 238.
53. देखिये, ऊपर अध्याय 4, 'मुग़लों के साथ संघर्ष-II'.
54. *पूवोक्त।*
55. देखिये, जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 116.
56. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 81.
57. *पूर्वोक्त,* पृ० 82.
58. *पूर्वोक्त,* पृ० 98.
59. जे० एन० सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी.* पृ० 224; तुलना करें, जी०एस० सरदेसाई, मराठों का नवीन इतिहास, I, पृ० 323.
60. देखिये ऊपर, अध्याय 4, 'मुगलों के साथ संघर्ष-II'.
61. देखिये नीचे, अध्याय 6, 'सन्ताजी घोरपड़े का अन्त'।

अध्याय 6

सन्ताजी घोरपड़े का अन्त

ऊपर हमने देखा कि मई 1696 में सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के मध्य संघर्ष हुआ, जिसमें राजाराम का समर्थन प्राप्त होने के बाद भी धनाजी जाधव की पराजय हुयी, और उसे कर्णाटक से भाग कर महाराष्ट्र जाना पड़ा।[1] किन्तु इस पराजय से धनाजी जाधव की शक्ति का विनाश नहीं हुआ था। वह अपने प्रतिद्वन्द्वी पर आघात करने की तैयारियाँ कर रहा था। अनेक मराठा सरदार, सन्ताजी घोरपड़े के दबंग स्वभाव, कटु भाषा, कठोर अनुशासन, तथा धृष्टता के कारण उससे रूष्ट थे, और वे खुलकर धनाजी जाधव के साथ हो गये थे। जो कुछ सरदार सन्ताजी घोरपड़े के प्रति निष्ठावान बने हुये थे, उन्हें भी धनाजी जाधव द्वारा भेजे गये व्यक्तियों ने धन, आदि, का लोभ दिखाकर अपनी ओर कर लिया।[2]

मार्च 1697 में सतारा के निकट धनाजी जाधव ने हनुमन्त राव निम्बालकर के साथ मिलकर सन्ताजी घोरपड़े की सेना की मालवाहक टुकड़ी पर आक्रमण कर दिया। ऊपर हमने देखा था[3] कि मई 1696 में सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के मध्य हुये संघर्ष में सन्ताजी घोरपड़े ने धनाजी की ओर से युद्ध कर रहे अमृत राव निम्बालकर को हाथी के पैरों के नीचे कुचल कर मरवा दिया था।[4] हनुमन्त राव निम्बालकर उसी अमृत राव निम्बालकर का भाई था, और वह सन्ताजी घोरपड़े से अपने भाई की मृत्यु का बदला लेने के लिये युद्ध कर रहा था। मार्च 1697 में सतारा के निकट हुये इस युद्ध में धनाजी जाधव द्वारा सन्ताजी घोरपड़े की

सेना की मालवाहक टुकड़ी पर आक्रमण होते ही सन्ताजी घोरपड़े के अनेक सहयोगी सरदार और अधिकारी धनाजी जाधव के साथ सम्मिलित हो गये। जो अधिकारी सन्ताजी घोरपड़े के प्रति निष्ठावान बने रहे, वे शीघ्र ही मारे गये अथवा घायल हो गये। अपने सैनिकों के पलायन से विवश होकर सन्ताजी घोरपड़े को रणक्षेत्र छोड़कर म्हसवाड़ की ओर भागना पड़ा।[5]

म्हसवाड़ पर नागोजी माने का अधिकार था, जिसकी पत्नी राधा बाई अमृत राव निम्बालकर की बहन थी। नागोजी माने ने राधाबाई के विरोध के बाद भी सन्ताजी घोरपड़े को शरण प्रदान की। राधाबाई ने इस बात के अनेक प्रयास किये कि नागोजी माने उसके भाई, अमृत राव निम्बालकर, की हत्या के लिये उत्तरदायी सन्ताजी घोरपड़े का वध कर दे। किन्तु नागोजी माने अतिथि की रक्षा और सत्कार के धर्म के कारण विवश था, और उसने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। उसने सन्ताजी घोरपड़े को कुछ दिनों के लिए शरण प्रदान की, भोजन, आदि, उपलब्ध कराया और सुरक्षित आगे की यात्रा के लिये बिदा किया।[6]

किन्तु राधा बाई बदले की भावना से वशीभूत थी। अपने भाई के हत्यारे को सुरक्षित जाते देख उसने अपने जीवित भाई, हनुमन्त राव निम्बालकर, को सन्ताजी घोरपड़े के पीछे भेजा। सन्ताजी घोरपड़े के अन्त के विषय में अनेक वृतान्त उपलब्ध है, जिनमें परस्पर विरोधी सूचनाएँ दी गयी है। स्वयं *मासिर-ए-आलमगीरी* का लेखक, साकी मुस्तअद खाँ, इनके कारण कठिनाई का अनुभव करता दृष्टिगोचर होता है।[7] खफ़ी खाँ भी इस सन्दर्भ में ऐसे ही उद्‌गार व्यक्त करता है।[8] माने परिवार के प्राचीन अभिलेखों,[9] में

दिये गये विवरण को जे० एन० सरकार 'चण्डूखाने की गप' मानते हैं।[10]

जे० एन० सरकार सन्ताजी घोरपड़े के अन्त के विषय में खफ़ी खाँ द्वारा किये गये वर्णन[11] को स्वीकार करते हैं, किन्तु उसमें कुछ संशोधन का सुझाव भी देते हैं।[12] उनके अनुसार खफ़ी खाँ के विवरण और *जेधे शकावली* दोनों में सन्ताजी घोरपड़े का पीछा करने वाले को नागोजी माने कहा गया है। किन्तु उस पीछा करने वाले की पहचान हनुमन्त राव निम्बालकर से की जानी चाहिए। सरकार का यह सुझाव सही प्रतीत होता है। खफ़ी खाँ ने नागोजी माने के विषय में लिखा है कि उसके भाई को सन्ताजी घोरपड़े ने हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया था।[13] किन्तु उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार सन्ताजी घोरपड़े ने अमृत राव निम्बालकर की इस प्रकार हत्या करवायी थी, जो नागोजी माने का भाई न होकर, उसकी पत्नी राधा बाई का भाई था।[13a] सम्भवतः जे० एन० सरकार ने इसी कारण सन्ताजी घोरपड़े का पीछा करने वाले की पहचान अमृत राव निम्बालकर के भाई, हनुमन्त राव निम्बालकर, से की है।[13b]

खफ़ी खाँ तथा कुछ अन्य स्रोतों में दिये गये विवरण के अनुसार (हनुमन्त राव निम्बालकर से भागते हुए) सन्ताजी घोरपड़े को अत्यधिक गतिपूर्वक यात्रा करनी पड़ी थी। इस यात्रा से श्रान्त होकर सन्ताजी घोरपड़े शम्भु महादेव पर्वत के निकट एक प्राकृतिक नाले में स्नान कर रहा था। तभी म्हसवाड़ से वहाँ पहुँची सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया, और इस असहाय अवस्था में उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। निम्बालकर, जिसे खफ़ी खाँ त्रुटिवश

माने कहता है, ने उसका कटा हुआ सिर अपनी ज़ीन से बंधे एक थैले (खुरजी) में डाल लिया। वह उसे लेकर धनाजी जाधव के पास जा रहा था। किन्तु सन्ताजी घोरपड़े का सिर जिस खुरजी में रखा गया था, वह ढीली होकर गिर गयी। उधर औरंगजेब द्वारा सन्ताजी घोरपड़े के विरुद्ध भेजा गया फ़िरोज जंग उस क्षेत्र में पहुँच गया था। उसके गुप्तचर उस स्थान पर फैले हुये थे। उन्हें सन्ताजी घोरपड़े के सिर से युक्त वह खुरजी प्राप्त हुयी। उसमें रखे सिर को सन्ताजी घोरपड़े का सिर पहचान कर उन्होंनें उसे फ़िरोज़ जंग के अग्रिम दल के सेनानायक, लुत्फुल्ला खाँ, के पास भेज दिया। अन्ततः यह सिर औरंगजेब के पास पहुँचाया गया। मुग़ल सम्राट ने यह सूचना लाने वाले को *खुश-खबर खाँ* की उपाधि प्रदान की। सन्ताजी घोरपड़े का कटा हुआ सिर मुग़ल सेना के समक्ष प्रदर्शित किया गया तथा दक्षिण भारत के कुछ अन्य नगरों में भी ले जाया गया।[14]

सन्ताजी घोरपड़े के अन्त का उपरोक्त विवरण देने के उपरान्त ख़फी खाँ लिखता है कि इस सन्दर्भ में एक अन्य कथा भी प्रचलित है। 'केवल ईश्वर ही सत्य जानता है।'[15]

सन्ताजी घोरपड़े की हत्या का वर्णन खफ़ी खाँ औरंगजेब के शासन काल के उन्तीसवें वर्ष (5 अप्रैल 1695 - 24 मार्च 1696) के सन्दर्भ में करता है। किन्तु खफ़ी खाँ की तिथियाँ अनेक स्थानों पर त्रुटिग्रस्त हैं।[16] ऊपर हमने देखा[17] कि मई 1696 में सन्ताजी घोरपड़े ने धनाजी जाधव को पराजित किया था,[18] और नवम्बर 1696 तक वह कर्णाटक में सक्रिय था तथा मुग़ल सेनापति, जुल्फ़िकार खाँ, के लिये समस्या बना हुआ था।[19] अतः

सन्ताजी घोरपड़े की हत्या की तिथि औरंगजेब के शासनकाल के उन्तीसवें वर्ष में नहीं हो सकती है जिसका अन्त 24 मार्च 1696 को हो गया था।

मासिर-ए-आलमगीरी में इस घटना की तिथि अथवा मास का उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु इसका उल्लेख औरंगजेब के शासनकाल के बयालीसवें वर्ष (3 मार्च 1698 - 20 फरवरी 1699) की घटनाओं के विवरण के अन्त में किया गया है। किन्तु जे० एन० सरकार के अनुसार इस स्रोत की भी समस्त तिथियाँ सही नहीं हैं।[20] भीमसेन तिथि का उल्लेख किये बिना सन्ताजी घोरपड़े का अन्त जिंजी दुर्ग के जनवरी 1698 में पतन से पूर्व बताता है।[21] इससे सरकार द्वारा *मासिर-ए-आलमगीरी* में संकेतित तिथि को त्रुटिपूर्ण माने जाने की पुष्टि होती प्रतीत होती है। *जेधे-शकावली* के अनुसार सन्ताजी घोरपड़े की हत्या आषाढ़, शक संवत् 1619 (=जून 1697) में हुयी। अधिकांश विद्वान इसी तिथि को स्वीकार करते हैं।[22]

जे० एन० सरकार के अनुसार धनाजी जाधव द्वारा सन्ताजी घोरपड़े की पराजय का बदला लेने के लिये सन्ताजी के भाई, बाहिरजी घोरपड़े, तथा पुत्र, रानोजी घोरपड़े, ने धनाजी जाधव का विरोध करना आरम्भ किया। दिसम्बर 1700 के अन्तिम दिनों में धनाजी जाधव और बाहिरजी घोरपड़े-रानोजी घोरपड़े के मध्य

इस्लामपुरी से 10 अथवा 12 मील की दूरी पर एक संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में कृष्णा मलहार ने धनाजी जाधव का पक्ष लिया। युद्ध में दोनों पक्षों के सैनिक बड़ी संख्या में मारे गये, किन्तु पराजय घोरपड़े पक्ष की हुयी। रानोजी घोरपड़े तथा बाहिरजी घोरपड़े को शोलापुर से 13 मील दक्षिण में स्थित अहिरवाड़ी की ओर भागना पड़ा।[23]

इस पराजय से घोरपड़े पक्ष का उत्साह कम नहीं पड़ा, और लगभग तीन सप्ताह बाद 16 जनवरी 1701 को रानोजी घोरपड़े बीजापुर से 24 मील उत्तर में स्थित जगजीवनी में धनाजी जाधव से अपनी पराजय का बदला लेने की योजना बनाता दिखता है।[24] किन्तु इसके कुछ ही समय बाद धनाजी जाधव, गुलबर्गा से 20 मील दक्षिण में स्थित फ़िरोजाबाद में, रानोजी घोरपड़े से भेंट करने गया, और उसने रानोजी के समक्ष आपसी भेदभाव को विस्मृत कर, भविष्य के लिये मुग़लों के विरुद्ध सम्मिलित प्रयास करने का प्रस्ताव रखा।[25] इस भेंट का परिणाम निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। किन्तु इतना अवश्य पता चलता है कि सितम्बर 1701 में रानोजी घोरपड़े और बाहिरजी घोरपड़े ने मुग़लों की सेवा में जाने का प्रस्ताव किया था।[26] यह प्रस्ताव सम्भवतः अपने प्रतिद्वन्द्वियों के दबाव से बचने के लिये किया गया होगा, और इसका कोई निश्चित परिणाम नहीं निकला।[27]

दिसम्बर 1700 से पूर्व रानोजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव सम्मिलित रूप से मुग़लों से संघर्ष करते भी दिखायी देते हैं। संगोला में दोनों ने मिलकर, औरंगजेब द्वारा सतारा से भेजे गये सेनापति, हमीद-उद्-दीन खाँ, से मोर्चा लिया और 20/21 दिसम्बर 1699 को उसे मासूर की ओर भागने पर विवश किया।[28] 9/10 जनवरी 1700 को धनाजी जाधव और रानोजी घोरपड़े के नेतृत्व में मराठा सेना ने रहमतपुर के निकट जुल्फ़िकार खाँ के साथ संघर्ष किया। किन्तु इस संघर्ष मराठों के 500 सैनिक मारे गये, और उन्हें पीछे हटना पड़ा।[29] फ़िरोज़ाबाद में भी मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष में धनाजी जाधव और रानोजी घोरपड़े साथ युद्ध करते दिखायी देते हैं।[30]

धनाजी जाधव तथा रानोजी घोरपड़े के मध्य संघर्ष का जे० एन० सरकार द्वारा सुझाया गया मुख्य कारण, सन्ताजी घोरपड़े के अन्त में धनाजी जाधव की भूमिका है।[31] किन्तु इसे स्वीकार करने में यह कठिनाई प्रतीत होती है कि यदि पिता की हत्या के कारण रानोजी घोरपड़े धनाजी जाधव से रूष्ट था और उसका विरोध कर रहा था, जिसके परिणामस्वरूप दिसम्बर 1700 में दोनों के मध्य युद्ध हुआ, तो सन्ताजी घोरपड़े की हत्या (जून 1697) के बाद और दिसम्बर 1700 में खुले युद्ध से पूर्व, रानोजी घोरपड़े, मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष में धनाजी जाधव के साथ युद्ध करता क्यों दिखायी

देता है? क्या वह मराठा राष्ट्र के लिये हो रहे इस संघर्ष के कारण कुछ समय के लिये धनाजी जाधव के प्रति अपने रोष को विस्मृत करने के लिये तैयार हो गया था? अथवा रानोजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के मध्य दिसम्बर 1700 के लगभग सम्बन्ध बिगड़ने का कोई अन्य कारण था, और सन्ताजी घोरपड़े के अन्त में धनाजी जाधव की भूमिका एक गौण कारक था? इन प्रश्नों का निश्चित उत्तर अभी देने के लिये पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं।

सन्ताजी घोरपड़े का जीवन एक योद्धा का जीवन था। उसने मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष में स्वयं को एक वीर योद्धा एवं एक कुशल सेनानायक के रूप में स्थापित भी किया। यह उसका दुर्भाग्य ही था कि उसे एक योद्धा के रूप में रणक्षेत्र में वीरगति प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला। एक प्राकृतिक नाले में स्नान करते समय असहाय अवस्था में हनुमन्त राव निम्बालकर ने उसकी हत्या कर दी, और वह एक योद्धा की सम्मानजनक मृत्यु से वंचित रह गया।

टिप्पणी

1. देखिये ऊपर, अध्याय 5, 'राजाराम-सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध'।
2. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 98; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 239-40.
3. देखिये ऊपर, अध्याय 5, 'राजाराम-सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध'।
4. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 238.
5. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 97; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 240. सरकार का यह वर्णन ख़फ़ी ख़ाँ, II, पृ० 445, पर आधारित है।
6. *पूर्वोक्त।*
7. *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ० 402.
8. ख़फ़ी ख़ाँ, II, पृ० 448.
9. पारसनीस, *इतिहास संग्रह, जुन्य ऐतिहासिक गोष्ठी,* II, पृ० 45.
10. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 98-99, टिप्पणी; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 240 टिप्पणी 7.
11. ख़फ़ी ख़ाँ, II, पृ० 447-48.
12. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 98-99; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 240.
13. ख़फ़ी ख़ाँ, II, पृ० 447-48.

13a- किनकैड तथा पारसनीस *(ए हिस्टरी ऑव द मराठा पीपल,* I, पृ0170) के अनुसार सन्ताजी घोरपड़े ने किसी सैनिक आरोप के कारण नागोजी माने के भाई की हाथी के पैरों के नीचे कुचल कर हत्या करवा दी थी। एक अन्य विवरण में बताया गया है कि सन्ताजी घोरपड़े ने नागोजी माने के श्वसुर की हत्या की थी (जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठी रियासत,* I, पृ0 668)। देखिये, आर0बी0 नाडकर्णी, द राइज़ एण्ड फॉल ऑव द मराठा एम्पायर, पृ0 127, टिप्पणी 33 किन्तु यदि सन्ताजी घोरपड़े ने नागोजी माने के भाई की हत्या करवायी थी तो नागोजी माने की पत्नी, राधा बाई, उससे बदला लेने के लिये इतनी उत्सुक क्यों थी, जैसा कि ख़फ़ी ख़ाँ के विवरण से ज्ञात होता है?

13b. ग्राण्ट डफ (*ए हिस्टरी ऑव द मराठाज़,* I, पृ0 317) तथा जी0 एस0 सरदेसाई (*मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ0 340) उसे नागोजी माने ही मनाते हैं।

14. ख़फ़ी ख़ाँ, II, पृ0 447-48; *मासिर-ए-आलमगीरी,* पृ0 401-402; भीमसेन, दिलकश, II, पृ0 112ए।

15. ख़फ़ी ख़ाँ, II, पृ0 448.

16. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 241.

17. देखिये ऊपर, अध्याय 5, 'राजाराम-सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध'।

18. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 238.

19. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* II, पृ0 81.

20. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ0 241.

21. भीमसेन, *दिलकश,* II, पृ० 112ए.

22. जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 340;. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 153.

23. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 155-56. इस संघर्ष का उल्लेख मात्र, ग्राण्ट डफ (*पूर्वोक्त,* पृ० 317) तथा जी० टी० कुलकर्णी (*पूर्वोक्त,* पृ० 162) करते हैं।

24. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 156.

25. भीमसेन, *दिलकश,* II, पृ० 130बी।

26. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 156. इसी प्रकार का प्रस्ताव जुलाई 1703 में धनाजी जाधव ने भी किया था *(पूर्वोक्त)।*

27. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 156.

28. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 164-65.

29. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 126; जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 165.

30. एस० पगड़ी, *मुग़ल आणि मराठे* (भीमसेन के *दिलकश* का मराठी अनुवाद), पृ० 146. इसका उल्लेख जी० टी० कुलकर्णी (*पूर्वोक्त,* पृ० 165-66) ने किया है।

31. जे०एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 153, 155. देखिये, इसी अध्याय में ऊपर। तुलना करें, जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 342.

परिशिष्ट

प्रारम्भिक मराठों का सैन्य संगठन तथा सेनापति की भूमिका

यह अध्ययन मराठा शासक राजाराम के सेनापति सन्ताजी घोरपड़े के कृतित्व और व्यक्तित्व पर आधारित है इस कारण इस परिशिष्ट में प्रारम्भिक मराठों के सैन्य संगठन तथा सेनापति की भूमिका की संक्षिप्त रूपरेखा पर दृष्टिपात करना अनुपयुक्त न होगा। यह सच है कि मराठों के इतिहास के इस पक्ष पर विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। फिर भी हम राजाराम के समय के सैन्य संगठन के बारे में इस तथ्य के आधार पर राय बना सकते हैं कि इस मराठा शासक की मृत्यु तक शिवाजी की सैन्य प्रणाली लगभग अपरिवर्तित रही और पेशवाओं ने भी कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ इसे जारी रखा।[1]

राजा सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था। उसके अधीन *सेनापति* था जिसे इससे पहले *सरनोबत* कहा जाता था। सेना राजा की शक्ति का आधार थी। सेना का महत्व इसी बात से पता यलता है कि *सेनापति* को *अष्ट-प्रधान* परिषद में स्थान मिला हुआ था और वह राजसिंहासन के नीचे बाई ओर पहले स्थान पर बैठता था, जबकि *पेशवा* सिंहासन के दायीं ओर प्रथम स्थान पर विराजमान होता था।[2]

यद्यपि आठ सदस्यीय परिषद में *सेनापति* सैन्य मामलों का प्रभारी होता था, तथापि परिषद के कम से कम पांच अन्य सदस्यों के लिए सैन्य सेवा करना आवयक था जैसा कि अभिषेक संवत् के प्रथम वर्ष में तैयार किये गये *कानून जाब्ता* से स्पष्ट है जिसे

के0एन0 साणे ने प्रकाशित किया और जिसका उल्लेख एस0 एन0 सेन द्वारा किया गया है।[3] इस *कानून जाब्ता* के अनुसार *सेनापति* के अतिरिक्त *पेशवा, अमात्य, सचिव, मन्त्री* और *सुमन्त* को अपने सामान्य कर्तव्यों के निर्वाहन के अलावा युद्ध में भी सेवा करनी होती थी।[4]

घुड़सवार और पैदल सेना प्रारम्भिक मराठों की सेना के मुख्य अंग थे। तोपखाने एवं शिवाजी की कोकण विजय के बाद नौसेना का संगठन किया गया। घुड़सवार सेना दो भागों में विभक्त थी *बारगीर* और *शिलेदार*। जहाँ एक ओर *बारगीर* नियमित सैनिक थे और उन्हें घोड़े, अस्त्र-शस्त्र राजन्य के द्वारा उपलब्ध कराये जाते थे, वही दूसरी ओर शिलेदारों को अपने अश्व एवं अस्त्र-शस्त्र स्वयं लाने पड़ते थे।[5] इनकी तुलना प्राचीन काल के मौल (नियमित एवं वंशानुगत) तथा *भृत* (भाड़े के) सैनिकों से की जाती है।[6] बारगीर सैनिक दर्जे में शिलेदार सैनिकों से उच्च होते थे और सभासद का कहना है कि शिलेदारों को बारगीर (पग) के अधीन रखा जाता था।[7]

प्रारम्भ में शिवाजी को मुख्य रूप से शिलेदार सैनिकों पर निर्भर रहना पड़ा। उनके प्रथम *सरनोबत* मनकोजी दाहातोण्डे के समय में शिवाजी की सेना के तीन हजार घुड़सवारों में से 2/3 इसी वर्ग के थे।[8] किन्तु सभासद के अनुसार वर्ष 1659 में शिवाजी की अश्व सेना में दस हजार घुड़सवार थे जिनमें से केवल तीन हजार ही शिलेदार थे।[9] सभासद के इस कथन की पुष्टि खफी खाँ ने भी की है जिसने लिखा है कि शिवाजी ने कच्छ और अरब के लगभग 10 या 12 हजार घोड़े प्राप्त किये थे और इसलिए जब

वह अपनी सेना किसी अभियान पर भेजता था तो उसमें अधिकांश घुड़सवार सैनिक *बारगीर* होते थे अर्थात् वे राजा द्वारा दिये गये अश्वों पर सवार होते थे।[10] *बारगीर* सैनिकों को दी जाने वाली वरीयता का कारण सम्भवतः यह था कि शिलेदारों की अपेक्षा वे अधिक अनुशासित थे और शिलेदारों की अपेक्षा वे अधिक सजगता से सैन्य टुकड़ी के रूप में कार्य करते थे।

घुड़सवार सेना का संगठन इस प्रकार था :-

1. एक मराठा *हवलदार* के अधीन 25 *बारगीर* सैनिक।
2. एक *जुमलेदार* के अधीन पाँच *हवलदार।*
3. एक *हजारी* के अधीन दस *जुमलेदार।*
4. एक *पंच हजारी* के अधीन *पांच हजारी*।

पंच हजारी सरनोबत तथा *प्रधान सेनापति* की कमान में होते थे।[11]

शिलेदार सैनिक भी इसी प्रकार संगठित थे।[12] पैदल सेना भी रेजीमेन्टो, ब्रिगेडों और विभागों में विभाजित थी। सबसे छोटी ईकाई नौ पैदल सैनिकों की होती थी जिसका उत्तरदायित्व एक *नायक* के अधीन होता था। उच्च अधिकारियों का वर्गीकरण इस प्रकार था:-

1. एक *हवलदार* के अधीन पांच *नायक* ।
2. एक *जुमलेदार* के अधीन दो *यतीन हवलदार* ।
3. एक *हजारी* के अधीन 10 *जुमलेदार* ।
4. पैदल सेना के *सरनोबत* के अधीन सात *हजारी।*[13]

घुड़सवार सेना पैदल सेना से अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती थी। इसका प्रमाण यह है कि घुड़सवार सेना के *सरनोबत* को *अष्ट-प्रधान* परिषद में स्थान प्राप्त था किन्तु पैदल सेना के

सेनापति को नहीं।[14]

शिवाजी ने बोहिरजी नायक जाधव के उत्तर दायित्व में एक कुशल गुप्तचर विभाग का भी गठन किया क्योंकि उसे मालूम था कि उत्कृष्ट गुप्तचरों के बिना वह शत्रुओं पर सहजता से विजय नहीं प्राप्त कर सकता था। उसकी अनेक सैनिक एवं राजनायिक सफलताएँ उसके गुप्तचरों द्वारा एकत्र गुप्त सूचनाओं के कारण ही सम्भव हुई थी।[15] यही गुप्तचर विभाग राजाराम के अधीन भी बहाल रहा होगा।

शिवाजी ने दुर्गों पर अत्यधिक जोर दिया। इन दुर्गों का भारतीय युद्ध कला में प्राचीन समय से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इनका महत्व हवाई हमलों के प्रारम्भ के बाद ही समाप्त हुआ। प्राचीन भारतीय राजतन्त्र में इन दुर्गों का इतना अधिक महत्व था कि उन्हें राज्य के सप्तांग में से एक माना जाता था।[16] लोकहितवादी लिखता है, ''शिवाजी राजा अपने दुर्गों के कारण प्रसिद्ध थे'।[17] ये दुर्ग, विशेषतया पर्वत-दुर्ग, अभेद्य होते थे और उनमें से अधिकांश को बहुत कम रक्षक सेना की आवश्यकता होती थी। दुर्ग के प्रभारी द्वारा विश्वासघात की सम्भावनाओं को कम करने के लिए शिवाजी ने प्रत्येक दुर्ग में समान स्तर के तीन अधिकारियों की नियुक्ति की थी। सभासद लिखता है कि ''प्रत्येक दुर्ग में एक *हवलदार*, एक *सबनीस*, और एक *सरनोबत* होना चाहिये; और ये तीन अधिकारी समान स्तर के होने चाहियें और इन तीनों अधिकारियों को मिलजुलकर प्रशासन चलाना चाहिए'।[18] यद्यपि ये तीनों अधिकारी समान स्तर के थे तथापि व्यवहार में *हवलदार* इनका मुखिया था; वह कुंजियों का प्रभारी था। उसे स्वयं सायंकाल और प्रातःकाल

फाटक बन्द करना और खोलना होता था।[19] *सबनीस* सामान्य रूप से लेखा और सैनिकों की उपस्थित का लेखा रखने का प्रभारी होता था।[20] सरनोबत सैन्य मामलों का प्रभारी होता था और महत्वपूर्ण दुर्गों में पांच से सात *तत्सरनोबत* भी होते थे।[21] *कारखानिस* नाम से भी एक अधिकारी नियुक्त होता था जिसका उत्तरदायित्व हर समय दुर्ग में खाद्यान्नों और युद्ध के लिए अस्त्रों-शस्त्रों का भण्डार बनाये रखना था।[22] दुर्ग प्रशासन की यही प्रणाली राजाराम के समय तक बनी रही और उसके बाद भी कुछ परिवर्तन के साथ इसे जारी रखा गया।

प्रारम्भिक मराठों की प्रशासनिक प्रणाली की एक विशेषता यह थी कि शिवाजी सैनिकों और अधिकारियों को वेतन के बदले जागीर देने का पक्षधर नहीं था।[23] सैनिक एवं नागरिक अधिकारियों को जो वेतन दिया जाता था वह आंशिक रूप से नकद होता था और आंशिक रूप से अन्य रूप में होता था।[24] सभासद ने कतिपय सैन्य अधिकारियों के वेतन को इंगित किया है।

पैदल सेना के *जुमलेदार* को 100 *हुण* प्रतिवर्ष, और *हजारी* को 500 *हुण* प्रतिवर्ष वेतन मिलता था।[25] घुड़सवार जुमलेदार को 500 *हुण* प्रतिवर्ष तथा *हजारी* को प्रतिवर्ष 1000 *हुण* वेतन दिया जाता था।[26] अधिकारियों के कर्मचारियों को अलग से वेतन दिया जाता था।[27]

दुर्भाग्यवश कृष्णाजी अनन्त सभासद ने, जिन्होंने मराठा सैनिक अधिकारियों के वेतन का यह विवरण दिया है, *सेनापति* तथा *सरनोबत* के वेतन के बारे में कुछ नहीं कहा।[28] लेकिन अभिषेक सवंत् के प्रथम वर्ष में बनाये गये *कानून जाब्ता* से ज्ञात होता है

कि सम्मान के रूप में *सेनापति* को भेंट गये वस्त्र हर प्रकार से युवराज तथा प्रधान मन्त्री या *पेशवा* के समान होते थे।[29] इसका यह अर्थ निकाला जा सकता है कि उसका वेतन भी युवराज तथा प्रधान मन्त्री के बराबर होता होगा।

इस अवसर पर प्रारम्भिक मराठों के सैनिक प्रशासन में *सेनापति* की भूमिका के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना समीचीन होगा। शिवाजी के शासनकाल में *सेनापति* यद्यपि सैन्य विषयों का सर्वोच्च अधिकारी होता था, तथापि पेशवा सैनिक अभियानों का नेतृत्व करता था। इस सम्बन्ध में *पेशवा* के पद की तुलना विजयनगर राज्य के *दलवी* से की गई है।[30] किन्तु जैसा हमने पहले देखा है,[31] राजाराम के शासनकाल में सेना का उत्तरदायित्व कुशल सेनापतियों, सन्ताजी घोरपड़े तथा धनाजी जाधव, को सौंपा गया। इन दोनों सेनापतियों की ख्याति ऐसी थी कि उनके अधिकारों को चुनौती देने की बात *पेशवा* सोच भी नहीं सकते थे।[32] यह अलग बात है कि *सेनापति* पद के यह दोनों दावेदार इस स्थान की प्राप्ति के लिए कभी-कभी कटु संघर्ष में रत हो जाते थे। धनाजी की मृत्यु पर उसके पुत्र, चन्द्रसेन जाधव, को शाहूजी ने *सेनापति* नियुक्त किया और उसके निजाम से मिल जाने पर उसका स्थान खाण्डेराव दाभादे को दिया गया। उसका पुत्र त्रियम्बकराव था जिसे बाजीराव ने दुभोई में पराजित कर नार डाला और मराठों के इतिहास में *सेनापति* की भूमिका का महत्व समाप्त हो गया। किन्तु कुछ समय तक दाभादे सरदारों ने समय-समय पर दी गयी जागारों का उपभोग जारी रखा। जब रामचन्द्र जाधव और मुरारराव घोरपड़े को विभिन्न अवसरों पर यह पद सौंपा गया तो यह खोखला सम्मान मात्र रह गया था।[33]

टिप्पणी

1. एस0 एन0 सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज* (द्वितीय संस्करण), पृ0 27.
2. रानाडे, *राईज ऑव द मराठा पावर,* पृ0 126-127, वी0 जी0 दीर्घ तथा एस0 एन0 कानूनगो, *द मराठा सुप्रिमेसी* पृ0 541-542.
3. *ऐडिमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज,* पृ0 49 और आगे।
4. *पूर्वोक्त,* पृ0 50-52.
5. *पूर्वोक्त,* पृ0 143.
6. *अर्थशास्त्र,* शामाशास्त्री द्वारा अनूदित, पृ0 571-572.
7. *सभासद बखार,* पृ0 28-29; सेन, *शिवा छत्रपति,* पृ0 30-31; सेन, *ऐडिमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज़,* पृ0143-144; वी0 जी0 दीघे तथा एस0 एन0 कानूनगो, *द मराठा सुप्रिमेसी,* पृ0 564.
8. एस0 एन0 सेन, *मिलिटरी सिस्टम ऑव दि मराठाज,* पृ0 8.
9. *सभासद बखर,* पृ0 11.
10. इलियट तथा डॉसन, *हिस्टरी ऑव इण्डिया,* VII, पृ0 287.
11. *सभासद बखर,* पृ0 28-29; सेन, *शिवा छत्रपति,* पृ0 30-31; सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज,* पृ0 143-144.
12. *पूर्वोक्त*।
13. एस0 एन0 सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज,* पृ0 143.
14. एस0 एन0 सेन, *मिलिटरी सिस्टम ऑव द मराठाज,* पृ0 9.
15. एस0 एन0 सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज,* पृ0 145.

16. बेनीप्रसाद, *थ्योरी ऑव गवर्नमेन्ट इन एंशियन्ट इण्डिया* (द्वितीय संस्करण), इलाहाबाद, 1974, पृ0 147.

17. लोकहितवादी, *ऐतिहासिक गोष्ठी* (देखिये एस0 एन0 सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज*, पृ0 28 और आगे)।

18. *सभासद बखर*, पृ0 27–28

19. एस0 एन0 सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज*, पृ0 131–132, वी0 जी0 दीघे तथा एस0 एन0 कानूनगो, *द मराठा सुप्रिमेसी*, पृ0 566.

20. *पूर्वोक्त* पृ0 133 और आगे।

21. *सभासद बखर*, पृ0 27–28.

22. एस0 एन0 सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज*, पृ0 129,133.

23. एस0 एन0 सेन, *मिलिट्रीसिस्टम ऑव द मराठाज*, पृ0 11.

24. एस0 एन0 सेन, *ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑव द मराठाज*, पृ0 147–148.

25. *पूर्वोक्त*, पृ0 143.

26. *पूर्वोक्त*, पृ0144.

27. *पूर्वोक्त*, पृ0 143–144.

28. एस0 एन0 सेन, *मिलिटरी सिस्टम ऑव द मराठाज*, पृ0 9.

29. *पूर्वोक्त*, पृ0 9–10.

30. *पूर्वोक्त*, पृ0 48, टिप्पणी।

31. ऊपर, अध्याय 3.

32. एस0 एन0 सेन, *मिलिटरी सिस्टम ऑव द मराठाज*, पृ0 48.

33. *पूर्वोक्त*, पृ0 48–49.

SELECT BIBLIOGRAPHY

Acworth, H A
Ballads of the Marathas, London, 1894.

Alamgir-nama of Mirza Muhammad Kazim
[ed] Khadim Husain and Abdul Hai, Calcutta, 1865-73.

Ali, Ahmad [ed]
Ma'asir-i-Alamgiri of Saqi Musta'ad Khan, Calcutta, 1870-73.

Allan, J, T W Haig, and H H Dodwell
The Cambridge Shorter History of India [reprint], New Delhi, 1979.

Apte, D V [ed]
Shiv-charitra-pradipa, Pune, 1925.

Basatin-us-Salatin of Mirza Ibrahim Zuberi
[text] Hyderabad, 1897.

Bendre, V S [ed]
Rajaram-charitam, Pune, 1931.

Bhimsen Burhanpuri
Tarikh-i-Dilkasha, [tr] J N Sarkar, Bombay, 1972.

Briggs, John [tr]
Tarikh-i-Firishta of Muhammad Qasim Firishta, London, 1827-29.

Burn, R [ed]
The Cambridge History of India, IV, Cambridge, 1937.

Chaudhuri, J N
'Aurangzeb [1658-1680]', Chapter VIII, in R C Majumdar, J N Chaudhuri, and S Chaudhuri [ed], *The Mughul Empire* [History and Culture of the Indian People, VII], Bombay, 1984, pp. 220-246.

Chaudhuri, J N
'Aurangzeb [1681-1707]', Chapter X, in R C Majumdar, J N Chaudhuri and S Chaudhuri [ed], *The Mughul Empire* [History and Culture of the Indian People, VII], Bombay, 1984, pp. 281-304.

Chaudhuri , J N
'Muslim Resistance to Mughul Imperialism-II: The Five Sultanates of the Deccan', Chapter XIV, in R C Majumdar, J N Chaudhuri, and S Chaudhuri [ed], *The Mughul Empire* [History and Culture of the Indian People, VII], Bombay, 1984, pp. 412-479.

Chaudhuri, J N, R C Majumdar, and S Chaudhuri [ed]
The Mughul Empire [History and Culture of the Indian People, VII], Bombay, 1984.

Chadhuri, S, RC Majumdar, and J N Chaudhuri [ed]
The Mughul Empire, [History and Culture of the Indian People, VII], Bombay, 1984.

De, U N
Some Aspects of Mediaeval Indian History, New Delhi, 1971.

Deo, S S [ed]
Sri Sampradyachi Kagadpatre, Dhulia, 1915.

Diary and Consultation Books of Fort St George [1681-85]
[ed] A T Pringle, 5 vols, Madras, 1893-95.

Dighe, V G and R C Majumdar [ed]
The Maratha Supremacy [History and Culture of the Indian People, VIII], Bombay, 1977.

Dowell, H H, J Allan, and T W Haig
The Cambridge Shorter History of India [reprint], New Delhi, 1979.

Dowson, J [tr]
Muntakhab-ul-Lubab-i-Muhammad Shahi of Khafi Khan, in H M Elliot and J Dowson [ed], *History of India, as told by its own Historians,* VII [reprint], Allahabad, [year of publication not mentioned], pp. 207-533.

Dowson, J, and H M Elliot [ed]
History of India, as told by its own Historians , 8 vols [reprint], Allahabad, [year of publication not mentioned].

Duff, J C Grant
A History of the Maharattas, 3 vols; vol. I, Calcutta, 1912.

Edwardes, S M, and H L O Garret
Mughal Rule in India, Delhi, 1962.

Elliot, H M, and J Dowson [eds]
History of India, as told by its own Historians, 8 vols [reprint], Allahabad, [year of publication not mentioned].

English Factories in India, New Series, 1670-1684
[ed] C Fawcett, 4 vols, Oxford, 1936-55.

Faruki, Zahiruddin
Aurangzeb and His Times, Delhi, 1972.

Fawcett, C [ed]
English Factories in India, New Series, 1670-1684, 4 vols, Oxford, 1936-55.

Firishta, Muhammad Qasim
Tarikh-i-Firishta, [tr] John Briggs, London, 1827-29.

Grewal, J S
Muslim Rule in India, Calcutta, 1970.

Hai, Abdul, and Khadim Hussain [ed]
Alamgir-nama of Mirza Muhammad Kazim, Calcutta, 1865-73.

Haig, T W, J Allan and H H Dodwell
The Cambridge Shorter History of India [reprint], New Delhi, 1979.

Husain, Khadim, and Abdul Hai [ed]
Alamgir-nama of Mirza Muhammad Kazim, Calcutta, 1865-73.

Jedhe-yanchi Shakavali
[tr] J N Sarkar, in Shivaji Souvenir, 1927.

Joshi, S N [ed]
Sambhaji-kalina Patra Sar Sangraha, Pune, 1949.

Keene, H G
The Fall of the Moghul Empire [reprint], Delhi, 1971.

Keluskar, and N S Takakhav
Life of Shivaji Maharaj, Manoranjan Press, 1921.

Kennedy, P
History of the Great Moghuls [reprint], Calcutta, 1968.

Khafi Khan

Muntakhab-ul-Lubab-i-Muhammad Shashi, [tr] J Dowson, in H M Elliot and J Dowson [ed], *History of India , as told by its own Historians*, VII, [reprint], Allahabad, [year of publication not mentioned], pp. 207-533.

Khan, Y H

Selected Documents of Aurangzeb's Reign, 1659-1706 AD, Hyderabad, 1958.

Khare, G H

Persian Sources of Indian History [tr into Marathi], 3 vols, Pune, 1937.

Kinkaid, C A, and D B Parasnis

A History of the Maratha People, 3 vols, OUP, London, 1918-25.

Kinkaid, David

Shivaji, the Founder of Maratha Empire [reprint], Delhi, 1984.

Kishore, Brij

Tara Bai and her Times, Bombay, 1963.

Kulkarnee, N H

Chhatrapati Shivaji : Architect of Freedom, Delhi, 1975.

Kulkarni, A R

Maharashtra in the Age of Shivaji.

Kulkarni, G T

The Mughal-Maratha Relations : Twenty Five Fateful Years [1682-1707], Pune, 1983.

Lal, K S
Studies in Mediaeval Indian History, Delhi, 1966.

Lane-Poole, Stanley
Mediaeval India Under Mohammedan Rule, [reprint], Delhi, 1963.

Ma'asir-i-Alamgiri of Saqi Musta'ad Khan
[ed] Ahmad Ali, Calcutta, 1870-73.
[tr] J N Sarkar, Calcutta, 1871.

Mahaley, K L
Shivaji the Pragmatist, Nagpur, 1969.

Maharashtra State Archive, Poona residency Correspondence
[ed] G S Sardesai and J N Sarkar, 14 vols, Salsette Chronicle

Majumdar, R C, J N Chaudhuri and S Chaudhuri [ed]
The Mughul Empire [History and Culture of the Indian People, VII], Bombay, 1984.

Majumdar, R C, and V G Dighe [eds]
The Maratha Supremacy [History and Culture of the Indian People, VIII], Bombay, 1977.

Manucci, Nicholo
Storia do Mogor, [ed and tr], W Irvine, 4 vols, London, 1907-08.

Manucci, Nicholo
Memoirs of the Mogul Court, [ed] S M Edwardes, [tr] W Irvine, London, 1957.

Marshall, D N
Mughals in India, a Bibliographical Survey, Bombay, 1967.

Marshall, D N, and V B D Taraporewala
Mughal Bibliography [Select Persian Sources for the Study of Mughals in India], Bombay, 1962.

Martin, Francois
Memoires de Francois Martin, tr as *Memories of Francois Martin*, by J N Sarkar, Modern Review, 1924; see also, *House of Shivaji,* [3rd ed], Calcutta, 1955.

Mawjee, P V, and D B Parasnis
Sanads and Letters, Bombay, 1913.

Molesworth
Marathi-English Dictionary.

Muntakhab-ul-Lubab-i-Muhammad Shahi of Khafi Khan
[tr] J Dowson, in H M Elliot and J Dowson [ed], *History of India, as told by its own Historians*, VII, [reprint], Allahabad, [year of publication not mentioned], pp. 207-533.

Nadkarni, R V
The Rise and Fall of the Maratha Empire, Bombay, 1966.

Nizami, K A
Studies in Mediaeval Indian History and Culture, Allahabad, 1966..

Orme, Robert
Historical Fragments of the Mogul Empire, Calcutta, 1905.

Paramananda Kavindra
Shiv Bharat, [ed with Marathi tr] S M Divekar, 1927.

Paranjape, E G
English Records on Shivaji.

Parasnis, D B, and C A Kinkaid
A History of the Maratha People, 3 vols, OUP, London, 1918-25.

Parasnis, D B, and P V Mawjee
Sanads and Letters, Bombay, 1913.

Pringle, A T [ed]
Diary and Consultation Books of Fort St George, 1681-1685, 5 vols, Madras, 1893-95.

Prinsep, H T
History of the Political and Military Transactions, 2 vols.

Rajaram-charitam
[ed] V S Bendre, Pune, 1931.

Rajwade, V K
Marathyanchya Itihasachi Sadhane :
vol. VIII, Kolhapur, 1903;
vol. XV, Dhulia, 1912;
vol XVI, Bombay, 1912;
vol XVII, Bombay, 1913.

Ranade, M G
Rise of the Maratha Power, Bombay, 1900.

Ranade, M G
Maratha Sakti ka Udaya [Hindi tr of the above], New Delhi, 1966.

Ranade, M G, Richard Temple, G S Sardesai, *et al*
Shivaji and the Rise of the Maharattas, Calcutta, 1953.

Rawlinson, H G
Shivaji the Maratha : His Life and Time, Oxford, 1915.

Sambhaji-kalina Patra Sar Sangraha
[ed] S N Joshi, Pune, 1949.

Saqi Musta'ad Khan
Ma'asir-i-Alamgiri, [tr], J N Sarkar, Calcutta, 1871.

Sardesai, G S
Marathi Riyasat [Marathi], 8 vols, Bombay, 1915-25.

Sardesai, G S
Sthirabuddhi Rajaram, Bombay, 1936.

Sardesai, G S
The Main Currents of Maratha History, Bombay, 1949.

Sardesai, G S
A New History of the Marathas, 3 vols : vol. I, Shivaji and his Times [1600-1707], Bombay, 1957.

Sardesai, G S
Marathom ka Navina Itihasa, I, [Hindi tr of the above], Agra, 1976.

Sardesai, G S
'Shivaji', Chapter IX in R C Majumdar, J N Chaudhuri and S Chaudhuri [ed], *The Mughul Empire* [History and Culture of the Indian People, VII] , Bombay 1984, pp. 247-280.

Sardesai, G S, and J N Sarkar [ed]
Maharashtra State Archive, Poona Residency Correspondence, 14 vols. Salsetee Chronicle.

Sardesai, G S, Richard Temple, M G Ranade, *et al*
Shivaji and the Rise of the Maharattas, Calcutta, 1953.

Sarkar, J N [tr]
Ma'asir-i-Alamgiri of Saqi Musta'ad Khan, Calcutta, 1871.

Sarkar, J N
Studies in Mughal India, [2nd ed], Calcutta, 1919.

Sarkar, J N
Anecdotes of Aurangzib, [2nd ed], Calcutta, 1925.

Sarkar, J N [tr]
Jedhe-yanchi Shakavali, in Shivaji Souvenir, 1927.

Sarkar, J N
Studies in Aurangzib's Reign, Calcutta, 1933.

Sarkar, J N
Shivaji and His Times [5th ed], Calcutta, 1952.

Sarkar, J N
History of Aurganzib, 5 vols:
vol. IV, Calcutta, 1930;
vol. V, Orient Longman, Bombay, 1974.

Sarkar, J N
House of Shivaji [Studies and Documents on Maratha History: Royal Period], New Delhi, 1978.

Sarkar, J N
Short History of Aurangzib, [3rd ed], New Delhi, 1979.

Sarkar J N
Fall of the Mughal Empire, 4 vols, [4th ed], Hyderabad, 1988.

Sarkar, J N
Persian Records of Maratha History.

Sarkar, J N, and G S Sardesai [ed]
Maharashtra State Archive, Poona Residency Correspondence, 14 vols, Salsette Chronicle.

Sarkar, Jagdish Narayan
The Military Despatches of a Seventeenth Century Indian General, Calcutta, 1969.

Sastri, K A N
A History of South India, [4th ed], OUP, Madras, 1975.

Scott, J
History of the Deccan, 2 vols.

Sen, S N
Siva Chhatrapati, [tr of *Sabhasad Bhakhar* with extracts from Chitnis and *Sivadigvijaya*], [Extracts and Documents Relating to Maratha History, I], Calcutta, 1920.

Sen, S N
Administrative System of the Marathas, Calcutta, 1925.

Sen, S N
Military System of the Marathas, [2nd ed], Calcutta, 1958.

Sen, S N
Foreign Biographies of Shivaji [Extracts and Documents Relating to Maratha History, II], London {Year of Publication not mentioned].

Sharma, S R
Maratha History, Re-examined [1295-1707], Bombay, 1944.

Sharma, S R
The Founding of Maratha Empire, [reprint], Bombay, 1964.

Sharma, S R
A Bibliography of Mughal India, Bombay, [year of publication not mentioned].

Sherwani, H K
The Bahamanis of the Deccan, Hyderabad, 1953.

Shiv Bharat of Paramananda Kavindra
[ed with Marathi tr] S M Divekar, 1927.

Shiv-charitra-pradipa
[ed] D V Apte, Pune, 1925.

Shiv Charitra Sahitya
Various authors, 13 vols, Pune, 1926-65.

Sinha, S K
Mediaeval History of the Deccan, I, Bahamanis, Hyderabad, 1964.

Sri Sampradyachi Kagadpatre
[ed], S S Deo, Dhulia, 1915.

Srinivasachari, C S
A History of Gingee and Its Rulers [Annamalai University Historical Series, I], Annamalainagar, 1943.

Srinivasachari, C S [ed]
Selections from Orme Manuscripts, Annamalainagar, 1952.

Srivastava, A L
The Mughul Empire, [4th ed], Agra, 1964.

Takakhav, N S, and Keluskar
Life of Shivaji Maharaj, Manoranjan Press, 1921.

Taraporewala, V B D , and D N Marshall
Mughal Bibliography [Select Persian Sources for the Study of Mughals in India], Bombay, 1962.

Tarikh-i-Dilkasha of Bhimsen Burhanpuri
[tr] J N Sarkar, Bombay, 1972.

Tarikh-I-Firishta of Muhammad Qasim Firishta
[tr] John Briggs, London, 1827-29.

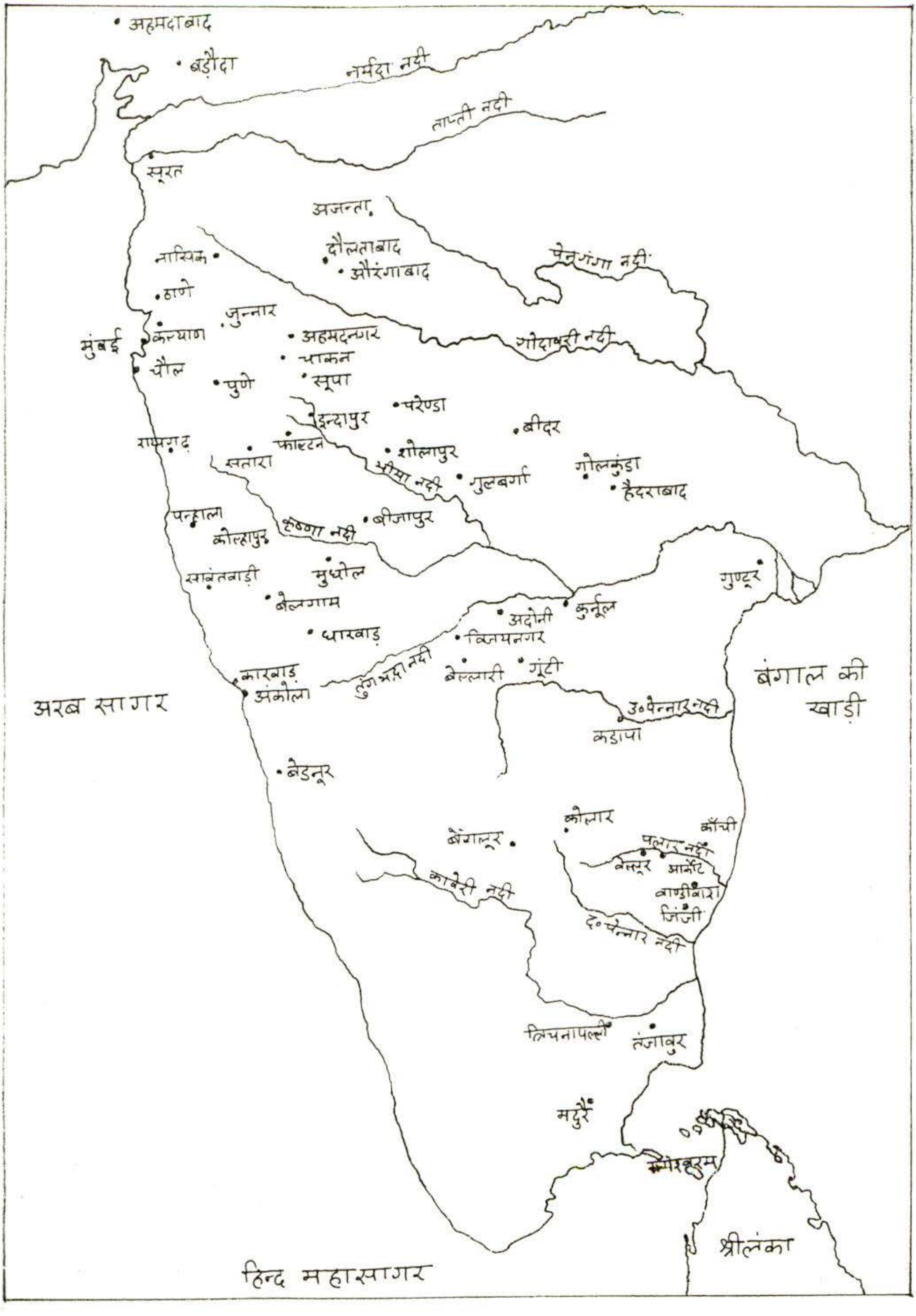
Temple, Richard, M G Ranade, G S Sardesai, *et al*
Sivaji and the Rise of the Mahrattas, Calcutta, 1953.

Tripathi, R P
Rise and Fall of the Mughal Empire, Allahabad, 1956.

Waring, E S
A History of the Mahrattas, London, 1810.

Yazdani, G
Bidar, Its History and Monuments, Oxford, 1947.

Zuberi, Mirza Ibrahim
Basatin-us-Salatin, Hyderabad, 1897.


अहमदाबाद
बड़ौदा
नर्मदा नदी
ताप्ती नदी
सूरत
अजन्ता
दौलताबाद
औरंगाबाद
पेनगंगा नदी
नासिक
ठाणे
जुन्नार
मुंबई
कल्याण
अहमदनगर
चाकन
चौल
पुणे
सूपा
गोदावरी नदी
इन्दापुर
परेण्डा
बीदर
रायगढ़
फाल्टन
सतारा
शोलापुर
भीमा नदी
गुलबर्गा
गोलकुंडा
हैदराबाद
पन्हाला
कोल्हापुर
कृष्णा नदी
बीजापुर
मुधोल
सावंतवाड़ी
बेलगाम
गुण्टूर
अदोनी
कुर्नूल
धारवाड़
विजयनगर
कारवाड़
अंकोला
तुंगभद्रा नदी
बेल्लारी
गूंटी
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
उ० पेन्नार नदी
कडापा
बेदनूर
कोलार
काँची
बेंगलूर
पलार नदी
वेल्लूर
आर्कोट
वाण्डीवाश
कावेरी नदी
जिंजी
द० पेन्नार नदी
त्रिचनापल्ली
तंजावुर
मदुरै
श्रीलंका
हिन्द महासागर

सन्ताजी घोरपड़े :
व्यक्तितत्व एवं कृतित्व

मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास विषय में
पी-एच०डी० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

अनुसन्धानकर्त्री
श्रीमती निधि श्रीवास्तव

शोध-निर्देशक
प्रोफेसर पी० के० घोष

मध्यकालीन एवं आधुनिक भारतीय इतिहास विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ
2002

उपसंहार

सन्ताजी घोरपड़े के कृतित्व एवं व्यक्तित्व के अध्ययन से सिद्ध होता है कि वह एक वीर योद्धा और कुशल सेनानायक था। उसे अपनी प्रथम महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धि 2 अप्रैल 1689 को प्राप्त हुयी, जब उसने शम्भूजी की मृत्यु के मात्र ढाई मास बाद कोड़ेगाँव में औरंगजेब के सैन्य शिविर पर आक्रमण किया, और मुग़ल सम्राट के तम्बू के स्वर्णिम कलश निकाल कर उन्हें विशालगढ़ में राजाराम को भेंट किया। उसकी इस सफलता से न केवल मुग़ल सेना में भय व्याप्त हो गया, अपितु शम्भूजी की हत्या से हतोत्साह मराठों में भी एक नयी आशा का संचार हुआ।

राजाराम के महाराष्ट्र से जिंजी पलायन करते समय भी सन्ताजी घोरपड़े को कुछ सैन्य उपलब्धियाँ प्राप्त हुयीं। उसने मुग़ल सेनापति, जुल्फ़िक़ार खाँ, की सेना पर आक्रमण कर दिया, और उसे पराजित कर उससे पाँच हाथी और कुछ मूल्यवान वस्तुएँ लूट लीं। इसी अवसर पर उसने बेडनूर में औरंगजेब के सेनापतियों, जाँनिसार खाँ, शरजा खाँ, और मलतब खाँ, का सफलतापूर्वक सामना किया। इस प्रकार, सन्ताजी घोरपड़े ने उनसे राजाराम और बेडनूर की रानी की रक्षा की।

जिंजी पहुँच कर राजाराम ने महादजी नायक पनसंबल को अपना सेनापति नियुक्त किया। किन्तु कुछ ही समय बाद महादजी नायक की मृत्यु हो गयी, और सम्भवतः सन्ताजी घोरपड़े की सामरिक गतिविधियों से प्रभावित होकर राजाराम ने उसे सेनापति के रिक्त पद पर नियुक्त कर दिया। सेनापति नियुक्त किये जाने के पश्चात् सन्ताजी घोरपड़े को राजाराम द्वारा मुग़लों से संघर्ष करने

के लिये महाराष्ट्र भेज दिया गया। वहाँ उसने मई 1690 में मुग़ल सेनापति, रूस्तम खाँ, को पराजित करके बन्दी बना लिया, और उसे मुक्त करने के लिये एक लाख रूपये की फिरौती प्राप्त की। औरंगजेब ने लुत्फुल्ला खाँ को खटाव और उसके आस-पास मुग़ल सैन्य चौकियाँ स्थापित करने के निर्देश दिये थे। सन्ताजी घोरपड़े ने लुत्फुल्ला खाँ से संघर्ष करके उसके इस कार्य में व्यवधान उत्पन्न किया। इस दौरान शंकराजी पन्त ने मराठा नायकों को मुग़लों के अधिकार में गये महाराष्ट्र के क्षेत्रों पर मराठा अधिकार पुनः स्थापित करने के आदेश दिये। इन गतिविधियों में सन्ताजी घोरपड़े निरन्तर संलग्न दिखायी देता है।

उधर सितम्बर 1690 के प्रारम्भिक दिनों में औरंगजेब के आदेश पर जुल्फ़िक़ार खाँ जिंजी पहुँचा गया, और उसने जिंजी के दुर्ग का घेरा डाल दिया। दिसम्बर 1691 में शाहज़ादा काम बख़्श और असद खाँ भी जुल्फ़िक़ार खाँ की सहायता के लिये जिंजी पहुँच गये। राजाराम की स्थिति की गम्भीरता को समझकर शंकराजी पन्त ने दिसम्बर 1692 में सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव को जिंजी भेज दिया। मार्ग में सन्ताजी ने काँची के मुग़ल फ़ौज़दार, अली मर्दान खाँ, को पराजित कर बन्दी बना लिया, और भारी फिरौती प्राप्त करने के बाद उसे नुक्त किया। सन्ताजी घोरपड़े और धनाजी जाधव के जिंजी पहुँच जाने से मुग़लों की स्थिति कमज़ोर पड़ गयी। मुग़ल वज़ीर, असद खाँ, जिंजी की घेराबन्दी का सर्वोच्च अधिकारी था। उसने राजाराम के पास शान्ति का प्रस्ताव भेजा। उसने मुग़ल सेना की सुरक्षित वाण्डीवाश वापसी के बदले राजाराम और उसके ब्राह्मण मन्त्रियों को रिश्वत में भारी रकमें दीं। राजाराम

ने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और मुग़ल सेना 22 अथवा 23 जनवरी 1693 को जिंजी की घेराबन्दी उठाकर वापस लौट गयी।

सन्ताजी घोरपड़े को अपने जीवन की सबसे महत्वपूर्ण सामरिक उपलब्धि नवम्बर 1695 में मुग़ल सेनापतियों, कासिम खाँ और खानाजाद खाँ, के विरुद्ध प्राप्त हुयी। इस युद्ध में सन्ताजी घोरपड़े ने अपने रण-कौशल का परिचय देते हुये अपनी सेना को तीन भागों में विभाजित किया था। इनमें से एक भाग को उस छोटे मुग़ल सैन्य शिविर पर आक्रमण करके उसे लूटने के लक्ष्य से भेजा गया, जो मुख्य मुग़ल पड़ाव से छः मील आगे स्थित था। दूसरा भाग मुख्य मुग़ल सेना से लड़ने के लिये भेजा गया। तीसरा भाग *रिज़र्व* के रूप में रखा गया। सन्ताजी घोरपड़े ने कासिम खाँ और खानाजाद खाँ के साथ युद्ध करके उन्हें पराजित कर दिया, और दोदेरी के दुर्ग की ओर भागने पर विवश किया। इन मुग़ल सेनापतियों ने बड़ी कठिनाई के साथ दोदेरी के दुर्ग में प्रवेश किया, किन्तु सन्ताजी घोरपड़े ने इस दुर्ग को घेर लिया। कासिम खाँ की दुर्ग में ही मृत्यु हो गयी। खानाज़ाद खाँ ने मराठों के पास शान्ति का प्रस्ताव भेजा। मुग़ल अधिकारियों को दुर्ग छोड़ कर जाने की अनुमति देने के लिये मराठों को भारी रकमें प्राप्त हुयी। मुग़लों से अधिकृत की गयी सम्पत्ति की कीमत भी पचास से साठ लाख के बीच आँकी गयी हैं।

ऐसा नहीं है कि सन्ताजी घोरपड़े को सभी युद्धों में निरन्तर विजय ही प्राप्त होती रही हो। उदाहरण के लिये, नवम्बर 1693 के आस-पास हिम्मत खाँ और हमीद-उद्-दीन खाँ के नेतृत्व में

मुग़ल सेनाओं ने विक्रमहल्ली के निकट उसे पराजित कर दिया। दिसम्बर 1694 में हिम्मत ख़ाँ ने एक बार नलदुर्ग के निकट, और दूसरी बार रायचूर क्षेत्र में सन्ताजी घोरपड़े को पुनः पराजित किया। किन्तु सन्ताजी इन पराजयों से हताश नहीं होता था। वह निरन्तर मुग़लों के साथ संघर्ष करता रहा, और अन्ततः जनवरी 1696 में उसने बासवपाटन के निकट हिम्मत ख़ाँ को न केवल पराजित किया, बल्कि उसे बन्दी भी बना लिया। बन्दी बनाये जाने के समय हिम्मत ख़ाँ घायल था, और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गयी।

सन्ताजी घोरपड़े की इन सामरिक उपलब्धियों से किसी भी सेनानायक को गर्व होना स्वाभाविक था। इन विजयों का मुख्य कारण सन्ताजी द्वारा गुरिल्ला युद्ध शैली का चतुराई से किया गया प्रयोग, और अपनी सेना का कुशल नियन्त्रण था। गुरिल्ला युद्ध-शैली का मराठों ने अपने शत्रुओं के विरुद्ध सफल प्रयोग किया। वे इस युद्ध-शैली को 'ग़नीमी कव' का नाम देते हैं। मराठी भाषा में 'ग़नीम' का अर्थ 'लुटेरा' है; और इस सन्दर्भ में लुटेरा कहलाना मराठों के लिये अपमान का विषय नहीं था। सन्ताजी घोरपड़े ने इस युद्ध-शैली को नवीन आयाम प्रदान किये।

मराठा युद्ध-शैली और उसकी सफलता की व्याख्या करते हुये फ्राँस्वा मार्तिन कहता है कि मराठा सैनिकों के आक्रमण के अस्त्र भाले तथा तलवारें हैं। सेना में कुछ धनुर्धर हैं, किन्तु उनकी संख्या सीमित है। इस दृष्टि से मुग़ल सेना मराठा सेना से उत्तम बैठती है। मुग़ल धनुर्धरों का निशाना मराठा धनुर्धरों की अपेक्षा अधिक सही है। मुग़ल सेना में धनुर्धरों की संख्या भी मराठों की अपेक्षा अधिक है। इस कारण मराठा सैनिक उनके समक्ष जाने का साहस

नहीं करते हैं। उनका मानना है कि मुग़ल युद्ध में उनसे श्रेष्ठ है। एक हजार मुग़ल सैनिक 3,000 अथवा 4,000 मराठा सैनिकों का सामना करते हुये पीछे नहीं हटते हैं। किन्तु मराठा सेना अचानक धावा बोलने में पारंगत है। शारीरिक, श्रम करने में भी वे मुग़ल सैनिकों से अधिक सक्षम है। उन्हें शरीर को आराम देने की चिन्ता नहीं है। उनका असबाब हल्का है, और वे बिना असबाब अथवा मालवाहक सैन्य टुकड़ी के भी सन्तुष्ट रहते हैं।[1]

चिटनीस भी मराठों की युद्ध-शैली के विषय में लिखता है कि 'मुग़ल सेनाएँ विशाल संख्या में हैं और केवल खुले मैदान में ही अविजित हैं। इसके विपरीत मराठे आज यदि इस स्थान पर प्रकट होते हैं तो कल अचानक उससे 50 मील दूर दूसरे स्थान पर। तब वे फिर अकस्मात् लौट पड़ते है और अचानक धावा कर देते हैं। वे युद्ध का केवल दिखावा मात्र करते हैं, अन्यथा लूट-मार करते हैं और भगदड़ मचा देते हैं। वे चारा इकट्ठा करने वाले दलों पर टूट पड़ते हैं, मुग़ल अधिकृत निर्बल स्थानों पर आक्रमण करते हैं, रणोपयोगी स्थानों पर अधिकार कर लेते हैं, और इस प्रकार अपने अनुचरों में विश्वास उत्पन्न करते हैं। वे गोदावरी नदी से भागानगर तक मुग़ल प्रदेश को नष्ट करते रहते हैं, लद्दू जानवरों, घोड़ों और हाथियों आदि को ले जाते हैं, शत्रु में अस्तव्यस्तता उत्पन्न कर देते हैं और एक दूसरे से बहुत दूर गुप्त झाड़ियों में छिपे रहते हैं। जिंजी जाने वाली मुग़ल सेनाओं पर वे अचानक टूट पड़ते हैं। कभी-कभी वे उनसे खुलकर युद्ध भी करते हैं, और प्रत्येक सम्भव उपाय से उन्हें इष्ट स्थान पर पहुँचने से रोक देते हैं। इन घातक जीवों को परास्त करने में सम्राट पूर्ण हताश है। वायु के समान वे

सर्वव्यापक और धोखा जैसे प्रतीत होते हैं। जब आक्रमणकारी मुग़ल सेनाएँ पीछे हट जाती हैं तो बिखरे हुए मराठे, डाँड़ से अलग किये हुए पानी की भाँति पुनः सिमिट आते हैं और यथापूर्व अपने आक्रमण को पुनः आरम्भ कर देते हैं।'[2]

ग्राण्ट डफ का कथन है कि 'इस प्रकार मराठों की दृष्टि में अपने जीवन का कोई मूल्य नहीं है और वे सर्व प्रकार से अपने राज्य की रक्षा करते हैं। उनको जागीरें और उपाधियाँ पुरस्कार में मिलती हैं। एक ओर सर्वशक्तिमान् सम्राट है, जिसके पास असंख्य सैनिक हैं, असीम कोष है, और दूसरी ओर ये थोड़े से दरिद्र, मराठें हैं जो सावधानी से अपने जीवन और साधनों का उपयोग कर रहे हैं परन्तु मुग़ल दलों के विरुद्ध भेड़ियों की टोलियों की भांति निरन्तर कार्य-प्रवृत्त रहते हैं और उनकी सम्पन्न्ता में भी साधनों का अभाव कर देते हैं।'[3]

सन्ताजी घोरपड़े इसी प्रकार की युद्ध-शैली में दक्ष था। वह एक विस्तृत क्षेत्र में फैली विशाल सैन्य टुकड़ियों का नियन्त्रण सरलतापूर्वक कर लेता था। वह परम्परागत शैली में युद्ध नहीं करता था, और स्थिति के अनुसार अपनी सामरिक योजना तैयार करता था। इसके लिये वह अपरम्परागत तरीके भी अपनाता था। उसकी सामरिक योजनाएँ त्वरित गतिशीलता पर निर्भर करती थीं, तथा उनकी सफलता इस बात पर अधारित थी कि उसके सैनिक और अधीनस्थ नायक यथासमय उसके आदेशों का क्रियान्वयन करें। इस कारण वह एक कठोर अनुशासक था, और मामूली अवज्ञा के अपराध में अपने सैनिकों को कठोर दण्ड देता था।[4] ख़फ़ी ख़ाँ लिखता है कि सन्ताजी अपने सैनिकों को कठोर दण्ड देता था।

मामूली अपराधों के लिये वह अपने सैनिकों को हाथी के पैरों के नीचे कुचल कर मरवा देता था।[5] जे0 एन0 सरकार ने उचित ही कहा है कि इस प्रकार के व्यक्ति का भय भले ही व्याप्त हो, किन्तु वह कभी भी लोकप्रिय नहीं होता है।[6] इसी कारण ख़फ़ी ख़ाँ सूचना देता है कि अधिकांश मराठा सरदार सन्ताजी घोरपड़े के शत्रु बन गये थे, और उन्होंने उसका अन्त करने के लिये धनाजी जाधव के साथ षड्यन्त्र किया था।[7]

जे0 एन0 सरकार ने धनाजी जाधव तथा सन्ताजी घोरपड़े के मध्य तुलना निम्नवत् की है:

> धनाजी सम्भ्रान्त व्यक्ति के समान युद्ध करता था। वह जानता था कि सौभाग्य की चंचल प्रवृत्ति वाली देवी युद्ध-क्षेत्र में कभी भी उसका साथ छोड़ सकती है, अतः वह कभी भी अति नहीं करता था। वह विजयी होने पर संयम का परिचय देता था, पराजित के प्रति उदारता का व्यवहार करता था, मृदु भाषी था, आत्म-नियन्त्रण रखता था, और दूरदृष्टि तथा राजनीतिमत्ता वाली व्यवस्था करने में सक्षम था। जिन मुग़ल सेनापतियों का दुर्भाग्य से उसके साथ संघर्ष हुआ, उनके साथ उसने भद्रता का व्यवहार किया, जिसके कारण मुस्लिम इतिहासकार उसकी प्रशंसा करते हैं। इसके अतिरिक्त, उसने अपने राष्ट्र और शासन की अनेक वर्षों तक निःस्वार्थ सेवा की।
>
> इसके विपरीत, धनाजी जाधव की तुलना में सन्ताजी घोरपड़े संस्कृति और उदारता से रहित एक बर्बर व्यक्ति था। वह अपने आवेश पर नियन्त्रण रखने में और दूरस्थ भविष्य

का विचार करने में असमर्थ था। उसकी, राजा सहित, जिससे भी भेंट होती थी, उसे वह रूष्ट कर देता था। उसकी विजय का क्षण प्रतिशोध लेने का क्षण होता था। वह न तो किसी पर दया करता था, और न ही अपेक्षा करता था। अतः उसने मुगल सेनापतियों और अपने विरोधी सरदारों में अपने प्रति भय और घृणा की एक मिश्रित भावना उत्पन्न कर ली थी।[8]

किन्तु यहाँ जे० एन० सरकार द्वारा सन्ताजी घोरपड़े की आलोचना कुछ सीमा तक अनावश्यक रूप से कटु प्रतीत होती है। दोदेरी में खानाज़ाद खाँ, आदि, पर सन्ताजी घोरपड़े की विजय[9] के सन्दर्भ में एक विद्वान ने लिखा है कि इस विजय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात, पराजित मुग़ल सुनापतियों के साथ किया गया सन्ताजी का मानवीय और उदार व्यवहार है। उसने पराजित सेनापतियों तथा सामान्य सैनिकों को मनुष्य समझा, और शान्ति स्थापित होने पर उनकी हर सम्भव सहायता की। अपने व्यवहार से उसने संसार को दिखा दिया कि शत्रु के विरुद्ध भी उसके हृदय में द्वेष की भावना नहीं है। उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि उसकी शत्रुता उसकी मातृभूमि पर आक्रमण करने वाले मुग़ल सम्राट, औरंगजेब, से है, उसकी सेवा में रत सामान्य सैनिकों से नहीं। यह और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि पराजित मुग़ल सैनिकों के प्रति सन्ताजी घोरपड़े के इस उदारतापूर्ण व्यवहार की सूचना *मासिर-ए-आलमगीरी*[10] तथा ख़फ़ी खाँ[11] जैसे मुस्लिम स्रोतों से प्राप्त होती है।[12]

मुग़ल सेना में सन्ताजी घोरपड़े का भय किस सीमा तक व्याप्त था, इसका प्रमाण ख़फ़ी खाँ के एक उदाहरण से प्राप्त होता है। उसके अनुसार जब औरगंजेब के सेनापति, फ़िरोज जंग, को

ज्ञात हुआ कि सन्ताजी घोरपड़े उसके 16 अथवा 18 मील निकट तक पहुँच गया है, तो भय से उस मुग़ल सेनापति का रंग उड़ गया। उसने मिथ्या घोषणा की कि वह सन्ताजी घोरपड़े का सामना करने जोयगा। उसने मार्ग साफ़ करने के लिये अधिकारी नियुक्त किये, और अग्रिम शिविर रवाना कर दिया। किन्तु वह स्वयं चक्करदार मार्ग से बीजापुर की ओर भाग गया।[13] ख़फ़ी खाँ का यह भी कथन है कि सन्ताजी घोरपड़े समृद्ध नगरों को ध्वस्त करने और अनेक मुग़ल अधिकारियों पर आक्रमण करने के कारण विख्यात था। युद्ध क्षेत्र में जिसका भी उससे सामना होता था, उसके लिये केवल तीन ही मार्ग होते थे : या तो वह मारा जाता था, अथवा घायल होकर बन्दी बनाया जाता था, या फिर यदि वह सुरक्षित भागने में सफल होता था तो वह केवल अपने प्राणों के साथ ही जा सकता था; उसके असबाब पर सन्ताजी घोरपड़े का अधिकार हो जाता था। वह जहाँ भी आक्रमण के लक्ष्य से जाता था, कोई भी मुग़ल अमीर उसका सामना करने का साहस नहीं कर पाता था।[14] सन्ताजी घोरपड़े के प्रति मुग़लों में व्याप्त भय के इस भाव को एक प्रख्यात विद्वान ने उसके 'महानतम् स्मारक' की संज्ञा दी है।[15] मुस्लिम लेखकों द्वारा सन्ताजी घोरपड़े के लिये प्रयुक्त अपशब्द इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

जे० एन० सरकार के अनुसार सन्ताजी घोरपड़े एक ऐसा व्यक्ति था जिसे दूसरों से सहयोग करने की आदत नहीं थी। वह राष्ट्रहित के लिये अपनी महत्वाकांक्षा पर नियन्त्रण रखने में असमर्थ था। उसका एक भी सहयोगी अथवा मित्र नहीं था। अपने कठोर अनुशासन और अप्रिय स्वभाव के कारण वह सभी में

अलोकप्रिय था। अपने चरित्र की इन कमियों के कारण उसे मराठा राष्ट्र के महान नायकों में वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका, जिसका वह पात्र था।[16] उनका यह भी कथन है कि वह अधिक से अधिक सफल धावे करने वाला एक सरदार और एक स्वार्थी साहसिक था। उसका न तो मराठों के राजनीतिक इतिहास पर कोई प्रभाव पड़ा, और न ही दक्षिण में औरंगजेब के अभियानों के सामान्य परिणाम पर।[17] किन्तु सरकार की यह आलोचना पुनः अनावश्यक रूप से कटु लगती है। सन्ताजी घोरपड़े (तथा धनाजी जाधव) के प्रयासों के कारण ही काफ़ी सीमा तक औरंगजेब का दक्षिणी अभियान विफल रहा, और मराठा राष्ट्र अपना अस्तित्व स्थापित रखने में सफल रहा। अतः सन्ताजी घोरपड़े 1689 से 1697 के लगभग एक दशक तक दक्षिण के राजनीतिक आकाश में एक देदीप्यमान नक्षत्र[18] कहलाने का पूर्णतया अधिकारी था। यदि राजाराम उसके तथा धनाजी जाधव के मध्य सन्तुलन स्थापित करने में सफल सिद्ध हुआ होता,[19] तो मराठों को आन्तरिक कलह के परिणामस्वरूप हुयी उसकी हत्या का आघात न सहन करना पड़ता।

सन्ताजी घोरपड़े मराठों का एक महान सेनानायक था। उसकी सामरिक उपलब्धियों की तुलना स्वीडेन के चार्ल्स XII के साथ की जाती है।[20] वह गुरिल्ला युद्ध-शैली में दक्ष था।[21] उसने इस युद्ध-शैली का न केवल चतुराई से संचालन किया, वरन् उसे नया आयाम भी प्रदान किया। महादजी नायक पनसंबल की मृत्यु के बाद उसका मराठों का सेनापति नियुक्त किया जाना, महाराष्ट्र में मुग़लों से संघर्ष के लिये तथा जिंजी से मुग़ल घेराबन्दी समाप्त कराने के लिये उसका भेजा जाना उसकी सामरिक क्षमता का ही

परिचायक कहा जायेगा। जब-जब मराठों को मुग़लों से खतरा हुआ, सन्ताजी घोरपड़े ने उसका पूरी सैन्य कुशलता और पूर्ण दृढ़ता के साथ सामना किया। वह पराजय से कभी हताश नहीं हुआ और मुग़लों से निरन्तर संघर्ष करता रहा। उसमें राजनीतिक सूझ-बूझ भले ही न हो, किन्तु निःसन्देह उसमें एक महान सेनानायक के गुण विद्यमान थे। एक सफल सेनानायक होने के नाते उसे अनुशासन अत्यन्त प्रिय था, और आदेशों की अवहेलना पर वह अपने सैनिकों को कठोर दण्ड देने में संकोच नहीं करता था। वह शत्रुओं से भी कठोर व्यवहार करता था। किन्तु जैसा कुछ विद्वानों की धारणा है, वह बर्बर नहीं था। वह सामान्य शत्रुओं के साथ भी मानवीय व्यवहार करता दिखाई देता है। उसके चरित्र की इस विशेषता की पुष्टि मुस्लिम स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं से भी होती है। काफ़ी सीमा तक उसके प्रयासों के कारण ही औरंगजेब का दक्षिणी अभियान न्यूनाधिक विफल रहा। उससे एक कुशल राजनायिक की भांति व्यवहार की आशा करना उसके साथ अन्याय होगा, क्योंकि वह मूलतः एक सेनानायक था। मराठों के महान राष्ट्रनायकों में वह भले ही ऊँचा स्थान प्राप्त न कर सका हो, तथापि महान मराठा सेनानायकों में उसका स्थान निःसन्देह सुरक्षित है।

टिप्पणी

1. फ्रॉँस्वा मार्तिन, *मेम्वार,* III, पृ० 271; तुलना करें, ग्राण्ट डफ, *हिस्टरी ऑव द मराठाज़,* I, पृ० 324–25.
2. देखिये, जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 341.
3. ग्राण्ट डफ, *पूर्वोक्त,* पृ० 338; जी० एस० सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास,* I, पृ० 342.
4. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 99–100.
5. खफ़ी खाँ, II, पृ० 446.
6. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 100.
7. खफ़ी खाँ, II, पृ० 446.
8. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 100; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 241–42.
9. देखिये ऊपर, अध्याय–4, 'मुग़लों के साथ संघर्ष–II'
10. *मासिर–ए–आलमगीरी,* पृ० 375–79.
11. खफ़ी खाँ, II, पृ० 428–33.
12. जी० टी० कुलकर्णी, *पूर्वोक्त,* पृ० 127–28
13. खफ़ी खाँ, II, पृ० 446.
14. खफ़ी खाँ, II, पृ० 415–16.
15. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 99; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 241.
16. जे० एन० सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब,* V, पृ० 101; *हाउस ऑव शिवाजी,* पृ० 242.

17. जे0 एन0 सरकार, *हाउस ऑव शिवाजी*, पृ0 242.

18. *पूर्वोक्त*, पृ0 224.

19. देखिये ऊपर, अध्याय 5, 'राजाराम–सन्ताजी घोरपड़े सम्बन्ध'।

20. जे0 एन0 सरकार, *हिस्टरी ऑव औरंगजेब*, V, पृ0. 99

21. जी0 एस0 सरदेसाई, *मराठों का नवीन इतिहास*, I, पृ0 341.